गुरुकुल पत्रिका

माघ - फाल्गुण, २०४० | अंक : १-२
जनवरी-फरवरी, : १९८४ | वर्ष : ३६ | पूर्णांक : ३५२-५३

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

सम्पादक-मण्डल

विषय–सूची

ओ३म्

गुरुकुल पत्रिका

(गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य, मासिक पत्रिका)

माघ ; फाल्गुन २०४०   अंक : १
जनवरी, फरवरी : १९८४   वर्ष : ३६   पूर्णांक : ३५२-५३

श्रुति-सुधा

त्वमिमा ओषधीः सोम बिश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा तनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ साम० ६०४ ॥

अन्वय :—सोम ! त्वम् इमाः विश्वाः ओषधीः अजनयः, त्वम् अपः [अजनयः] त्वं गाः [अजनय] । त्वम् उरु अन्तरिक्षम् आतनोः, त्वं ज्योतिषा तमः विववर्थ ।

सं० अन्वयार्थ :—हे जगदुत्पादक प्रभो ! तूने इन सब औषधियों को पैदा किया, तूने जलों को पैदा किया, तूने गौओं को पैदा किया । तूने विस्तृत अन्तरिक्ष को फैलाया है, तूने ही ज्योति से अन्धकार को हटाया है ।

अन्वय :—(सोम !) हे जगज्जनक जगदीश्वर ! (त्वम् इमाः ओषधीः अजनयः) तू [रोगों को भस्म करने वाली] इन समस्त औषधियों को उत्पन्न करता है, (त्वम् अपः) तू ही शान्तिप्रद जलों को उत्पन्न करता है, (त्वं गाः) तू ही इन दुग्धामृत प्रदान करने वाली गौओं को उत्पन्न करता है । (त्वम् उरु अन्तरिक्षम् आतनोः) तू विस्तृत अन्तरिक्ष को फैलाता है,(त्वं ज्योतिषा तमः विववर्थ) तू ही ज्योति से अन्धकार को हटाता है ।

इस संसार में रोगों को नष्ट करने वाली जितनी भी औषधियां हैं, जल हैं, गौवें हैं वा रश्मियां हैं वा इन सब के अतिरिक्त भी जो कुछ है उस सब को उत्पन्न करने वाला वह एक ही परमेश्वर है। वही इस महान् अन्तरिक्ष को फैलाकर उस में सब प्रकार के पदार्थों और प्राणियों को उत्पन्न करता है । सभी प्राणियों को वह अपने-अपने कर्मों के अनुसार नानाविध भोज्य पदार्थ प्रदान करता है । वह महान् प्रभु अपने सूर्य चन्द्र एवं अग्नि आदि तत्त्वों के द्वारा इस में विद्यमान रहने वाले अन्धकार को हटाता है, वही वेद ज्योति के द्वारा सब मानवों के अविद्यान्धकार को हरता है, वही अपनी अध्यात्म ज्योति के द्वारा उपासकों के हृदय के उस मल विक्षेप और आवरण का हरण करता है जिस के कारण कि वह अपने ही अत्यन्त समीप विद्यमान रहने वाले अपने प्राणप्रिय सखा का साक्षात्कार नहीं कर पाते और उस के परम आनन्द से अपने आप को आप्लावित नहीं करते……।

महापुरुषों के वचन

इस परमेश्वर का स्वरूप मन और वाणी से परे है। इसके सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि यह परमेश्वर अनन्त, अनादि, सदा एक रूप रहने वाला, विश्व का आत्मा रूप अथवा आधार रूप और विश्व का कारण है। वह चैतन्य अथवा ज्ञान स्वरूप है। इसी का एक सनातन अस्तीत्व है। शेष सब नाशवान् है। अतः उसे एक छोटे से शब्द से समझने के लिये हम इसे 'सत्य' कह सकते हैं।

—महात्मा गांधी

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद्विविधाः सोम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥ मुण्डकोपनिषद् २.१.१ ॥

वह यह (अक्षर ब्रह्म) सत्य है। जिस प्रकार अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि से उसी के समान रूप वाले वाले हजारों स्फुलिंग निकलते हैं। हे सोम्य ! उसी प्रकार उस अक्षर से अनेकों भाव प्रकट होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।

जो सत्य है वही दूरदर्शी दृष्टि से हितकर अथवा श्रेष्ठ है इसलिए सत्य अथवा सत् का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है और सत्यआग्रह, सत्यविचार, सत्य-वाणी और सत्यकर्म जो वस्तु है वही सदाग्रह, सद्विचार, सद्वाणी और सत्कर्म है।

—महात्मा गांधी

जो तुम्हें भगवान् की ओर ले जाय उसे अच्छा मानना चाहिये और वह सब तुम्हारे लिए बुरा है जो तुम्हें भगवान् से दूर ले जाये।

—श्री अरविन्द

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है, वह सुखहीन भी होता है। तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरों के लिये भी बहुमूल्य हो जायेगा।

—श्री मां

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ गीता ३.७० ॥

जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

महापुरुष चरितम्

स्वामी दयानन्द—

सम्भवत: यह बात बहुत से लोगों को ज्ञात नहीं होगी कि स्वामी दयानन्द से बहुत से स्थानों पर और बहुत बार मूर्ति–पूजा का खण्डन छोडने के लिये अनुरोध किया गया और उन्हें प्रलोभन दिये गये । किन्तु निर्भीक महर्षि ने इन सब प्रलोभनों को ठुकरा दिया ।

(i) सन् १८६६ ई० में जब कि काशी में महाशास्त्रार्थ के कारण चारों ओर महान् आन्दोलन हो रहा था, काशी का एक प्रसिद्ध पण्डित एक दिन रात्रि के समय दयानन्द के पास अया और प्रार्थना करने लगा—

"आप अन्य सब बातों का खण्डन करें, परन्तु मूर्ति–पूजा का खण्डन न करें, तो काशी की समग्र पण्डित मण्डली एकत्र होकर आपके गले में जयमाला पहनायेगी और आप को हाथी पर सवार कराकर आपकी सवारी सारे नगर में निकालेगी और आप को हिन्दुओं का अन्यतम अवतार मान लेगी ।"

उत्तर में महर्षि दयानन्द बोले—

"मैं कुछ नहीं चाहता, मैं तो वेद प्रतिपादित सत्य के प्रचार के लिये आया हूँ ।"

पण्डित जी चुप हो गये और उठकर चले गये ।

(ii) सन् १८७७ ई० में जब स्वामी दयानन्द लाहौर में टहरे हुए थे और उन्होंने पञ्जाब में प्रबल आन्दोलन उपस्थित कर रखा था, तब काश्मीरपति महाराजा रणवीरसिंह ने पं० मनफूल द्वारा स्वामी जी से अनुरोध किया था कि आप जो कुछ अन्य कार्य कर रहे हैं, करें परन्तु मूर्ति-पूजा के विरोध में कुछ न कहें । यदि आप ऐसा करें तो मैं अपना धनागार आपके समर्पण कर दूंगा । परन्तु दयानन्द ने इसका उत्तर दिया—

"मैं वेद प्रतिपादित ब्रह्म को सन्तुष्ट करूँगा न कि काश्मीरपति को । आप ऐसी बात फिर मेरे सामने न कहें ।"

(iii) दिल्ली के निकटवर्ती किसी स्थान का एक सेठ छकड़े में एक लाख रुपया भरकर स्वामी जी के पास लाया और उनसे विनयपूर्वक बोला—"महाराज ! मैं यह एक लाख रुपया आप की भेंट करता हूं, आप मूर्ति–पूजा का खण्डन नहीं कीजिए । इसके अलावा कुछ आप कहना चाहें कहते रहिये"।

उस सेठ के इस अनुरोध को देखकर स्वामी जी हंसने लगे और उस सेठ से मात्र इतना बोले "सेठ जी आप यहां से चले जाइये ।"

(महर्षि दयानन्द जी का जीवन चरित–देवेन्द्रनाथमुखोपाध्याय—भूमिका)

स्वामी श्रद्धानन्द—

स्वामी श्रद्धानन्द एक महान् व्यक्ति थे । जिन्होंने अपने मोक्ष को मन से निकाल कर दु:खी और पीड़ित जनता को कष्ट से मुक्ति दिलाना चाहा था ।

—ओमप्रकाश 'पुरुषार्थी' □

पञ्जाबविश्वविद्यालये विद्वत्परिषदि समादृतोऽयं निबन्ध :-

वेद एव भाष्यकारः

—डा० निगम शर्मा
रीडर-अध्यक्ष संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयः ।

विदितवेदितव्या अधिगतवेदहृदयाः सदया महर्षयो विमर्शयामासुः यद् वेदः खलु स्वभेदं स्वत एव जनयति सूर्यवत् । यथा सूर्यस्य दर्शने नास्ति प्रकाशान्तरस्य आवश्यकता स्वतः प्रकाशपुञ्जत्वात् स्वयमेव अन्यान् प्रकाशयन् आत्मानमपि प्रकाशयति तथैव वेदः खल्वपि स्वयमेव अन्यान् विज्ञापयन् आत्मानपि स्वत एव विज्ञापयति सर्वज्ञस्यात्मनो लिंगत्वात् ।

सर्वासां सत्यविद्यानां हृदयस्थानीयो हि वेदः यो यः सहृदयः शक्त्या यथा यथा वेदस्य वैदुष्यमधिगच्छति तथा तथ विदुष्मती वागस्य मनीषामुद्भावयति । स शोकं तरति, मोहं जहाति, हृदय-ग्रन्थिं श्लथयति, संशयान् कामानुवर्तिनो मनोरथांश्च विरथीकरोति । किं बहुना आत्मविद् आत्मैव भवति नास्य अब्रह्मवित् कुले जायते । वीतदुःखसन्दोहः कोऽहमिति जानाति । अन्यानपि वशे स्थापयति आत्मरथी सुरथः श्रुतिकथा प्रगल्भ आनन्दैकरसः सदस्येषु रहस्यवाक् समस्यासु विकसन्मुखः सामान्येषु प्रमुखः कुशलो विनेता नेतृपूजितश्च प्रकटयति सुखम्, ज्ञापयति युगधर्मम्, वेदयति च वेदम् ।

तस्यैतस्य वेदस्य वेदार्थता प्रकाशनेऽनुशासनदक्षा अपि कृतपरिष्कृत पक्षा अपि शुभलक्षणाः पीनवक्षसो विलसद्गवाक्षा अन्तश्चक्षुषो विचक्षणाः आ आविर्भावकालाद् लग्नाः मग्नाश्च दरीदृश्यन्ते । उव्वट–महीधर–सायण–दयानन्दप्रमुखा एतद्देशे विदेशे चापि बहवस्तर्करसिका विज्ञानलोचनाः पण्डिताः सन्त्येव भाष्यार्थचतुराः प्रचुरा महाभागाः कल्लोलयन्तो हृदयसागरं जनमानसं च मानयन्तो युगं प्रमाणयन्ति स्वकीयानि स्वकीयानि प्रतिमाप्रभाजूंषि भाष्याणि । अस्ति चैतेषु द्युमती वागुल्लसन्ती । एभिस्तर्कशिरोमणिभिर्गण्यमानैर्मनीषिभिरियं भगवती वसुमती सत्यमेव वसुधानी प्रतिष्ठा रत्नगर्भा च । एतान् प्रणमन् भगवतीं भावयन् युष्मांश्च श्रद्धया विलोकयन् वेद एव वेदताविषये जातवेदतां प्रकटयति, इति मानयामि ।

तत्र विचारवीवधे पश्यामस्तावद् बहुषु मन्त्रेषु शब्दान्तरैः शब्दव्याख्या-तद्यथागायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः (ऋ-१-१०-१) इति मन्त्रे त्वां गायत्रिणो गायन्ति, अर्किणस्त्वाम् अर्चन्ति । स्पष्टमेवात्र वेदयति वेदः, "गायत्रिणः" इति शब्दस्य गानकुशलाः, अर्किणः इत्यस्य चार्चन–स्वभावाः एवार्थः । क्वचित् पूर्णस्यैव मन्त्रस्य मन्त्रान्तरेणसुमती व्याख्या :— यथा गायत्री मन्त्रस्य व्याख्या प्रसंगे (यजुर्वेद-२२-९,१०,११,१२,१३,१४ मन्त्रेषु ऋषे र्वेदस्यानन्दप्रदा मनीषा समुल्लासं तनुते । स देवः सविता प्रचोदयात्, स चेतयतु, धीमहि-हवामहे, मनामहे, ईमहे, उपह्वये, धियः इत्यर्थे सुमतिम्, सुमतीवृधः

मतीविदे, सवितारम्, सत्पतिम् प्रभृतयः शब्दा मानवे प्रतिभामाधातुं भावसम्पदां च विकासयितुं शब्ददारिद्र्यं च दूरीकर्तुमूरीकर्तुं च हिरण्यवर्णां सत्यराधसं वाचं कियान् मनोहरोऽयं प्रयासः।

क्वचिद्वेदस्य उपदेशदृष्टिरादरणीया भवति-यथा अथर्ववेदे-२-१५ द्यौश्च पृथिवी च, सूर्यश्च चन्द्रश्च यथा न भयं कुर्वाते नैव च क्रोधम्, स्वकीयं स्वकीयं नियमबन्धनमासाद्य सर्वे देवा मनीषिणश्च स्वकार्यं प्रपूरयन्ति। एवमेव धर्मं निष्कारणं सेवमानः पुरुषः ख्यातिं समृद्धिं चाधिगच्छति। कियान् मनोहरः प्रोत्साहनदक्षश्चायं मन्त्रः—यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा विभेः। सूर्यश्चन्द्रो वा न कमपि प्रति कोपं तनोति नैव वा सक्रोधस्य भृकुटिभंगमासाद्य भयविकलो भवति, स तु स्व स्वीकृतं व्रतमेव नियमतः पालयति, एवमेव सुमनोवता पुरुषेण नैव भयं नैव वा क्रोधः प्रकटनीयः, स्वत एव तत्त्वतः स्वीकृतं व्रतं प्रपूरणीयम्।

क्वचिद् गुणश्लाघया वस्तुसम्पदुद्घाट्यते-यथा-अथर्ववेदे पृथिवीसूक्ते-द्वादश काण्डे दीक्षा, तपो, ब्रह्म, सत्यम्, ऋतम् एते धर्माः सम्यक् परिपालिता मातरं पृथिवीं रक्षन्ति, रक्षिता च पृथ्वी मानवेभ्यः सुखसामनानि सूते। इयं कल्याणरमणीया पृथिवी विश्वंभरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्य-वक्षा, जगतः निवेशनी, कियन्निष्ठादायकं प्रतिष्ठाप्रभावं च वचनम्? अनेनैव प्रकारेण ब्रह्मचर्य - सूक्ते (११-५) प्राणसूक्ते (११-४) अन्यत्र वा बहुत्र देवानुद्दिश्य तेषां भूतगुणधर्माः खल्वपि ख्यापिता भवन्ति। ब्राह्मणो हि अग्निवत् विषय-प्रकाशकः, दोष-दाहकः सम्पत्सु प्रसन्नमना विपत्सु सदैवाग्रेसरः सत्संगेषु दिव्यो मन्त्रणासु भव्यः प्रकटो नेता विनीतो हिंसारहितः शुचिव्रतः क्रान्तदर्शी भवेत्। क्षत्रिय-श्च इन्द्र इव सारवान् वज्रदेहः सततशुद्धायुधश्चक्रवर्ती विजीगिषुर्गीयमानकीर्तिः सहिष्णुः प्रभविष्णु-श्च स्यात्। एवमन्येऽपि मनुजन्मानो महात्मानो जायेरन्।

देवानामेवाख्यानपराणि पुराणानि ब्राह्मणानि वा उल्लसन्ति, तत्सर्वं सारवता वेदेन सरहस्यं सरलेन यथा विहितं पिहितं च।

संस्कारवान् पुरुषो जानाति-सोमपानं हीन्द्रस्य प्रसिद्धम्-अतो "वायवाहि० ऋ०१-२-१" इति मन्त्रे "इमे सोमा अरंकृता" इति कथनेन संकेतेन इन्द्र एवं आहूयते। यद्यपि सम्बोधने वायुराहूयते-अतः व्याक-रणवता प्राज्ञेन वायुः इति शब्देन इन्द्र एव ग्राह्यः। अर्थश्चास्य हे वायुवद् दीर्घायो, इन्द्र, यद्वा वायुवत् सर्वत्र गमनशील इन्द्र इति योजनीयः यास्कः परामर्शं ददाति-एवम् अन्यमन्त्रे नियतति स निपातदेवो भवति।

विष्णोस्त्रेधा पदनिदधानमपि चेतनावता विभावनीयं भवति। पुरुषः खलु संसार एव दत्तरुचि-र्निरन्तरं रुचिरां प्रचुरां च मायामाहरति परं कस्य कृते? कथम्? सर्वं विचार्य परीक्ष्य लीलालोलं कपोलमार्द्रं करोति, संसारागारे पचन्तमात्मानं न शक्नोति वीक्षितुम्, अतः योग-प्रदीपं दीपयति, अयमेव

वीतशोकसन्दोहस्य निर्मोहस्य विष्णोः प्रथमः खलु चरणपातः। अद्यापि आस्वादितरसा तृष्णाश्च तं मोहयन्ति, कामना-वात्या तं ज्वलन्तं योगप्रदीपं निर्वापयितुं यतते। अत्र चास्य भवति पुनर्जागरणम्, कर्णसुखा वेदवाचस्तमुल्लासयन्ति। एहि-एहीति तं सुवर्चसो गायत्री वचना मेधाविनो ज्योतिंषि तन्वन्ति, अत एवास्य परिद्रष्टुरयं विष्णोर्द्वितीयश्चरणपातः। एतन्मेऽमृतपानम्, सुलाभो मे, चन्दनलेपो मे, समस्तेयं पृथिवी सुवर्णपुष्पा जाता, इति परमे व्योमनि आत्मानन्दे रममाणस्य तृतीयश्चरणः। प्रथमे परांगमुखता, द्वितीये ब्रह्मण्युन्मुखता, तृतीये ब्रह्मावाप्तिः इति अध्यात्मपक्षे त्रेधा निदधे पदम्।

एवं बहुषु मन्त्रेषु प्रश्नोत्तरया दिशा चाज्ञात् ज्ञापनं विधीयते। मुखं किमस्यासीत् (यजु०-३१-१०) ब्राह्मण एव मुखवत् प्रमुखः. क्षत्रियो बाहुः, लोकयात्रा-निर्वाहदक्षः, वैश्यो जगद् वेवेष्टि शूद्रश्चाशु द्रवति। अन्ये बहवो मन्त्राः समस्यामास्थाय प्रपूरयन्ति मनोरमयन्ति च।

वेदानामयमपि कथनप्रकारो यद् विशेषणमुखेन वस्तु प्रतिपादयन्ति-इन्द्रं जेतारम्-अपराजितम्, (ऋ०१-११-२) कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे (१-१२-७)आशीर्वन्तः सुता इमे (१-२३-१) प्रभृतयो मन्त्रा अत्र क्षणे क्षणे कौशलमावहन्ति।

पुराणानि कथयन्ति सहस्रनेत्रः खल्विन्द्रः। आचार्य–चाणक्यः परामर्शं ददाति (अर्थशास्त्रस्य प्रथम अध्याये) इन्द्रस्य सभायामृषीणां सहस्रम्, स खलु द्विचक्षुः, परं सहस्रैर्ऋषिभिः परामृशति, अतः सहस्रनेत्रः सः। एतस्यैवार्थस्य सूक्ष्मं सूत्रं निदधाति ऋग्वेदः-इन्द्रोविद्यात् सह ऋषिभिः (१-२३-२४) एतयादृशा बहवो मन्त्रा व्याख्याता भवन्ति।

इंद्रं "सुरूपऽकृत्नुः" इति (१-४-१) इति वेदः कथयति। अस्यैतदेव तात्पर्यं यत् वेदानुवचनेन अनुध्यानेन च मनः पद्मायते, नेत्राणि कमलायन्ते स्वच्छान्तःकरणे परमात्म – प्रीतिः सपुष्पा मोदमाना लभमाना आनन्दम्, आनन्देन भग्नावरणा चितिशक्तिर्नितरां हर्षविकासं मनुते तनुते च मणिप्रभेव प्रतिभाम्। अतस्तस्य प्रकाशानन्दस्फुरणकायस्य निर्मायस्य निर्माय आनन्दनीडं मुखं हर्षातिरेकेण किरणावदातं भवति अत एव इद्र एव मानवस्य मुखं शोभनं सुन्दरं च करोति।

व्याख्यातारः केचनं मन्त्रं कर्मकाण्डपरमेवाहुः अपरे गुणवादमाश्रित्य विज्ञानमेव गवेषयन्ति, इतरे गणितं ज्योतिषं वा, साहित्यरसिकाः काव्यानन्दं जनयन्ति वेदध्वनौ, वेदाध्वनि केचन तर्ककर्कशां वाचमुन्नयन्ति परे सांख्यं वा योगं वा वेदान्तं वा व्याकरणम् वा आचारणं वा वेदादानयन्ति।

एतत्सर्वमभिनिपीयापि न खलु भाष्येषु आदरो निबध्नाति पदम्, यतो हि एकस्मिन् पक्षे सिद्धे सति अन्यः पक्षः प्रतीक्षते, न्यायं च कामयते। अतः अपरा परारूपेण वेदो विभज्यते। अपरा विद्या खलु वेद एव। यदा वेदः साधनरूपेणावस्थितः पुरुषस्य ज्ञानं वर्धयति, सत्वपरमाणून्

उत्थापयति, तदा पुरुषे परा योग्यता जन्यते, अनन्तरं ब्रह्मप्राप्तिः फलमस्य सूयते । इयमेव परा विद्या-फलरूपा उच्यते । इयमेव वा उपनिषच्चोच्यते । उपेत्य प्रत्यक् चैतन्याभिन्नपरमात्मानमधिगम्य अविद्या-ग्रन्थिं शातयति, शिथिलयति, मोक्षं गमयति, इति उपनिषत्, अतस्तत्प्रतिपादकेषु वेदेषु उपनिषद् इति प्रयोगः साधीयान् ।

ये खलु संशोधितकल्मषा मोघकर्माणोवृथासंकल्पाः कुत्सितजन्मानः कर्मार्द्रहृदयास्तेऽपि पावनं वेदसम्पर्कं संसाध्य शुद्धिकामाः शुद्धिकारणमनलसम्पर्क इव लोहस्यात्मानं पावयन्ति प्राप्नुवन्ति च । एतादृशं पात्रं निधानं च भवति यतो हि निधीयतेऽस्मिन्छ्रेयः ।

प्रकृति हि अचेतना सांख्यैरभिधीयते । सा खलु सांख्यपरिकल्पिता त्रिगुणात्मिका प्रकृतिरचेतना सती कथमिव विचित्रकर्मविपाकपरिपच्यमानानां कृते प्रवृत्तिकारणतां भजते ? कथं वा देवमनुष्यपशुति-र्यक्प्रभेदभिन्नं भुवनं वा निर्मातुं शक्नोति ? रथादीनामचेतनानां स्वतः प्रवृत्तिः कुत्र दृष्टा ? अतः चेतनाधिष्ठाता एव ते प्रवर्तन्ते अतो भगवताऽभाणिमयाध्यक्षेण प्रकृतिः ।

अतो मृत्युग्रस्ते संसारवर्त्मनि वेद एव वेदत्वं प्रतिपादयति । ये ये भाष्यकारास्तान् प्रतिनुमस्तावत् ।

परं प्रपंचोऽयमुदञ्चति । पतञ्जलिः प्रमायति न च सर्वै लिंगैः सर्वाभिर्वा विभक्तिभिर्वेदे मन्त्रा निगदिताः, तेचावश्यं यज्ञगतेन पुरुषेण यथायथं विपरिणमयितव्याः, तन्नावैयाकरणः शक्नोति यथायथं विपरिणमयितुम्, तस्मादध्येयं व्याकरणं, एतस्य प्रयोजनमेतत्, यत् वशिष्ठ–वामदेव–जाबालि–विश्वा-मित्र–बृहस्पति प्रभृतयस्तत्रभवन्तो ब्रह्मर्षयो न वेदभाष्ये तथा यत्नमकार्षुर्यथा वेदसाधनग्रन्थे । ते सम्प्र-दायेषु ब्राह्मणान् विभज्य मन्त्रांश्चासाद्य सम्प्रदायान् वितेनुः एवं ब्राह्मण–उपनिषद्–दर्शन–व्याकरण-निरुक्त-च्छन्दोज्योतिः शिक्षा-कल्पप्रभृतयः सम्प्रदाया विरेजिरे । तेषु तेषु च मन्त्रेषु विविधेषु सम्प्रदायेषु मन्त्रा विभक्ताः पठ्यन्ते, एक एव च मन्त्रः विविधेषु सम्प्रदायेषु भिन्नान् अर्थान् निर्वदति । ते सर्वे सत्याः आर्षेण दृष्टत्वात्, आम्नातत्वाच्च । 'सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्तसिन्धवः' अत्र सप्त-सिन्धव.,इत्यस्य कोऽर्थः । वैयाकरणा आहुः सप्त विभक्तय इति,योगिनश्च यमनियमादयः सप्त समाधिं जनयन्ति, सांख्या जगुः सप्त–प्रकृति विकृतय इति, जैमिनिभक्ताः सप्त होतार इति धन्वन्तरि शिष्या सप्तधातव इति, सेना-प्रकरणे सप्तप्रकाराः सैनिकाः (मरुतः) इति ज्योतिर्गणिते सप्त-ऋषयः इति एवं नानाप्रभेदभिन्नेषु संम्प्रदायेषु विभक्तान् मन्त्रप्रवादानाश्रित्य कः खल्वैकस्यापि उष्ट्रभारभूतस्य मन्त्रस्य व्याख्यासंग्रहं कर्तुं शीलयति व्याख्यातुं वा समर्थो भवितुमर्हति ।

एते मन्त्रा मननं त्रायन्ते । यथा यथा पुरुषो मन्त्रं सारवत्या मत्या निभालयति तथा तथा मन्त्र-विज्ञानं ज्योति र्वालभते । पुरा कल्प एतदासीद् देहेऽपि विदेहतां धारयन् पुमान् मन्त्रदत्तदृष्टिर्नवार्थ-सृष्टिं करोति । सम्प्रदायं च पुष्णाति । अद्यत्वेऽपि मधुकरा इव मकरन्दलिप्सवः पिपासवः मन्त्रछत्रे मधु गवेषयन्ति ।

लोकाय एव वेदः खलु लोकतः प्रसिद्धमाप्नोति लोके च येष्वर्थेषु प्रसिद्धानि पदानि तानि सति यतो हि वेदत एव लोकधर्मसिद्धिः । लोके विश्वभरण-पोषणकर्मणा राजा 'भरतः' इत्युच्यते, वेदे खल्वपि प्र प्रायमग्नि र्भरतस्य भरणपोषण शोलस्य अग्नेः श्रूयते । यज्ञादिना पूजितः प्रशंसितश्चाग्निर्विश्वानि भूतानि प्राणिनश्च संवर्धयति । स्वानि स्वानि मतानि सम्प्रदायदग्धदृष्टयो मानवाः स्वं प्रयोजनं स्वार्थ-साधनं वा भाष्यकारा गवेषयन्ति । निकटवन्तं मन्त्रशब्दं मनसि निधाय स्वसम्प्रदायपोषकं मानवं वेदे बोधयन्ति । लघ्वपि स्वरसन्देहजातं तदिदमेषां महते प्रचाराय भवति, समग्रं वा येन तपसा मन्त्रे विज्ञानं ज्ञापयन्ति तथैव दोषानपि वेदपक्ष एव निक्षिपन्ति । वेदे सर्वा विद्याः सन्ति, इत्यस्माकमपि धारणा, परं यः पुरुषो यस्य वस्तुनो धर्मस्य वा यथार्थद्रष्टा भवति स एव तं विषयं मनीषिया भास्वरं मन्त्रस्वरं परिलभते । मन्त्रे स्वरवादो देववादः ऋषिवादश्च प्रचुरेण चतुरेण ऋषिपरम्पराचक्रेण निहितो विदितश्च ।

मन्त्रदेवता एव मन्त्रस्य विषयः, तत्र वस्तुधर्माः प्रकाश्यन्ते, अथ च सर्वाण्येव नामानि ईश्वरस्य विषये गुणधर्मख्यापनानि, अतोऽध्यात्मरुचिः पुरुषस्तेनैव मन्त्रेण मनो महेश्वरे प्रवेशयति, वस्तुधर्माश्च प्रकाशयति । अतो मन्त्रवता पुरुषेण देववता ऋषिवता काव्यवता छन्दोवता च भाव्यम् ।

वेदस्य काव्यं नितरां प्रौढिं भजते । शुचिस्मितां वाचं प्रति सुमनस्कः पुरुष इव, द्युमतीं प्रतिभां प्रति आत्मैव, कमलायताक्षीं सुवसनां सोत्सुकां कामिनीं प्रति उत्सुकस्तरुण इव रोचमानामुषसं प्रति सूर्यस्यानुगमनं रोचते सहृदयनां गुणलुब्धे चेतसि । मरुतो गमननिमित्तं लक्षयित्वा स्त्रिय इवात्मानं शोभयन्ति । विचित्रैरलंकरणैरेषां शुभलक्षणानां वक्षांसि द्योतन्तेऽथापि वज्रसदृशेषु हस्तेष्वेषां विद्युन्महस ऋष्टयो द्योतन्ते । अग्निः खलु नदीतटे हंस इव, काष्ठेषु गुप्तो मणिरिव, सिन्धूनां भ्रातेव, संदर्शनः सूर्य इव, पयः पूर्णाः धेनुरिव शुचिर्दुग्धप्रवाह इव, स्तुनः ऋषिरिव, रमणीयः खलु निवास इव, स्नातश्चा-स्व इव, प्राणप्रदो वायुरिवायुः प्रभृतीनि उपमानवचनानि न केवलं चेतो रंजयन्ति, अपितुविमले सोत्सुके मानवहृदये भावसंपदामानयन्ति शब्दसमृद्धिं च वर्धयन्ति । वस्तुदृष्ट्वा सचेतसः पुरुषस्य हृदयं वाचं स्पन्दयति । वेदानां अत्र विषये प्रभविष्णुतया योगदानम् ।

गीतरसिकः खलु पुरुषः पुरुकामश्चः । बहुविधानभावानासाद्य साधितवेशः कल्पनाकेशं संवारयति कोषं चोदञ्चयति । वेदानामत्र योगदानं तु महद् रणरणकं तनुते ।

इन्द्रविषयेऽग्निविषयेऽन्येषु वा देवेषु विषये शोभनतया उक्तानि सूक्तानि कस्य रहस्यवेदिनो मनो न मोहयन्ति ? स्वराज्यस्य अर्चना–प्रसंगे वेदेन च यद्गीतं तत्तु जगत्स्रष्टुर्महती स्वाभिमानविषये राष्ट्रोत्थानविषये चोद्भावना । किमधिकं जीवनमाश्रित्य बहूनि सूक्तानि परं मरणविषयेऽपि यदुक्तं न कुत्रापि केनापि कविना तद्रहस्यभूतं यम-सूक्तं प्रप्रेरितम् ।

श्रुतिस्तु मातेव सरलया गिरा बालकं चालयति, शय्यागीतं गायति, विविधां प्ररोचनां मनसि स्थापयति, पुरुषे पौरुषं विपुलयति, अतः सावधानेन चक्षुषा समर्पितेन चेतसा वेदसरोऽवगाहनाय प्रह्लादनाय च । वेदे या चारुता शब्दं शब्दं प्रति राजते सा तु तद्गतेन मनसैव रसनयोग्या । इयमेव रस चर्वणा वर्हेण मयूरं प्रति मयूरीव चंगानि अंगानि चगयति ।

अथ यानि भाष्याणि सुधियां राजन्ते तान्यपि सति सम्भवे द्रष्टुं योग्यानि । अयं प्रयासस्तु रजः प्रोक्षणमिव वेदार्थरतानाम्, यथा रजोरहिते मणौ प्रकाशानन्दाविर्भावस्तथैव कुमतिकृतटीकाभिरारूढे रजसि मन्त्ररत्नक्षालमावश्यकम् । अत एव काले सूक्तिसहस्रात्मभिर्महात्मभिर्यत्नो विधीयते । तेन मन्त्रा वेदाश्च सुरक्षिता भवन्ति । मन्त्रार्थोऽपि दाप्यते ।

एतत्तु नः प्रियम् । आदौ काले कः खलु भाष्यकार आसीत् ? येन् मन्त्रावबोधनेऽन्यांश्चोन्मुखीकरणे प्रयासो विहितः । अत एव उच्यते-साक्षात्कृत-धर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽपरभ्योऽसाक्षात्कृत-धर्मेभ्यो हि उपदेशेन मन्त्रान् ग्राहयामासुः । अथ चानन्तरं वेदं वेदांगानि दर्शनानि पुराणानि अन्यानि वा साधनानि प्रीत्या निर्मितानि सेवितानि च । सर्वे तत्र भवन्त ऋषयः स्वां स्वां वृत्तिं प्रवृत्तिं च मेलयित्वा वेदार्थान् धारयाञ्चक्रिरे । साम्प्रतमपि तांस्तान् धर्मानाश्रित्य तथाविध उपायः करणीयः यथा वेदसंसारयोर्मध्ये सहजः सम्बन्धः स्यात् । यतो हि पुराणान्यपि वेदमेवाधारीकृत्य संसारे प्रवृष्टानि परं कल्पनासंभारयोजनया तानि क्वचित् क्वचिद् वेदादपि दूरं गमयन्ति । वेदार्थश्च रहस्यभूतो जायते । अतो हृदा मनसा मनीषया-वेदार्थोद्भावने स्वाभाविकः सहजश्च सम्बन्धो बन्धुवर्ग इव उत्सर्गानन्दं जनयति । जनयतु नः शान्तिः, जनयतु नः सोमरसायनं येन उमया सहितं महेश्वरस्य प्रतिभासकं ज्ञानं जाग्रेत । इन्द्रस्येव सोमपानं सर्वस्य कृते सुलभं सुखदं शुभानि ईश्वरप्रतिपादकानि खानि-इन्द्रियाणि तेषां दम् दाता, शोधयिता च भवेत् । नमः परमर्षिभ्यः ।

□

मुम्बापुरीनगरे विद्वद्गोष्ठीमध्ये सत्कृतोऽयं निबन्धः —

विदेशेषु संस्कृतम्

—डा० भारतभूषण विद्यालङ्कारः
प्रवक्ता—वेद-विभागस्य
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयः

'वाचा विरूप नित्यया' ऋ. ८, ७५, ६, 'जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसम्' अथर्व०-१२-१-४५, 'उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः' २०. ५९. १ प्रभृतिषु मंत्रेषु भाषाणां वैचित्र्यं, वैविध्यं वैशिष्ट्यं च प्रतिपाद्यमानं दरीदृश्यते। 'ब्यैलबाः' अथर्व. १२-१-४१ इति शब्दं निरीक्ष्य तु महतो विचिकित्सा बुभुत्सा चोन्मिषति प्रतीयते पुरा लप् धातुरिव कोऽपि लब् धातुरपि परिभाषणे वाच्यविषयतामवतरति स्म। उत्तरभारतेऽधुना खल्वपि विवाचसे जनाय 'लब' धातो र्मिश्राः शब्दाः प्रयुज्यन्ते। तद्यथा 'लबाड़ः' इति। ओष्ठार्थे वचनसाधके चाङ्गलभाषायां 'लिप्' शब्दस्य प्रयोगः क्रियते।

कथङ्कारं शब्दा विकृतिं भजन्ते कथं वा वृद्धिं लाघवं वाऽऽसादयन्ति, केन कारणेन वा भाषासु नियमानुसारं निर्णियमं वा परिवर्त्तनं जायते, एतदर्थमेव पुरा सम्प्रदायेषु निरुक्तसम्प्रदायस्य महत्ता प्रशस्तिश्च स्वीक्रियते। तंत्रवार्तिके, नाट्यशास्त्रेऽन्येष्वपि सम्प्रदायेषु भाषातत्त्वविचारे महतां तत्रभवतामृषीणां शास्त्रकाराणामाचार्याणां च साधीयसो वाचोयुक्तिः प्रशस्तिं भजते।

'यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्' ऋ० २-१२-२ इत्यत्र इन्द्रस्तुतौ ऋषिर्गृत्समदः कथयति कुपधातुः संचलने वर्तते। वस्तुतस्तु धातुरयं प्रकोपे दृष्टः, एवमेव वपधातुर्बीजपद्वतौ पठितः परं नापितकर्मण्यपि दृश्यते, हृ धातु र्हरणे पठितः, विहारे, उपहारे, आहारे चापि वर्त्तते, मृङ् धातुः प्राणविसर्जने समाम्नातः परं कान्तावपि श्रूयते यथा कामदेवस्य कृते 'मार' इति। मरुद्गणप्रशंसायां ये चात्मानं जनय इव सालङ्कारं सचमत्कारं शोभयन्ति। भूधातु र्भवे, विभवे, प्रभावे चाप्यभ्यस्यते। अत एव शब्दप्रभास्करो यास्काचार्यः संकेतयति–शवति र्गतिकर्मा कम्बोजेषु भाष्यते, विकार एनमार्याः पठन्ति शव इति। लब्ध-श्रद्धाञ्जलिः पतञ्जलिरप्याह–सप्तद्वीपा वसुमती, चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः तेऽसुरा हेडयो हेडय इति कृत्वा पराबभुवुः, म्लेच्छो ह वा यदपशब्दः, कुमारिलभट्टोऽपि रोमक–यवन भाषा–शब्दानां विचारं प्रतिपादयति। पाणिनिरपि 'यवनानी' लिपिं स्वीकुर्वन् एतद्विषये व्यवस्थां विदधाति।

एवं स्थानप्रभावात्, पवनप्रकर्षाद्, अभ्यासदोषाद्, भाषामिश्रणाद्, परस्परसम्मर्दवलाद्, विरह-विप्लव–जाति–मिश्रण–ऋतुप्रकोपाध्यात्मदोषाच्च भाषासु परिवर्तनं जायते, यस्या बहुविधानि पुस्तकानि मतसिद्धान्तप्रवचनानि निरुपद्रवाणि जायन्ते।

महाभारतं पुराणानि अन्यानि चैतिह्यप्रमाणानि खलु प्रतिपादयन्ति यत् केचित् समाजदूषका अकृतकारिणोऽपराधिनो देशाद् बहिष्कृताः। ते च यथाकालं यथावसरं च विवशा मनोनुकूलान् प्रदेशानासाद्य स्वे स्वे कर्मणि रतास्तेषु तेषु च स्थानेषु लब्धावस्थाना निवासाञ्चक्रिरे। भूतस्थानं भूटान इति कथ्यते, गोरक्षा गोरखाः सम्पन्नाः, शेषाः शेखा जाता, प्रस्थानाः पठाना इति एवमेव तुराण, किराण, तुरुष्क, महामद, दरद, खुरासान, माकन्द, ताशकन्द, हिरात, किरात प्रभृतयः जनाः साधितजनस्थाना जाताः प्रादुर्भूता वा।

न केवलम् एनावदेव, अपितु विदेशेषु अवस्थिताः शब्दाः स्वकीयानि इतिहासप्रवचनानि प्रभावयन्ति दनुजवंशवृत्तयः डेनमार्क, मगधविलासिनो मकदूनिया, अयोध्यावासिनो अयूथिया, स्कन्द प्रपूजकाः स्कन्धनभ्या (स्कैंडिनेविया), पणिस्थानाः फिनेशियाः प्रभृतयः शब्दाः स्वकीयमितिहासं परम्परां च भूयसः कालादुपलालयन्ति विदेशेषु न केवलं निष्काशिता अपराधिन एव निष्क्रान्ता–अपितु कौतूहलबलाद् राजर्षयो महर्षयोऽपि सिद्धा वृद्धा अपि दासा भृतका अपि महीयांसो विद्वांसोऽपि वीक्षितुं, भिक्षितुं शिक्षितुं वा यत्र तत्र बहुत्र भ्रान्ता निर्गतास्तत्रैवावस्थिता वा।

ईराण देशीया हेलमुत प्रभृतयो विद्वांस एवमाह–ईराण प्रदेशस्तु आर्याणामेव आर्याणामयनमिति कृत्वा आर्यायणमेव 'ईराण' इति भणन्ति। एवम् आवागमन स्थानमेव अफगानिस्तान इति च परामृशन्ति। अपरे विदितवेदितव्या जाति–शब्दविज्ञान–रसायना बोधोपायना एवं खल्वाहुः आयनान्ता ब्राह्मणाः सर्वे ईराण–भारतमध्यवासिनः, आपगायन शब्द एव अफगानिस्तान–शब्दस्य पूर्ववर्ती, तत्र लामकायन (लाम गायन) प्रान्तस्योपलब्धेः एवं प्रतीयते पाणिनिनिर्दिष्टा, लमकगोत्रीयाः श्रोत्रिया ब्राह्मणास्तत्र न्यवसन्। एवमेव शाकटायन, कात्यायन, शांकायन प्रभृतयः शब्दाः खल्वपि स्वकीयं महिमानं साभिमानं प्रवर्तयन्ति। सीरिया–असीरिया–असुराः प्रभृतयः शब्दा देशा वा तथैव स्वहृदये सचमत्कारं रहस्यं धारयन्ति भारतस्य च माहात्म्यं प्रकटयन्ति। बोगाज-कोई भागे लब्धः शिलापट्टलेखोऽपि वेद देवतानां नामग्राहं कीर्तिं पुष्णाति। तत्र सन्धावुल्लिखितं च सन्धिममुं द्वयोर्देशयो देवाः कृपया रक्षन्तु मित्रावरुणावश्विनौ इन्द्रश्च। एवमेव मिश्रदेशे श्मशानखातेषु स्थितौ श्वानौ सप्तर्षयो द्वादशादित्यानां चर्चा च अर्चाविषयतां सम्यग् अवतरति। रोमक (इटली), यवन (यूनान) स्पेन–फ्रांस प्रभृतिष्वपि देशेषु चायमेव समानश्चर्चः।

अविनाशचन्द्रदासः 'वेकनाटाः पणयः' शतारित्रां नावमातस्थिवांसः सार्थवाहतां गाहमाना विश्वस्य पूर्वे सिद्धजलयाना आसन् इति स्वकीये 'ऋग्वैदिक–इण्डिया' नामके ग्रंथे प्रतिपादयति। पश्चिमेभागे तुर्की–देशे 'बोगाजकोई' स्थले 'मितानी' जनानां सन्धावुल्लेख एवं प्रतिपादयति—अयं 'मितानी' शब्दो 'मैत्रायणी' शब्दस्यैव भ्रष्टं रूपं भजते। तत्र राज्ञः 'मति ऊजा' नामापि 'मित्रौजाः'

संभवति। अहरभिमानिनो देवस्य नाम च मित्र इति प्रथितमेव।

अथर्ववेदस्य ५-१८-४ तैमात[1] शब्दं दृष्ट्वा महामहिमशाली तत्र भवाँल् लोकमान्यस्तिलकोऽपि भ्रान्तिं जगामेति भारतललाट-तिलकायमानस्य विमलविपुलबुद्धेः श्री तिलकस्य निबन्धः भाण्डारकर-स्मृति-ग्रन्थे—'काल्डियन-वेद' नाम्ना प्रकाशितः। यत्रासौ प्रतिपादयति यत् काल्डिया देशे एको महान् सर्पः प्रसिद्धिं गतः। यस्य नाम 'तियामत' इति स्मरन्ति, यश्च सप्तशिराः प्रलम्बशरीरस्य पातालवासिनस्तस्यैव सर्पस्य विवरणमथर्ववेदे लभते'। तस्य सर्पस्य हननकर्ता 'अब्जुजित्' इति पदेन स्वर्यते।

एतत् सर्वमभिनिभाल्य प्रतीयते 'अब्जुजित्' शब्दः खलु वेदस्य 'अप्सुजिद्' एव। यश्च इन्द्रार्थे प्रसिद्धः इन्द्रश्च सप्तहा, वृत्रहा, सोमपा, प्रभृतयः शब्दा वेदानामेव माहात्म्यं गणयन्ति यतोहि प्रसिद्धिगत इन्द्रो भारतीयानामेव प्रमुखो राष्ट्रव्यापी नेता। एतेन स्पष्टम् एतेऽन्ये च बहवः शब्दाः पूर्ववत् देशं स्थानं, कालं चासाद्य अधुनापि मधुमतीं भूमिकां विश्वसंस्कृतौ तन्वन्ति पुष्णन्ति च भारतस्य सौरभ्यं सौष्ठवं च।

एते चान्ये च एवं जगुरार्या उत्तरध्रुवप्रदेशाद् भारतदेशे लग्ना मग्नाश्च। तान् प्रत्यपि सुहृद्भूत्वा भारतीया आचार्या न तत्र आर्यजीवनसंकेतं स्थानं ग्रन्थं तीर्थं वोपलभन्ते। एतत्तु सत्यं भारताद् गतानां संततनां तत्र तत्रान्येषु देशेषु नगराणि, गृहाणि मंदिराणि सूचयन्ति भारतप्राग्भावितानाम्। मंगोलियादेशे गायत्री-मन्दिरम्, इन्डोनेशिया देशे रामायण-महाभारतकथासंकेताः, कम्बुज-श्याम-वीतनाम देशेषु बुद्धमन्दिराणि-मैक्सिको देशे गणेश-मन्दिरम्-जापानदेशे सूर्य-पूजा, चीनदेशे बुद्धप्राधान्यम्, तुर्कदेशे संस्कृत-ग्रन्थ-लाभः, रूसदेशे वैदिकप्रभावः, ईराणदेशे वेदानुवाचनानि किमधिकम् यत्र-तत्र सर्वत्र दरीदृश्यते भारताद् गतानामार्याणां कर्णप्रियाण्याख्यानानि, निरुपद्रवाणि चाचरणानि। भारत-संस्कृते संस्कृतस्यैव जयघोषः शर्मण्यदेशे डिण्डिमायते। अंग-वंग कलिंगवत् तेष्वपि शास्त्रपत्रेषु लिखितानि राजर्षिमहर्षीणां चरितानि वचनानि च।

अत्र देवशब्दानां अनेकानि उदाहरणानि प्रदीयन्ते—

अग्नि—लैटिनभाषायां इग्-निस् (लिथुएनियन भाषायां) उग्निस् (रूसीभाषायां) ओगोन सञ्जातः। हिन्दीभाषायामपि 'आग' अयं शब्दः प्रयुज्यते।

वरुणः—ग्रीकभाषायां व स्थाने सम्प्रसारणो भूत्वा—उरेनस्—यूरेनस् इति भूतः।

पितरः—आदिमः पिता द्यौ एव द्यौस्पितरः— (ग्रीक भाषायां) जुएसपेटर (लैटिन—भाषायां) जुपिटरः सञ्जातः। परं लैटिनभाषायामेव श्राद्धयोग्याः पितरः "दि पेरेन्टीज" भूतः।

---

१ अथर्व० ५-१३-६ इत्यत्रापि।

यह्वः—(ऋग्वेदे–विश्पति यह्वमतिथिं नरः (३.३,८) प्र वो यह्व पुरुणां विशां (१.३६.१) शब्दः निघन्टौ महत्वाची शब्देषु लिखितः एष एव शब्दः हिब्रू–भाषायां (ओल्डटेस्टामेन्ट) परमाधिक्येन प्राप्नोति । एष हिब्रू देवः 'यहोवा', 'यह्वेह', 'यह्वे' अस्ति । यहोवा (JCHOVAH) शब्दस्य हिब्रू भाषायामपि अर्थः परम महान् एवास्ति ।

गॉड—ख्रिष्टीय गॉड (GOD) शब्द अपि स्पूटानिकभाषायाः 'घूतोम्' (GHUTOM) शब्दान्निष्पन्नः । घूतोम् शब्दस्तु संस्कृतभाषायाः 'हुत्' शब्दान्निष्पन्नः, यच्च हु, ह्वेञ् आदि धातुभिः प्राप्तुं शक्यते । 'दि ग्रेट ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्सनरी' इत्यभिधे ग्रन्थे एष एव भाव अङ्गीकृतः ।

मित्रः—मिथ्र् । अर्थवन्–अथ्र्वन सञ्जातः ।

पारसीकेषु तु जरथुष्ट्र पूर्वम् सोमेन (अवेस्तायां) 'हओमेन' देवपूजाविधीयते स्म । वेदस्य 'यमवैवस्वतः' अवेस्तायां "यिम विवन्ह्वतः" सोमानुष्ठानकुशलशरीरो मृत्योर्मार्गं विहाय स्वर्गं भूषितवान् । वेदस्य अर्य्यमन् तत्र एरयमन् अभूत् । भगस्तु भग एव ।

जरथुष्ट्र मतस्य प्रभावादसुरमहत् 'अहुरमज्दा' सञ्जातः परं अर्थस्तु स एव महान् प्राणदाता परमात्मा इत्यर्थः । ऋग्वेदे असुरः पिता नः (५.८३.६) वैदिकऋत 'अर्त' शब्दे परिवर्तितः तेल–एल–अमर्नायाः शिलालेखे (१४०० ई० पू०) एष उपलब्धः । ऋतस्य पन्थाम् न तरन्ति दुष्कृतः तत्र 'अश्' (ऋत) स्तुतौ कथितम्—"अएवो पन्ताओ यो अशहे, वीस्पे अन्य एसां अपन्ताम् ।

मुस्लिमदेशेषु ते जना अद्यापि जश्नं कुर्वन्ति, एषः जश्नः वस्तुत आर्याणां यज्ञ (य+ज्+ञ) एव विद्यते । अवेस्तायां स एव यश्नः पुनश्च जश्नः समजनि । तेषां स्त्रियः स्वभर्तारं 'खसम' इति शब्देन उच्चारयन्ति । आर्यपुत्रशब्दस्थाने 'खसम' शब्दः संस्कृतिर्बहुलः विद्यते । खः आकाशः [1] तद्वत् । वेदेषु माता–भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' तथा विवाहसमये पण्डिताः पठन्ति "द्यौरहं पृथिवी त्वं ताविह विवहावहै प्रजामाजनयावहै (वृ० ३. ६. ४.२०) यथा द्यौः भूमिमाच्छाद्य तां जलेन सिञ्चति वीर्यवतीं च करोति । तथैव पतिरपि स्त्रियां सिञ्चति, पुत्रादिभिः संयोजयति ।

इत्थं वक्तुं पारयामः यत् संस्कृतभाषादर्पणे वयं सम्पूर्णमपि लोकं पश्यामः । सर्वत्रैव सर्वासु भाषासु, विशेषतश्च सतम् वर्गस्य, संस्कृतशब्दाः स्वरूपपरिवर्तनं विधाय तस्य लोकस्य तस्याः भाषायाः सुतरां सेवां कुर्वन्ति । तत्र च अस्माकं एते शब्दाः राजदूता इव अस्मान् गौरवास्पदान् कुर्वन्ति ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा इति, भगवतो मनो सन्देशं उद्देश्यञ्चाभिनिपीय श्रेष्ठाः पुरुषाः समस्तायां जगत्यां सञ्चरन्तः भाषां भावं संस्कृतिमध्यात्मं च सर्वेषु दशेषु रोपयामासु । एवं आदिकालत एव इयं संस्कृत–सञ्चार–प्रचार–व्यवस्था सर्वत्रैव सञ्चरति न तु केवलं प्रथम महायुद्धसमये । अधुनापि गायका, वादका, नर्तका नटा–नेतारश्च पृथिव्यां सञ्चरन्त अध्यात्मवादीभिः सह देशस्य महतीं भाषां आशां च उद्बोधयन्ति । □

१ आकाशः परमात्मापि आकाश उच्यते, आ समन्तात् प्रकाशनात् ।

उज्जैनस्थ विक्रमविश्वविद्यालये कालिदास–समारोहे आयोजितायां संस्कृत–वाद-विवाद–प्रतियोगितायां भाषणमिदं प्रथमं पुरस्कृतम्—

भारतस्यैकमात्मानं सीमानञ्च यथायथम् ।
न कालिदासादपरः कविर्दर्शयतेतराम् ।।

विपक्षेभाषणकर्त्ता— दूधपुरी गोस्वामी
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य
संस्कृत-विभागस्य छात्रः

अयि ! प्राच्यार्वाच्य विद्यानिधयः, गीर्वाणवाणीविलासोल्लसन्मानसः, मान्याध्यक्ष-महाभागाः ! विधिविधानपारंगता निर्णेतारः ! कालिदाससमाराधितस्य कालिकान्तस्य महाकालस्य व्यासपीठमधिष्ठिताः संस्कृतानुरागिणो विद्वांसश्च । अद्याहं अस्यां वादविवादप्रतिस्पर्धायां विषयस्य विपक्षे ज्ञानाक्षिपातं निक्षिप्य किमपि निगदितुमिहे । यद्यप्यत्र सर्वेऽपि पण्डितप्रवराः कालिदासप्रियाः, तद्गुणगाननिरताः, तदाख्यानाऽऽख्याननिपुणाः, तत्साहित्यसमाराधनतत्पराश्च सन्ति, कालिदासविपक्षे आक्षेप-परिकल्पनां परिकल्य विवदिष्यतो मे विचारश्लाघाकरः को नाम विद्वान् । परं विषयस्य विपक्षिणां कृते समायोजकैः मञ्चव्यवस्थेयं कृता एतेन प्रतीयते यत् केचन सन्ति सन्तो ये खलु कालिदास-विपक्षेऽपि कांश्चिद् विचारात् श्रोतुमिच्छन्त्येव ।

मान्याः ! ये खलु मे प्रतिद्वन्द्विनः सोल्लासं, सोत्प्रासं सोत्साहञ्च मुखं व्यादाय विजल्पन्ति, यत् कालिदासादपरः कोऽपि कविः भारतस्यैकमात्मानं सीमानञ्च यथायथं न दर्शयते । मन्ये, तेषां मानसिकी-यन्त्रव्यवस्था विसंस्थुला सञ्जाता । अत एव वराका मे प्रत्यर्थिनः विवेक-प्रच्युता इव, विपर्यस्तमतय इव, हस्तपादविरहितामर्थशून्यां, मूढ़जनोचितां च वाचमुच्चारयन्ति । अयि,नीरक्षीर-विवेकिनो विद्वासः ! यः कालिदासःकामदास इव श्रृगारैकरसः कान्तारागप्रियः वासनावासितजीवनः, ललितकलाकलापाकलनकुशलः स भारतस्यात्मानं सीमानं यथायथं वर्णयति इति साम्प्रतमसाम्प्रतमिवाभासते । ये मे प्रतिपक्षिणः समाक्षिपन्ति यत् कालिदासः क्वचिद् स्वनायकानां जीवनदर्शनव्याजेन, क्वचिद् पर्वतवर्णनव्याजेन, क्वचिद् नदीरचनाचातुर्येण, क्वचिद् नगरवैभववर्णनव्याजेन च भारतस्य सीमानं दर्शयति, तान् प्रत्यहं कथयामि, यत् संस्कृतसाहित्ये बहवो हि कवीश्वराः भासभवभूतिहर्षाश्वघोषप्रभृतयः सन्ति ! यैः कविभिः स्वसाहित्ये वनपर्वत नगरोद्यानादिनामातीव चारुतया वर्णनं कृतं । किमेतेषां वर्णनमात्रेणैव सीमा निश्चयो भवति ।

मान्याः ! प्रकृतिवर्णनं सामान्यरूपेण कवेःकर्म भवति । प्रकृतिवर्णनं बिना साहित्यं परिपुष्टमेव न । अतः कोऽपि कविः राष्ट्रीयभावनया न प्रकृतिं वर्णयति, अपितु स्वसाहित्यसौन्दर्यवर्धनाय, पाठकानां चित्तानुरञ्जनाय च तच्चित्रणं करोति । केचन कालिदासस्य समर्थकाः निजमतसमर्थनाय तर्कं

प्रयच्छन्ति, यत् कालिदासेन रघोर्दिग्विजयव्याजेन भारतस्य सीमाविषयिकी गीतीरेव कवितया समुद्गीता। परं अत्र विचारणीयं किं दिग्विजयमात्रेणैव सीमानिर्धारणं कर्तुं शक्यते, नान्यथा। रघुवंशस्य चतुर्थे सर्गे राजारघुर्यदादिग्विजयं कर्तुं स्वस्थानात् निर्ययौ तदासौ विभिन्नदिग्वर्तिनो नृपतीन् वशीकृत्य तेषां कीर्तिमेव जग्राह न तु तेषां श्रियं सीमानं वा। एतेन प्रतीयते यत् रघोर्दिग्विजयः केवलं रघोः पौरुषमेव प्रथयति, न तु भारतस्य सीमोद्देशान् दर्शयति।

मान्याः! केचन मे प्रतिपक्षिणः वदन्ति यत् कालिदास एव भारतस्यात्मानं बहुशः पुष्णाति। स एव आत्मविषये एकरूपान्वितान् विचारान् विरचयति स एव आत्मनोन्नतिं दर्शयति। एते सर्वेऽपि विचाराः उन्मत्तप्रलापा इव आभान्ति। यः कवीश्वरः आत्मावेक्षणे निर्निद्रो भवति स आत्मानं वेत्ति, स एव ज्ञानविज्ञानवैचक्षण्यमाधत्त, स एव आत्मनो निगूढतत्त्वं सरलया वाचा वदति। परं कालिदासस्तु आत्मनः एकमपि कलां न कलयति। स तु सर्वदैव स्वनायकानां जीवने तां परिपाटिं प्रवेशयति या मानवानुद्वेजयति या प्रतिपदं विरसान् विधाय विद्रावयति या च सतोऽपि असतो विदधाति। श्रीमन्तः! कालिदासस्य अग्निवर्णाभिधं नायकं को न वेत्ति यो हि प्रजापालनपराङ्गमुखः सन् रमणीरमणानुरक्तः पामरजनोचितं वाममार्गं प्रपेदे। अभिज्ञानशाकुन्तले नृपतेः दुष्यन्तस्य चरित्रं तु सर्वविदितमेव यो हि आखेटव्याजेन मृगमनुसरन् परिक्षान्त–देहः कण्वाश्रमं विवेश। तत्र च आश्रम–बालवृक्षान् कोमललताश्च भुजोत्क्षिप्तकलशसलिलसेकेन संवर्धयन्तीं प्रकृतिपेलवां, सकलप्रपञ्चविवर्जितां, मुनिकन्यकां शकुन्तलां विषगर्भैर्मृदुलैः पापिष्टजनोचितैः वचनविन्यासैः अतिसंधाय महति दुःखागर्ते पातयामास। एवमेव रघुवंशे वर्णितानां अजदशरथप्रभृतीनां नायकानां चरित्रं कविना कालिदासेन कीदृग्घृणितं, इति सर्वे एव जानन्ति। मालविकाग्निमित्रे अग्निमित्रस्य चरित्रं किं आत्मविदां पुरुषाणं चरित्रलवेनापि-तुलयितुमलम्। विक्रमोर्वशीये नाटके नायकनायिकयोरन्येषाञ्च पात्राणां यत् वर्णनं उपलभ्यते तद् वीक्ष्य वक्तुं शक्यते यन्नास्ति किमपि आत्मविद् जनोचितमाचेष्टनम्।

मान्याः! कोऽयमात्मा? किञ्चात्मनः स्वरूपम्? का नाम आत्मप्रशस्ति? के सन्ति आत्मोद्धरणोपायाः? अस्मिन् विषये महाकविकालिदासः किमपि न वदति। पुनरसौ आत्मैक्यं दर्शयते, आत्मोन्नतिमातनोति, आत्मसंस्कृतिञ्च परिपुष्णाति, एते सर्वेऽपि विचाराः दुराग्रहगृहिलानां मम प्रतिस्पर्धिनां केवलं आत्मविकत्थनामेव प्रथयन्ति। न तेषां वचांसि मनागपि सारगर्भाणि तर्कपरि-तुष्टानि, विद्वज्जन–मनोहराणि च मे प्रतिभान्ति। अन्तेऽहं उपसंहृतिरूपेण इत्थमेव समर्थयामि यत् क्वचिदपि कालिदासः भारतस्य सीमानं यथायथं न दर्शयते, नापि च यथायथं आत्मानमेव दर्शयते। अतः कालिदासं परित्यज्य अन्येषां कवीश्वराणां गुणागणैरात्मानं कृतार्थयन्तु श्रीमन्तः। इत्येव प्रार्थये॥

□

उज्जैनस्थ–विक्रमविश्वविद्यालये कालिदास–समारोहे आयोजितायां संस्कृत–वाद-विवाद–प्रतियोगितायां भाषणमिदं तृतीयं पुरस्कृतम्—

भारतस्यैकमात्मानं सीमानञ्च यथायथम् ।
न कालिदासादपरः कविर्दर्शयतेतराम् ॥

पक्षेभाषणकर्त्ता—ब्र० सत्यदेव
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयः
संस्कृत-विभागस्य छात्रः

विविधविद्याविभा विभासितान्तकरणाः ! संस्कृतरक्षाव्रतपरिपालनपारायणाः । प्राच्यार्वाच्यपरिपाटीपारिपोषकाः ! मान्याः ! सदसस्पतयः ! न्यायविद्यापारंगताः निर्णेतारः ! संस्कृतसाहित्यसुधास्वादसरसस्वान्ताः, सरस्वतिरसरसिकाः, श्रोतारश्च ! अद्याऽहं समायोजितायामस्यां भारतस्यैकमात्मानं सीमानञ्च यथायथम् । न कालिदासादपरः कविर्दर्शयतेतराम् ॥ इत्यस्यां वादविवाद प्रतिस्पर्धायाम् विषयस्य पक्षमभिलक्ष्य ज्ञानवतां भवतां पुरस्तात् वक्तुमक्षमोऽपि श्रीमतां शुभाशीर्वादेन किमपि विवक्षुरस्मि ।

सत्यमेव प्रतिभाति यत् कालिदासात् भिन्नः कोऽपि कवीश्वरः भारतस्यात्मविषये सीमाविषये च कालिदासप्रथितं विचारचयंमतिशय्य न प्रतिष्ठां प्राप्नोति प्रथितायां काव्यपरम्परायाम् । मान्याः ! कविकुलगुरुः कालिदासो यत्र कविता-वनिता-विलासः तत्रैवासौ भारतस्यात्मनो विकासः सीमोल्लासश्चापि अस्ति । कालिदासः स्वकीयासु सर्वास्वपि कृतिषु वाद्यप्रकृतिमुपवर्णयन् सर्वत्रैवासौ भारतस्य अखण्डतां तदात्मानं च विलोकयति । कदाचिदसौ उत्तुङ्ग–पर्वतान् वर्णयन् भारतस्य आत्मनः औन्नत्यमेव आतनोति, कदाचित् सागरोल्लासमालपन् भारतस्य आत्मोल्लासमेव उल्लासयति, कदाचित् नदीवृन्दं वदन् भारतस्य आत्मनः प्रवाहः सातत्यमेव प्रसारयति, कदाचित् नगरोद्यानवैभवं वर्णयन् भारतस्य विभवतामेव आविर्भावयति, कदाचिच्चश्यामलवनमालां विरचयन् भारतस्य शस्यश्यामलतामेव उपपादयति । एवं प्रकारेण कालिदासस्य चलनेऽपि,वदनेऽपि,लेखनेऽपि,दर्शनेऽपि, स्वप्नेऽपि च भारतस्याखण्डता प्रतिबिम्बितेवाभाति ।

रघुवंशस्य प्रथम–सर्गे यदा कालिदासः इक्ष्वाकुवंशीयानां वर्णनं करोति, तदा आसमुद्रक्षितिशानाम्, आनाकः रथवर्मनाम् "इत्युदीर्य स्वर्गपर्यन्तम् अर्थात् त्रिविष्टपान्तं यावत् तु उत्तरस्यां दिशि सागरान्तं यावत् तु दक्षिणस्यां दिशि भारतभुवः सीमाविस्तारं विबोधयति, रघुवशंस्य तृतीयसर्गे यदा नन्दिनी दिलीपस्य सेवाभावं परीक्षितुं इयेष तदा–गौरी–गुरोर्गह्वरमाविवेश इति निगद्य कालिदासः

भारतस्य सीमावर्तितामेव आपुपोष। रघुवंशस्य चतुर्थे सर्गे तु रघोर्दिग्विजय व्याजेन भारतस्य सीमानमेव समन्तात् वर्णयामास। कानिचित् सीमावन्ती मनोहराणि पद्यानि समुदाहर्त्तव्यानि—

वंगानुत्खाय तरसा नेतानौ साधनोद्यतान्। नीचखान जयस्तम्भान् गंगास्रोतोऽन्तरेषु सः॥
गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मं विजयी नृपः। श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम्॥
दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि। तस्यामेव रघो पाण्ड्या प्रतापं न विषेहिरे॥
ताम्रपर्णे समेतस्य मुक्तासारं महोदधेः। ते निपत्य दधुः तस्मै यशः स्वयमिव सञ्चितम्॥
पारसीकास्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना। इन्द्रियाख्यानिव रिपून् तत्त्वज्ञानेन संयमी॥
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्त–विक्रमम्। कपोलपाटलादेशी बभूव रघुचेष्टितम्॥
काम्बोजः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वरः। गजलान् परिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानतः॥

मान्याः! एवं कालिदासः पूर्वस्यां दक्षिणस्यां प्रतिच्यामुदिच्याञ्च यथायथम् भारतस्य सीमानं एव समुद्घोषयाञ्चक्रे। यथा कालिदासः सीमानं दृढ़यति तथैव भारतस्यात्मानमपि पोषयति भारतीया संस्कृतिरेव भारतस्यात्मा। अत एव कालिदासः प्रतिपदं संस्कृतिमेव पुष्णाति। तस्य सर्वेऽपि नायकाः धर्मपरिपाटीपालनपरायणाः संस्कृतिप्रसारकुशलाः कर्मकाण्डप्रकाण्डपण्डिताः उदात्तभावविभूषिता-श्च सन्ति। तेषां जीवने सत्यपि भाषा–विचार–साम्यमेव विलोक्यते—

वर्तमानास्वपि बहुविधासु वेषपरम्परासु स्वभावगतशालीनता तु एकैव विराजते प्रवर्तमानेष्वपि। बहुविधेषु उत्सवप्रकारेषु अतिथिनां सत्कृतिः एकरूपतामेवाकलयति॥

श्रीमन्तः! कालिदासोऽयं कविश्वरः वर्णव्यवस्थां आश्रमव्यवस्थां जन्ममरणव्यवस्थाञ्च सम्यक् परिपोषयन् सर्वेषामपि जीवने भारतीयसंस्कृतिरेकतामेव दर्शयति।

अन्तेऽहं स्वकीयां वाक्सरणिं संहृत्य इदमेव वच्मि, यत् कालिदास एव भारतस्य सीमानं दृढ़यति स एव भारतस्यात्मानं आनन्दयति, स एव गुणगणैर्भारतमाख्यापयति, स एव संस्कृतिगीतिकां गायति, स एव परम्परां परिपाति, स एव च जीवनादर्शान् दर्शयति। कालिदासस्य अखिलमपि साहित्यं भाव–प्रधानं विद्यते, भावास्तु हृदये वसन्ति, हार्दिकीया भावना सा एव आत्मभावना भवति। अतः कालिदासस्तु आत्मकविरस्ति। अन्तेऽहं दृढ़ं समर्थयामि सत्यापयामि च यत्—

भारतस्यैकमात्मानं सीमानं च यथायथम्।
न कालिदासादपरः कविर्दर्शयतेतराम्॥ इति जयतु भारतिः॥

नारी का यज्ञाधिकार

—डॉ० सत्यव्रत 'राजेश'
वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय

नारी समाज का भूषण है। यही मानव की आदिगुरु तथा पथप्रदर्शिका है, मानव के निर्माण में जिन तीन सत्ताओं का सर्वाधिक योगदान है, उनमें माता का नाम सर्व प्रथम आता है। 'मातृमान्-पितृमानाचार्यवान्' की श्रृंखला में सर्व प्रथम स्थान माता का ही है, वेद नारी को उच्चासन पर आरूढ़ करता है, किन्तु मध्यकाल में कुछ आचार्य नारी को उस उच्च स्थान से नीचे पटक देते हैं। तथा उसके समान अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं, उनके अनुसार स्त्री को न वेदाध्ययन का अधिकार है, न यज्ञोपवीत धारण करने का और न यज्ञ करने का। पूर्वोक्त दोनों बातों पर पुनः विचार करेंगे। इस निबन्ध में तो स्त्री के यज्ञाधिकार विषय पर वेद तथा महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य के संदर्भ में विचार किया जायेगा।

अथर्ववेद तथा स्त्री का यज्ञाधिकार—

अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर स्त्री द्वारा गार्हपत्याग्नि–सपर्या का तथा यज्ञ करने का उल्लेख है, अथर्ववेद के एक मन्त्र में स्त्री के लिये कहा है कि "यह इस (पति) के घर में पति तथा देवरों का हित चाहने वाली, पशुओं के लिये मङ्गलमयी, सुन्दरतया यम नियमों का पालन करने वाली, उत्तम तथा नियन्त्रण करने वाली, वर्चस्विनी-शारीरिक कान्ति से युक्त, उत्तम सन्तान वाली, वीरप्रसविनी, देवर की कामना वाली तथा सबको सुख देने वाली हो और इस गार्हपत्य अग्नि की परिचर्या करे–यज्ञ करे[1] एक अन्य मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि 'जब यह वधू पहले गार्हपत्य अग्नि की परिचर्या अर्थात् अग्निहोत्र कर ले तत्पश्चात् यह सास ससुर आदि को नमस्कार करे अथवा वेद का स्वाध्याय तथा बड़ों को नमस्ते करे"[2] अन्यत्र कहा है कि—"दर्भ (बल्बज) बिछाकर उस पर लाल मृगचर्म बिछावे तथा उस पर बैठ कर यह उत्तम स्थान वाली इस अग्नि की सपर्या करे—अग्निहोत्र करे,[3] एक अन्य मन्त्र में भी चर्म पर बैठकर नारी के अग्नि के पास जाने अर्थात् अग्निहोत्र करने का उल्लेख मिलता है।[4]

१–अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि, शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ अथर्व० १४.२.१८

२–यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम्।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ अथर्व १४.२.२०

३–उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥ अथर्व १४.२.२३

४–आरोह चर्मोप सीदाग्निम् ॥ वही १४.२.२४

इसी प्रकार एक मन्त्र में कहा है–"इस माता की गोद से नाना आकृति तथा गुणों वाले पशु अर्थात् सन्तानें विविध स्थिति को प्राप्त करें, उत्तम मङ्गलस्वरूप यह वधू इस अग्नि के समीप बैठे अर्थात् अग्निहोत्र करे,[1] अथर्ववेद तो यहां तक कहता है कि—पत्नी जो पत्नी रूप में दिखाई देतो है वह तभी, जब वह यज्ञ करती हो।[2]

महर्षि दयानन्द का यजुर्वेदभाष्य तथा स्त्री का यज्ञाधिकार—

महर्षि दयानन्द जगती के नवजीवन दाता थे, उन्होंने समाज की गली सड़ी मान्यताओं को विध्वंस करके उसके ऊपर वैदिक समाज का भव्य भवन निर्माण किया,वे नारी जाति के समानाधिकार के पोषक थे। सामाजिक स्थिति में भी वे नारी के–यज्ञाधिकार का उल्लेख अपने वेदभाष्य में अनेकों स्थानों पर करते हैं, यजुर्वेदभाष्य में उन्होंने 'होत्राः' का अर्थ 'हवनकर्मानुष्ठात्र्यः' अर्थात् हवन के कार्य का अनुष्ठान करने वाली कहा है तथा ब्रह्मचारिणी कन्या को उपदेश दिया है कि—'तू भी हमारी भांति अपने सुख देने वाले पति के निकट रहने वाली और अग्निहोत्र आदि का अनुसरण करने वाली हो।[3]

इसके भावार्थ में इसी तथ्य का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—" जैसे अपने पति की सेवा करती हुई, उसके समीप रहने वाली पतिव्रता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिरबुद्धि रखती है, वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर बर्तना चाहिये"[4]

एक स्थान पर सभाध्यक्षों की पत्नी के कृत्यों पर विचार करते हुए कहा है—'हे विद्यायुक्त स्त्रियों ! तुम विद्युत् के सदृश मेघ की वर्षा के तुल्य सुखदायक की गति तुल्य चलने वाली,धन की वृद्धि करने वाली तथा यज्ञ में सहाय देने वाली हो।[5]

यजुर्वेदभाष्य में एक स्थल पर 'पत्नीवन्'[6] पद आया है,जिसका अर्थ है "प्रशस्त यज्ञ सम्बन्धिनो पत्नी वाला" तथा 'पत्नीवतः[7] का अर्थ भी ऐसा ही किया है।

१–वि तिष्ठन्तामस्या मातुरुपस्थान्नानारूपा पशवो जायमानाः।
सुमङ्गल्युपसीदेममग्निम्० ॥ अथर्व० १४.२.२५ ॥

२–पत्नी यद् दृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा ॥ वही २०.१३५.५ ॥

३–द्र०, यजु० ६.२५ अन्वय ॥

४–वही ६.२५ का भावार्थ।

५–वही ६.३४ अन्वय।

६–पत्नीवन्—प्रशस्ता यज्ञसम्बन्धिनी पत्नी यस्य तत्सम्बुद्धा, ८.१० यजु० ॥

७–प्रशस्ता पत्नी यज्ञसम्बन्धिनी तद्वतोऽयम् ॥ यजु० १८.२० ॥

स्त्री शिक्षा विषय पर प्रकाश डालते हुए एक मन्त्र में विदुषी स्त्री अन्य स्त्रियों को शिक्षा देती हुई कहती है—"हे स्त्रियो ! जैसे सुशिक्षा को प्राप्त हुई वाणियों को प्रेरणा करने वाली, शुद्ध बुद्धियों को अच्छे प्रकार ज्ञापन करती हुई उत्तम विज्ञान से युक्त हुई मैं यज्ञ को धारण करती हूँ वैसे यह यज्ञ तुमको भी करना चाहिये ।1

इस प्रकार महर्षि दयानन्द का यजुर्वेदभाष्य स्त्री को यज्ञ करने का अधिकार देता है तथा वे स्त्रियां अन्य स्त्रियों को यज्ञविज्ञान की शिक्षा भी देती हैं। ऋग्वेद ने तो स्त्री को यज्ञ की ब्रह्मा बनने का अधिकार भी दिया है ।2

गोभिल–गृह्यसूत्र में स्त्री का यज्ञाधिकार—

गोभिल गृह्यसूत्र में प्रातः सायंकालीन यज्ञ की विधि का निर्देश करके कहा है कि इसके बाद अर्थात् प्रथम बार यज्ञ करने के पश्चात् आजीवन या अवमृथ स्नान तक प्रतिदिन प्रातः सायं यज्ञ करे अथवा करवाये,3 यहां यज्ञ की प्रतिनिधि बनकर यज्ञ कौन करे, यह बतलाते हुए कहा है कि—चाहे दोनों समय गृह्याग्नि में पत्नी ही यज्ञ करे, क्योंकि पत्नी को गृहा कहते हैं तथा यह अग्नि भी गृह्याग्नि है । अतः गृहा (पत्नी) ही गृह्याग्नि में होम करे।4

संस्कार–विधि में स्त्री के यज्ञ करने का विधान—

महर्षि दयानन्द—संस्कारविधि के गृहाश्रमप्रकरण में स्त्री पुरुष दोनों को समान रूप से यज्ञ का अधिकारी मानते हुए लिखते हैं—"जैसे सायं प्रातः दोनों सन्धि वेलाओं में सन्ध्योपासन करें, इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष अग्निहोत्र भी दोनों समय में नित्य किया करें", इस पर टिप्पणी देते हुए महर्षि लिखते हैं—"किसी विशेष कारण से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक ही स्त्री या पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवें अर्थात् एक-एक मन्त्र को दो-दो बार के दो-दो आहुति करें ।5

यहां महर्षि दयानन्द गृहस्थ–स्त्री–पुरुषों को नित्य उभयकाल यज्ञ का विधान करते हैं तथा यदि दोनों में से एक न हो तो जहां पुरुष को स्त्री द्वारा दी जाने वाली आहुति देने का विधान

१–हे स्त्रियो यथा सूनृतानां चोदयित्री सुमतीनां चेतन्ती सरस्वती सत्यहं यज्ञं दधे तथायं युष्माभि–रप्यनुष्ठेयः ।। यजु २०.८५ अन्वय ।

२–स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ।। ऋ ८.३३.१९

३–एवमत ऊर्ध्वं गृह्येऽग्नौ जुहुयाद्वा द्वावथेद्वा ऽऽ जीवितावमृथात् ।। गो गृ० सू० १.३.१३

४–कामं गृह्येऽग्नौ पत्नी जुहुयात् सायं प्रातहोमौ, गृहाः पत्नी गृह्य एषोऽग्निर्भवतीति ।। वही १.३.१५ ।

५–द्र० सं० वि० गृ० प्र० पृ० २६६ (अथाग्निहोत्रम्)

किया है,वहां यदि पुरुष उपस्थित न हो तो अकेली स्त्री ही को अपनी तथा अपने पति द्वारा दी जाने वाली आहुतियां देने का स्पष्ट निर्देश करते हैं।

स्त्री-यज्ञ और रामायण—

रामायण हमारी सांस्कृतिक धरोहर का समुज्ज्वल इतिहास है, उसमें परस्पर व्यवहार का जैसा सुन्दर चित्रण मिलता है वह उसकी अपनी ही विशिष्टता है। रामायण के अध्ययन से भी यह सिद्ध होता है कि स्त्रियों को यज्ञ करने का अधिकार था तथा वे यज्ञ किया करती थीं। अयोध्याकाण्ड के बीसवें अध्याय में जब राम वनवास की आज्ञा लेने माता कौशल्या के पास गए तब वह यज्ञ कर रही थीं, इसका चित्रण करते हुए वाल्मीकि लिखते हैं—

वह (कौशल्या) रेशमी वस्त्र पहन कर बड़ी प्रसन्नता के साथ निरन्तर व्रत परायण होकर मङ्गलकृत्य पूर्ण करने के पश्चात् मन्त्रोच्चारण पूर्वक उस समय अग्नि में आहुति दे रही थी[1]।

उसी समय श्री राम ने माता के शुभ अन्तःपुर में प्रवेश करके वहां माता को देखा, वे अग्नि में हवन कर रही थीं[2]।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेद स्त्रियों को यज्ञ करने का विधान करते हैं। वेद का तो स्पष्ट सन्देश है कि—"पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्" अर्थात् मानव मात्र मेरे यज्ञ को करे, निघण्टु में पञ्चजना मानव मात्र के नाम के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है मानव मात्र,[3] चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उसे यज्ञ करने का पूर्ण अधिकार है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को भी यज्ञ का पुरुषों की भांति ही अधिकार है।

□

१—सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यंव्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत् कृतमङ्गला॥ वा० रा० अयो० सर्ग २०, श्लोक १५

२—प्रविश्यतु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम्।
ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम्॥ वही १६, सम्वत् २०३३, पृ० २४४

३—निरुक्त ३।८।१

प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था

—भारत भूषण शर्मा
एम० ए० द्वितीय वर्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व

मैकाइवर तथा कूलें आदि पाश्चात्य समाज शास्त्रियों ने अपने विस्तृत अध्ययन के आधार पर बतलाया है कि सामाजिक वर्ग विश्व के सभी समाजों में किसी न किसी रूप में अवश्य पाये जाते हैं। कहीं पर सामाजिक वर्गों के निर्माण का आधार जन्म होता है, तो कही पर धन, इतना निश्चित है कि सामाजिक वर्ग प्रत्येक समाज में पाये अवश्य जाते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों एवं व्यवसायों के आधार पर उन्हें विभिन्न वर्गों में बांटने के प्रयत्न आदि काल से ही होते रहे हैं। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध समाज शास्त्री एच. जी. वेल्स का कथन है कि मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के आधार पर समाज विभाजन से समाज का श्रेष्ठ विकास होता है तथा उसकी शक्ति बढ़ती है। किंग्सले डेविस तथा मूरे ने सामाजिक वर्गों का विश्लेषण करते हुये यह बतलाया है कि समाज अपनी स्थिरता एवं उन्नति के लिये अपने व्यक्तियों को उनकी योग्यता एवं प्रशिक्षण को ध्यान में रखते हुए विभिन्न वर्गों में बांट देता है।

प्राचीन भारतीय विचारकों ने भी मनुष्य की मनोवैज्ञानिक प्रवत्तियों को ध्यान में रखते हुए सामाजिक स्तरीकरण की एक सुनियोजित नीति अपनायी तथा कार्यात्मक दृष्टि से समाज को चार वर्णों में विभाजित किया। ये वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र हैं, इसी को वर्ण व्यवस्था का नाम दिया गया है।

वर्ण व्यवस्था हिन्दू सामाजिक संगठन के मौलिक तत्त्व के रूप में पायी जाती है। मनुष्य की चार स्वाभाविक इच्छाएं होती हैं यथा ज्ञान, रक्षा, जीविका तथा सेवा। सम्भवत: इन्हीं इच्छाओं की पूर्ति हेतु प्राचीन हिन्दू विचारकों ने समाज को चार वर्णों में विभाजित किया जिससे प्रत्येक वर्ण अपने कार्य को पूर्ण करता हुआ समाज की उन्नति एवं विकास में योग देता रहे।

वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'वृ वरणे' धातु से हुई जिसका अर्थ है वरण करना अथवा चुनना। इस प्रकार मनुष्य अपने कार्य एवं स्वभाव के आधार पर जिस व्यवसाय का चुनाव करता है उसे वर्ण कहा जा सकता है।

ऋग्वेद में सर्वप्रथम वर्ण शब्द का प्रयोग गोरे (आर्य) तथा काले (अनार्य) रंग के मनुष्यों के लिये किया गया है। डा० घूरिये का कथन है कि आर्यों ने भारत के मूल निवासियों को पराजित कर उन्हें अपना दास बना लिया तथा अपने एवं उनके बीच के अन्तर को स्पष्ट करने के लिये ही (आर्य)

गौर वर्ण तथा अनार्य कृष्ण वर्ण शब्द का प्रयोग किया। श्री पान्डूरंग वामन काणे की यह मान्यता है कि प्रारम्भ में गौर वर्ण का प्रयोग आर्यों के लिये तथा कृष्ण वर्ण का प्रयोग दास दस्युओं के लिये किया गया। समय के साथ-साथ जैसे-जैसे आर्यों की संख्या में वृद्धि होती गयी उनके कार्यों में भी भिन्नता आती गयी और गौर वर्ण अर्थात् अपने-अपने गुणों के आधार पर तीन वर्णों में विभक्त हो गये यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य, चूंकि ये तीनों वर्ण एक ही मूल से सम्बन्धित थे अतः प्रारम्भ में इनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध खान-पान एवं सामाजिक सम्पर्क का उल्लेख वेदों में भी मिलता है। द्रविड़ जो कि यहां के मूल निवासी थे उन्हें शूद्र वर्ण का कहा गया। इस प्रकार जिन व्यक्तियों के गुण एवं कर्म एक से थे, वे एक वर्ण के माने जाते थे।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्न रूपेण उल्लेख है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ ऋ० १०.९०.१२ ॥

इस श्लोक में विराट् पुरुष की कल्पना तथा उसके शरीर के विभिन्न अंगों से चारों वर्ण के मनुष्यों की उत्पत्ति से स्पष्ट होता है कि वर्ण व्यवस्था सिद्धान्त रूप में अति प्राचीन है, तथा चारों वर्णों में भिन्न-भिन्न स्वभाव गत विशेषताएं हैं लेकिन एक ही समाज रूपी शरीर के अलग-अलग होने के कारण उनमें परस्पर अन्तर निर्भरता भी दिखलायी पड़ती है।

गीता में श्री कृष्ण जी ने कहा है :—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म-विभागतः" अर्थात् गुण एवं कर्मों के आधार पर चारों वर्णों का विभाजन मैंने किया है।

महाभारत में ही एक अन्य स्थल पर वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में निम्न श्लोक मिलता है—

"एक वर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर।
कर्म-क्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् ॥
न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्।
ब्राह्मणः पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥"

अर्थात् श्री कृष्ण युधिष्ठिर को बताते है कि—हे युधिष्ठिर इस जगत् में पहले एक ही ब्राह्मण वर्ण था, गुण कर्म के आधार पर बाद में चार वर्ण बने, वर्णों में कोई भी वर्ण किसी प्रकार की विशिष्टता नहीं रखता क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है। पहले सबको ब्रह्मा ने ही उत्पन्न किया बाद में कर्मों के भेद से वर्णों की उत्पत्ति हुई।

प्रारम्भिक काल में वर्ण व्यवस्था का आधार क्या था इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विचारक डॉ० राधाकृष्णन् का कथन है कि इस व्यवस्था में वंशानुक्रमणीय क्षमताओं का महत्त्व अवश्य था, परन्तु फिर भी मुख्यतया यह व्यवस्था गुण तथा कर्मों पर आधारित थी। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने महाभारत एवं इससे पूर्वकाल के अनेक ऐसे उद्धरण प्रस्तुत किये जिनसे इस तथ्य को बल मिलता है कि उस काल में वर्ण परिवर्तन सम्भव था। विश्वामित्र, राजा जनक, महामुनि व्यास वाल्मीकि अजामिल आदि अपने गुण तथा कर्मों के आधार पर अपना वर्ण परिवर्तित कर पाये थे। भागवत में भी धष्ट्र नामक एक क्षत्रिय जाति का उल्लेख मिलता है जो कि अपने कर्मों के आधार पर ब्राह्मण बन गयी थी। के० एम० पाणिक्कर ने भी वर्ण व्यवस्था का आधार गुण कर्म को ही स्वीकार किया है।

स्मृति के अनुसार जन्म के समय व्यक्ति को शूद्र मानना तथा उपनयन व अन्य अनेक संस्कारों द्वारा शूद्र होने पर उसे द्विज–ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान करना भी यही स्पष्ट करता है कि वर्ण सदस्यता के निर्धारण में कर्म का महत्त्व प्रमुख था। यदि वर्ण का आधार जन्म होता तो यह सब सम्भव नहीं हो सकता था। इसी प्रकार डॉ० जी० एस० घूरिये ने भी गुण एवं कर्म को ही वर्ण निर्धारण का आधार कहा है।

इस प्रकार विदित होता है कि महाभारत काल तक वर्ण निर्धारण का आधार गुण एवं कर्म को माना गया, धीरे-धीरे स्मृतिकारों का झुकाव इस व्यवस्था को कठोर बनाने की ओर होता गया तथा उन्होंने ऋग्वेद के पुरुष - सूक्त की व्याख्या अपने ही तरीके से करना प्रारम्भ कर दिया एवं वर्ण व्यवस्था को एक ईश्वरीय व्याख्या के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया,फलस्वरूप गुण एवं कर्म पर आधारित उदार वर्ण व्यवस्था में कठोरता आती गयी एवं व्यक्ति के लिये वर्ण परिवर्तन सामान्यत: सम्भव नहीं रह गया।

विभिन्न धर्मग्रन्थों में दिये गये अलग-अलग वर्णों के कर्त्तव्यों या उनके वर्ण धर्मों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन की एक ऐसी सुनियोजित व्यवस्था है जिसके द्वारा सभी प्रकार के कार्यों को विशेष ज्ञान के आधार पर पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है। मनुस्मृति में चारों वर्णों के धर्मों का उल्लेख अलग-अलग दिया गया है।

(i) **ब्राह्मणों का धर्म**—वेदाभ्यासो हि-विप्रस्य तपः परिमिहोच्यते।
अध्यापनमध्ययन - यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणाय कल्पयत्॥

(ii) **क्षत्रियों का धर्म**—प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

(iii) **वैश्यों का धर्म**—पशूनां रक्षणां दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिको कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ।।

(iv) **शूद्रों का धर्म**—एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुकर्मसमादिशत् ।।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रुषामनसूयया ।।

वर्ण धर्म का पालन करने वाले व्यक्तियों को यह भी विश्वास दिलाया गया कि जो व्यक्ति अपने-अपने वर्ण धर्म का पालन करेंगे, उन्हें अगले जन्म में उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त होगी । इसी वर्ण व्यवस्था ने समाज को विभिन्न खण्डों में बांटने के स्थान पर संगठित बनायें रखने का प्रयास किया । इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को अपने गुण कर्म के आधार पर वर्ण परिवर्तन का सुअवसर भो दिया गया ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हमारी वर्ण व्यवस्था समता की नीति पर आधारित थी । इसमें समाज का चार वर्णों के रूप में कार्यात्मक-विभाजन अवश्य रहा, लेकिन प्रत्येक वर्ण की सेवाओं को सामाजिक दृष्टि से समान महत्त्व दिया गया, इसी व्यवस्था का पालन कर विभिन्न प्रजातीय समूहं रक्त की शुद्धता को बनाये रख सके, साथ ही अपनी सांस्कृतिक विशेषता को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करते रहे । वर्ण व्यवस्था का इस दृष्टि से भी महत्त्व है कि इसने समाज में शक्ति सन्तुलन को बनाये रखने में योग दिया ।

प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था के गुणों का लाभ समाज को मिलता रहा लेकिन जब प्रत्येक वर्ण सैकडों हजारों जातियों एवं उपजातियों में विभक्त हो गया तो कालान्तर में समाज को अनेक हानियां भी उठानी पडीं, सम्पूर्ण हिन्दू समाज अगणित जातियों में बँट गया । लोगों की सामुदायिकता की भावना अत्यन्त संकुचित हो गयी जिससे राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधाएं उपस्थित हो गयीं फलस्वरूप विदेशी आक्रमणकारियों ने इसका भरपूर लाभ लेकर यहां सैकड़ों वर्षों तक शासन किया । इसी वर्ण व्यवस्था ने आगे चलकर अस्पृश्यता को भी जन्म दिया, इससे समाज के एक बहुत बड़े वर्ण शूद्रों को विकास के समुचित अवसर प्राप्त नहीं हो सके और उन्हें अन्य वर्णों की सेवा करके ही अपनी जीविका चलानी पड़ी, लेकिन यहां पर यह बताना अति आवश्यक है कि प्रारम्भिक वर्ण व्यवस्था में कोई दोष नहीं था बल्कि कालान्तर में विकसित जाति व्यवस्था ही इस हेतु उत्तरदायी है ।

वर्ण व्यवस्था ने वास्तव में समाज को अनेक संघर्षों से बचाया है तथा विभिन्न वर्णों को धर्मानुसार अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करने हेतु प्रेरित किया । लेकिन आज वर्ण व्यवस्था एक सैद्धान्तिक व्यवस्था बन गई है और अब इसका स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया है । आज हमें उसी प्राचीन वर्ण व्यवस्था को प्रतिष्ठापित करने की आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत मनुष्य अपने गुण कर्म के आधार पर अपने व्यवसाय को चुन सके । साथ ही समाज में सबको उन्नति के अवसर प्राप्त हों । □

निपात

—डा० राकेश शास्त्री
संस्कृत-विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

चार प्रकार के पद विभाग के अन्तिम भाग निपात पर विचार करने से पूर्व विचारणीय प्रश्न यह है कि 'पद' शब्द से क्या तात्पर्य है। प्राचीन आचार्यों ने इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। 'पद' शब्द के विषय में सर्व प्रथम ऐन्द्र व्याकरण में उल्लेख मिलता है। यद्यपि आज ऐन्द्र व्याकरण उपलब्ध नहीं होता ?[1] तथापि ऐन्द्र व्याकरण के मत का विभिन्न ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है।[2] उसके अनुसार अर्थ बोधक अक्षर समुदाय को पद कहा जाता है।

यह विस्मय का विषय है कि आचार्य यास्क ने पद विभाग तो किया किन्तु पद की परिभाषा नहीं की। वाजसनेयी प्रातिशाख्य भाष्य में उव्वट ने 'अर्थवान्' को ही पद की संज्ञा दी है।[4] पाणिनि ने सुबन्त और तिङन्त प्रत्यय युक्त शब्दों को ही पद की संज्ञा दी है।[5] उन्होंने निपातों को भी पद स्वीकार किया है, अतः उनके आगे विभक्तियों का लोप करके उनका समावेश अव्यय-संज्ञा में किया है।[6]

वाजसनेयी प्रातिशाख्य में अक्षर समुदाय को पद कहा गया है।[7] कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में पद की परिभाषा की है।[8] वे भी वाजसनेयी प्रातिशाख्यकार के मत से सहमत हैं। न्याय सूत्र में विभक्ति युक्त अक्षर समूह को पद स्वीकार किया गया है।[9]

वस्तुतः 'अर्थवान् वर्ण-समूह' को ही पद संज्ञा देना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि यदि अर्थ रहित अथवा अनर्थक को भी पद कहा जायेगा तो लक्षण में अति व्याप्ति दोष आ जायेगा एवं सभी निरर्थक अक्षर समूह पद्र संज्ञायुक्त होंगे। अधिकांश प्राचीन आचार्य पद की इसी परिभाषा से सहमत हैं।

पुनः विचारणीय है कि पद का कितनी श्रेणियों में विभाजन किया जाय, प्राचीन आचार्यों ने पद विभाजन का प्रयास किया है। आचार्य यास्क ने पदों का चार श्रेणियों में विभाजन किया है नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपान[10] आचार्य दुर्ग भी यास्ककृत पद-विभाजन से सहमत प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन्होंने अन्य मतों का स्पष्ट रूप से खण्डन किया है।[11] दुर्ग के कथन से प्रतीत होता हैं कि प्राचीन काल में विद्वानों में पद-विभाजन के प्रश्न पर ऐकमत्य नहीं था, इस कथ्य की पुष्टि सर्वदर्शन संग्रह के कथन से भी होती है, उसमें भी विभिन्न आचार्यों के पद विभाजन के प्रश्न पर मतभेद का उल्लेख मिलता है।[12]

अधिकांश प्राचीन ग्रन्थों में आचार्यों को पद का चतुर्धा विभाजन ही स्वीकार्य है, क्योंकि ऋक्-प्रातिशाख्य,[13] वाजसनेयी प्रातिशाख्य [14] एवं महाभाष्य[15] आदि में पदों के चतुर्धा विभाजन को मान्यता प्रदान की गयी है। इसके अतिरिक्त वाजसनेयी प्रातिशाख्य के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य उव्वट को भी पदों का चतुर्धा विभाजन ही स्वीकार है।[16] यद्यपि निरुक्तकार को स्वयं भी पदों का चार श्रेणी में विभाजन स्वीकार है तथापि उन्होंने अन्य वैयाकरणों के मतों का भी इस सम्बन्ध में उल्लेख किया है।[17] आचार्य कौटिल्य भी पदों के चतुर्धा विभाजन से सहमत हैं।[18] महिमभट्ट पदों का पांच वर्गों में विभाजन करते हैं।[19] पदों के चतुर्धा विभाजन को ऋग्वेद में भी सहज ही ढूंढा जा सकता है।[20] अतः पदों का नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात चतुर्धा विभाजन ही उचित प्रतीत होता है।

पूर्व प्रतिपादित पदों के चतुर्धा विभाजन में निपातों की गणना सभी प्राचीन ग्रन्थों में की गई है। अतः निपात को एक पद विभाग के रूप में प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में मान्यता प्राप्त है। जो आचार्य पदों को केवल दो या तीन भागों में विभक्त करते हैं, उनके मत में निपात की स्वतन्त्र रूप से स्थिति संदिग्ध है। जैसे—ऐन्द्र व्याकरण के अनुसार—केवल अर्थवान् अक्षर समूह ही पद होने से पदों का एक से अधिक श्रेणियों में विभाजन उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि विभाजन का अन्य कोई आधार उपलब्ध नहीं है, जिसके आधार पर पद का विभाजन सम्भव हो। किन्तु ऐन्द्र व्याकरण के अनुयायियों के मत में निपात को अर्थ-बोधक कहा गया है क्योंकि ऐन्द्र व्याकरण के लक्षण को ही वाजसनेयी प्रातिशाख्य में स्वीकार किया गया है। जिसका भाष्य करते हुए आचार्य उव्वट से निपात की चर्चा की है।[21]

यदि वाजसनेयी प्रातिशाख्य के 'अर्थः पदम्' सूत्र पर आचार्य उव्वट द्वारा की गई व्याख्या के परिप्रेक्ष्य में ऐन्द्र व्याकरण के सूत्र की व्याख्या करे तो स्पष्ट हो जाता है कि इस सूत्र का सम्बन्ध पदों के वर्गीकरण से नहीं हैं। आचार्य कात्यायन को भी स्वयं अर्थभेद के आधार पर पद-चतुष्ट्य विभाजन स्वीकार्य है। वस्तुतः उक्त सूत्र से कात्यायन का मुख्य आशय पद के अवयव की पद संज्ञा न हो, यही रहा है। अतः कात्यायन के उक्त मत के आधार पर यह भी प्रतिपादित किया जा सकता है, कि सम्भवतः इन्द्र को भी अर्थभेद के आधार पर पदों का चतुर्धा विभाजन मान्य था। अतः ऐन्द्र-व्याकरण निपात को अर्थ बोधक मानकर पद स्वीकार करता है। इस प्रकार ऐन्द्र व्याकरण के मत में भी निपात की पद वर्ग के रूप में मान्यता की पुष्टि होती है।

पुनः प्रश्न उठता है कि जो विद्वान् विभक्ति से युक्त शब्द को ही पद स्वीकार करते हैं।[22] उनके मत में निपात को स्वतन्त्र पद वर्ग के रूप में स्वीकार किया जा सकता है? क्योंकि निपात प्रायः विभक्ति युक्त नहीं होते। पाणिनि के मत में नाम एवं आख्यात के आगे प्रयुक्त होने वाले 'सुप्'

एवं 'तिङ्' प्रत्ययों के समुदाय को विभक्ति की संज्ञा दी गई है।23 अतः ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनि को निपात का पृथक् पद-वर्ग होना स्वीकार्य नहीं है। किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि पाणिनि ने पद की परिभाषा देने के उपरान्त निपातों की भी अव्यय-संज्ञा करके उन्हें पद वर्ग के रूप में स्वीकार किया है२४ और उनकी विभक्तियों के लोपार्थ सूत्र की रचना की है।25

न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य में भी निपातों की विभक्यियों का लोप कर उसकी पद संज्ञा स्वीकार की गई है। 26 इसके अतिरिक्त गोपथ ब्राह्मण में भी व्याकरण सम्बन्धी कुछ संज्ञाओं के वर्णन में निपात का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है।27

अतः पदों के दो वर्गों को मान्यता प्रदान करें अथवा एक ही वर्ग को स्वीकार किया जाय, दोनों स्थितियों में निपात का स्थान स्वतन्त्र पद वर्ग के रूप में निर्विवाद है। पदों का विभाजन जो आचार्य तीन या चार श्रेणियों में करते हैं उनके मत में तो निपात स्वतन्त्र पद-वर्ग के रूप में स्वीकार्य है। अतः पदों के चार वर्गों में विभाजन के औचित्य के साथ-साथ निपात की स्वतन्त्र पद वर्ग के रूप में भी पुष्टि हो जाती है।

निपात की स्वतन्त्र पद विभाग के रूप में स्थिति स्पष्ट करने के उपरान्त विचारणीय है कि निपात पद का क्या अर्थ है अथवा इसे निपात की संज्ञा क्यों दी गयो है? इस विषय में भी प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होते हैं।

पदचतुष्ट्य का लक्षण28 करते हुए आचार्य यास्क ने निपात की परिभाषा की है। उन्होंने विविध अर्थों में प्रयुक्त या निपतित होने के कारण इन्हें निपात कहा है "**अथ निपाता उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति**।" निरुक्त के टीकाकार आचार्य दुर्ग ने भी निरुक्त के प्रस्तुत स्थल की व्याख्या करते हुए यास्क के मत की ही पुष्टि की है।29

ऋक् प्रातिशाख्यकार ने भी निपात का नामकरण करते हुए उसके विविध अर्थों में प्रयोग को ही प्रमुख आधार माना है।30 माधवभट्ट ऋग्वेदानुक्रमणी में निपात का अर्थ करते हुए उनके विविध अर्थों में प्रयुक्त अथवा पतित होने को ही हेतु स्वीकार करते हैं।31 बृहद् देवताकार की सम्मति में— प्रकरण के आधार पर विविध अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण इन्हें निपात कहा जाता है। 32

अतः स्पष्ट है कि निपातों के विविध अर्थों में प्रयोग को दृष्टि में रखकर ही इन्हें निपात संज्ञा दी गयी है। ऋग्वेद में निपातों का अध्ययन करने पर भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी निपात की कुछ परिभाषायें की गयी हैं। कुछ विद्वान् निपातों को मूल में विभक्ति-युक्त मानते हैं, पुनः कालक्रम के प्रभाव से उनकी विभक्तियों का पतन हो गया। अतः वे शब्द जिनसे

विभक्तियां पतित हो गयीं, निपात कहे जाते हैं।33 ऋग्वेद में अधिकांश रूप से निपात विभक्ति रहित प्रयुक्त हुए हैं। अतः यह परिभाषा भी समीचीन प्रतीत होती है।

आचार्य सायण निपात की 'निपात' संज्ञा में निपात के मंत्रों में बहुल प्रयोग को स्वीकार करते हैं अर्थात् ऐसे शब्द जिनका वेदों में अत्यधिक प्रयोग हुआ है, निपात कहे जा सकते हैं।34 ऋग्वेद के अध्ययन से इस तथ्य की पुष्टि होती है क्योंकि एक-एक मन्त्र में छः, सात और आठ तक निपातों का प्रयोग मिलता है। 35 अतः निपात पद की यह परिभाषा भी ठीक प्रतीत होती है।

यह अत्यन्त विस्मय का विषय है कि वैदिक साहित्य में निपातों की विचित्र अर्थाभिव्यक्ति होते हुए भी कुछ प्रातिशाख्य ग्रन्थों में निपातों का पादपूरण लक्षण किया गया है।36 किन्तु उक्त लक्षण संगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि आचार्य यास्क ने निपातों की तीन श्रेणियों का उल्लेख करते हुए37 पाद पूरणार्थक श्रेणी में जिन निपातों को रक्खा है38 उन का भी ऋग्वेद में विविध अर्थों में प्रयोग हुआ है।39 अतः निपातों का ही 'निपातः पादपूरणः' लक्षण करना समीचीन प्रतीत नहीं होता।

माधवभट्ट ने ऋग्वेदानुक्रमणी में २० निपातों को अनर्थक माना है।40 किन्तु विवेचन करने पर हम देखते हैं कि इनमें प्रायः सभी निपात वैदिक साहित्य में विविध अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। माधव-भट्ट ने किस आधार पर इन निपातों को अनर्थक प्रतिपादित किया है ? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

निपातों को अनर्थक कहने का कारण सम्भवतः यह प्रतीत होता है कि कतिपय स्थलों पर निपात वेदों में किसी विशिष्ट एवं निश्चित अर्थ को प्रकट करने के लिये प्रयुक्त नहीं होते। किन्तु यदि उन स्थलों का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाये तो वे ही निपात पूर्णतया सार्थक प्रतीत होते हैं। इस बात की पुष्टि माधवभट्ट के कथन से भी होती है क्योंकि वे स्फुट अर्थ वाले निपातों को सार्थक एवं सूक्ष्म अर्थ होने पर पूरण मानते हैं।41

ऐसी स्थिति में जबकि मन्त्रों के पदों का व्यक्तिक्रम भी स्वीकार न किया जा सके, एक ही मन्त्र में प्रयुक्त चार अथवा पांच निपात अनर्थक अथवा 'पदपूरण' हों और निपातों का यह लक्षण किया जाए। यह बात युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती।

अन्त में संक्षेप में कहा जा सकता है कि निपात भाषा का एक महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक अंग है साथ ही वैदिक साहित्य में इनकी विविध अर्थाभिव्यक्ति के कारण इसका निपात नाम पड़ा। □

---

१ संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, युधिष्ठिर मीमांसक, पृ० ६०

२ निरुक्त के व्याख्याकार आचार्य दुर्ग एवं कलाप चन्द्र ने उनके मत का उल्लेख किया है।

३ अर्थः पदमेन्द्राणामिति –निरुक्त दुर्गवृत्ति १।१।८

अर्थः पदमाहुरेन्द्राः – सुषेण विद्याभूषण, कलाप चन्द्र, संधि २०

४ अर्थाभिधायि पदम् पद्यते गम्यते ज्ञायतेऽर्थोऽनेनेति पदम् ३।२।

५ सुप्तिङन्त पदम् १।४।१४

६ स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३७। अव्ययादाप्सुपः २।४।८२

७ अक्षरसमुदायः पदम् ८।४६।४९।

८ वर्ण संघातः पदम्–२।१०।२८

९ ते विभक्त्यन्ताः पदम् २।२।५७

विभक्त्यन्तं पदमाहुराऽपिशलीयाः–सुषेण विद्याभूषण, कलापचन्द्र, संधि–२०

१० चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च–निरुक्त १।१।८

११ नैकं पद जातम्, यथार्थः पदमेन्द्राणामिति । नापि द्वे यथा सुबन्तं तिङन्तं च । नापि त्रीणि निपातोपसर्गा वेकतः कृत्वा । नापि पञ्च षड् वा यथा गतिकर्मप्रवचनीयभेदेनेति निरुक्त दुर्ग टीका १।१।८।

१२ द्विधा कैश्चित् पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चधापि वा । सर्वदर्शन संग्रह–पृ० १४०

१३ नामाख्यातमुपसर्गो निपातः, चत्वार्याहुः पदजातानि । ऋक् प्रातिशाख्य १२।१७

१४ अक्षरसमुदायः पदं तच्चतुर्धा, नामाख्यातोपसर्गनिपाताः । वाजसनेयी प्रातिशाख्य

१५ चत्वारि पद जातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च । महाभाष्य १।१।१

१६ उपरिष्टादर्थभेदनिबन्धनं पदचतुष्ट्यं वक्ष्यति नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति
वाजसनेयी प्रातिशाख्य-उ० भा० ३।२

१७ कतमानि तानि चत्वारि पदानि । नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्चेति वैयाकरणाः । निरुक्त १३।९

१८ वर्णसंघात पदम् तच्चतुर्विधम् । नामाख्यातोपसर्गनिपातश्चेति । कौ० अर्थ० २।१०।२८

१९ तत्र पदमनेकप्रकारनामाख्यातोपसर्गनिपातकर्म प्रवचनोयभेदात् । व्यक्ति विवेक-महिमभट्ट-पृ०

२० चत्वारि वाक् परिमिता पदानि-ऋ० १।१६४।४५

चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादाः–वही ४।५८।३

२१ वाजसनेयी प्रातिशाख्य उव्वट भाष्य-३।२

२२ न्यायसूत्र-२।२।५७, आपिशलीय व्याकरण-सुषेण विद्याभूषण-संधि २०

२३ विभक्तिश्च-अष्टाध्यायी - १।४।१०४

२४ स्वरादिनिपातमव्ययम्-१।१।३७

२५ अव्ययादाप्सुपः २।४।८२
२६ न्यायसूत्र—वात्स्यायन-भाष्य २।२।५७
२७ गोपथ ब्राह्मण-१।२७
२८ निरूक्त १।१
२९ उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्तीति निपाताः। निरुक्त दुर्गटीका १।४
३० निपातानामार्थवशान्निपातनात्, ऋक् प्राति०-१२।१५
३१ उच्चावचेषु निपततामर्थेष्वेषु यथायथम्-ऋग्वेदानुक्रमणी ३।१।२७
३२ उच्चावचेषु चार्थेषु निपाताः समुदाहृताः।
वशात् प्रकरणस्यैते निपात्यन्ते पदे-पदे ॥वृहद्देवता-२।९३
३३ निपातार्थ-निर्णयः डा० हरिश्चन्द्रमणि त्रिपाठी
३४ नितरां पातः इति निपातः-ऋग्वेद सायण भाष्य ४।५५।३
३५ ऋग्वेद-१।११४।८, १०, १८०।७,
३६ निपातः पादपूरणः। ऋक् प्राप्ति० १२।८।७०७
निपातस्तु अर्थविशेषाभावात् पादपूरणः। वा० प्रा० अनन्त भाष्य ८।५०
३७ अप्युपमार्थेऽपि कर्मोपसंग्रहार्थेऽपि पदपूरणाः निरुक्त १।४।३
३८ अथ ये प्रवृत्तेऽर्थेक्षऽमितारेषु ग्रन्थेषु वाक्यपूरणा आगच्छन्ति,
पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्वनर्थकाः कमीमिद्विति-निरुक्त १।९।३
३९ ऋग्वेद के निपात (निश्चयार्थक): एक अध्ययन-लेखककृत शोधप्रबन्ध,पृ० ८२
४० न वै किल नु नामाथखल्विदादधसीमुकम्।
उत नूनमिवेङ्घस्मचिद्धचाः स्युरनर्थकाः। ऋग्वेदानुक्रमणी-३।१।१४
४१ स्फुटत्वोद्ग्रहणादिश्च क्वचित् सूक्ष्मः क्वचित् स्फुटः।
यत्र स्फुटस्तदा सार्थाः सूक्ष्मे स्युः पूरणा इति॥ वही ३।१।१८

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

(सत्यार्थ प्रकाश—भूमिका)

उपनिधि

—प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री
संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय

समग्र मानव जाति के सम्पूर्ण अभ्युदय एवं विकास को ध्यान में रखकर ही परमात्मा की कृपा से उसी के निःश्वास रूप वेदों का ज्ञान आदि काल में ऋषियों ने श्रुति के रूप में दिया। इन्हीं श्रुतियों के व्यापक ज्ञान को मानवीय व्यवस्था के रूप में स्मृतिकारों ने अपने-अपने स्मृति ग्रन्थों में उपनिबद्ध किया। मानव जीवन के सभी पक्षों को अभिलक्षित कर स्मृतियों में विशेष व्यवस्था प्रदान की गयी है। सम्पूर्ण मानव जीवन प्रसूतावस्था से लेकर मृत्यु-पर्यन्त सामयिक नित्य एवं नैमित्तिक नियमोपनियमों में आबद्ध है उसकी प्रत्येक चेष्टा सुनिश्चित है, सुपर्यालोचित है, अत एव शास्त्रीय मर्यादा से उसका औचित्य एवं अनौचित्य सम्बद्ध है। मनुष्य संसार में विविध प्रकार के व्यवहार करता है उन्हीं व्यवहारों में वस्तु का आदान प्रदान भी अपना विशेष स्थान रखता है। कभी-कभी मानव अपनी बहुमूल्य वस्तु को किसी अन्य व्यक्ति के पास कुछ समय के लिये सुरक्षा की दृष्टि से रख देता है तथा समय आने पर वह पुनः वस्तु को प्राप्त कर लेता है। स्मृति ग्रन्थों में इस प्रकार के वस्तु व्यवहार को ध्यान में रखते हुए एक विशेष व्यवस्था दी गयी है। उसी व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसी वस्तु की जो कुछ समय के लिये धरोहर के रूप नें किसी के समीप स्थापित की जाति हो स्मृतिकार नें उसको उपनिधि के नाम से व्यवहृत किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि वस्तु को धरोहर के रूप में रखने की परम्परा मानव जीवन के साथ अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है, इसीलिये स्मृति ग्रन्थों में उसको नियमित राज-व्यवस्था के साथ जोड़ दिया है। महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्मृति में एक प्रकरण उपनिधि के नाम से लिखते हैं जिसमें उन्होंने उपनिधि का विशेष व्याख्यान समुचित एवं पूर्ण व्यवस्था के साथ किया है। सर्वप्रथम उपनिधि का लक्षण निम्न प्रकार किया गया है—

वासनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य यदर्प्यते ।
द्रव्यं तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ।।या०स्मृ० ६५ ।।

अर्थात् जब कोई व्यक्ति द्रव्य को (स्वण रजातादि) किसी वस्त्रादि से आच्छादित करके अन्य व्यक्ति के हाथ में समर्पित करता है तथा उसको उसी प्रकार से यथा समय ग्रहण करने की इच्छा करता है तब उस द्रव्य को उपनिधि के नाम से कहा जाता है। यहां पर "प्रतिदेयं तथैव तत्" पदों का प्रयोग विशेष अभिप्राय के साथ किया गया है। इस आशय को याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका में इस प्रकार देखा जा सकता है—

"यस्मिन्स्थापितं तेन यथैव पूर्वमुद्रादिचिन्हितम् ।
समर्पितं तथैव स्थापकाय प्रतिदेयं प्रत्यर्पणीयम् ।।

उपनिधि विषयक उक्त विचार को श्री नारद जी ने भी अपने स्मृति ग्रन्थ में व्यवस्थित करते हुए कुछ विशेषीकरण के साथ उपनिबद्ध किया है, नारदीय स्मृति में धरोहर के रूप में स्थापित द्रव्य को दो भागों में विभक्त किया है । प्रथम उपनिधि तथा द्वितीय निक्षेप । इन दोनों का परस्पर स्वरूप भेद दर्शाते हुए दो श्लोक हैं—

अन्य द्रव्य व्यवहितं द्रव्यमव्याकृतं च यत् ।
निक्षिप्यते परगृहे तदौपनिधिकं स्मृतम् ।।
असंख्यातमविज्ञातं समुद्रं यन्निधीयते ।
तं जानीयादुपनिधिं निक्षेपं गणितं विदुः ।। ना० स्मृति ।।

उक्त दो श्लोकों को देखकर कहा जा सकता है कि उपनिधि और निक्षेप में अन्तर अवश्य है । अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मनुष्य स्व द्रव्य को किस व्यक्ति के पास निक्षिप्त करे इसका समाधान हमें मनुस्मृति में प्राप्त होता है, क्योंकि निक्षिप्त वस्तु कितनी मूल्यवान् है इसका वेदन लिखित अथवा वाचिक रूप में कहीं भी नहीं होता है, अतः केवल विश्वास के आधार पर ही वस्तु को निक्षिप्त किया जाता है इसलिये निक्षेप धर्ता की पात्रता के विषय में जान लेना आवश्यक है, उसमें निम्न गुण अपेक्षित माने हैं—

कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।
महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद् बुधः ।।

अर्थात् निक्षेप धर्त्ता को संभ्रान्त परिवार का होना चाहिये । उसमें चरित्र की सम्पन्नता हो सभी दृष्टियों से चारित्रिक शुद्धि का स्वरूप उसमें दीखता हो । वह केवल धर्म का आचरण हो न करता हो अपितु धर्म के वास्तविक तत्त्व का वेत्ता हो क्योंकि कृत्रिम रूप में भी कोई धार्मिक कृत्यों को करता हुआ धार्मिक कहा जाता है जब कि यथार्थ में वह उनका धर्म न होकर धर्माभास मात्र होता है । निक्षेप धर्ता को सत्यवादी अवश्य होना चाहिए क्योंकि "यथा दायस्तथा ग्रहः" की प्रवृत्ति को सत्यवादिता के आधार पर ही सुरक्षित किया जा सकता है । उसका पक्ष महान् होना चाहिए, पक्ष से अभिप्राय उसके आर्थिक, बौद्धिक, प्रतिष्ठात्मक, एवं पारिवारिक अभ्युदय से है । यदि कदाचित् वह असमय में ही काल कवलित हो जाये तो उसके पक्षधर यथावत् उपनिधि को उसके स्थापक को

प्रत्यर्पित कर सकें। निक्षेपधर्त्ता को दरिद्र नहीं होना चाहिये तथा वह आर्यवृत्ति (श्रेष्ठ) वृत्ति का पालन करता हो ये उक्त सभी गुण अपेक्षित माने गये हैं।

स्मृतिकारों ने उक्त गुणों से युक्त व्यक्ति पर भी पूर्ण विश्वास न करते हुए मानव की स्वभाव सुलभ दुर्बलता को ध्यान में रखते हुए उपनिधि प्रकरण में साक्षी की व्यवस्था दी है। यदि कदाचित् निक्षेपधर्ता प्रलोभवश उपनिधि को न देना चाहे तो उस समय साक्षी ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति होता है जिसकी सहायता से राज्य व्यवस्था स्थापक को उसका द्रव्य वापस दिला सकती है। अत एव याज्ञवल्क्य ने साक्षी के स्वरूपों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है—

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ॥ ६८

त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेया श्रौतस्मार्त क्रियापराः
यथा जाति यथा वर्ण सर्वे सर्वेषु वा स्मृता ॥ ६९ या० स्मृति०

इस प्रकार साक्ष्य विधान करने के पश्चात् भी समस्या उत्पन्न होती है कि यदि किसी समय साक्षी को भी प्रलोभन देकर उसे उसके कर्त्तव्य से च्युत कर दिया जावे और निक्षेप धारक प्रथम ही न देने की अनुचिन्तना कर चुका हो तो निक्षेप स्थापक को उसका द्रव्य किस प्रकार प्राप्त हो? इस प्रकार की समस्या उपस्थित होने पर स्मृतिकार कहते हैं कि साक्षी को राजकीय व्यवस्था के अनुसार पूर्णतया प्रभावित किया जावे कि वह सत्य रूप में स्वीकृत साक्षी भाव को प्रकट करे यदि फिर भी वह साक्ष्य को उत्सुक नहीं होता है, तब न्यायाधिकारी का कर्तव्य है कि वह वास्तविकता का ज्ञान करे। इस प्रसङ्ग में मनु महाराज पर्याप्त प्रकाश डालते हैं—

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति ।
स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ ॥
साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयो रूपसमन्वितैः ॥
अपदेशञ्च संन्यस्य हिरण्य तस्य वस्त्वतः ॥
स यदि प्रतिपद्येत यथा न्यस्तं यथा कृतम् ॥
न तत्र विद्यते किञ्चित्परैरभियुज्यते ॥
तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधि ॥
उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥ मनु स्मृ० अध्याय ८ ॥

अर्थात् न्यायाधीश अपने गुप्तचरों के द्वारा वस्तु स्थिति का ज्ञान करने के लिये किसी वस्तु

को निश्चित करावे पुनः उसको लाने का आदेश दे, यदि वस्तु प्रत्यर्पित हो जाती है तो इसका अर्थ है कि निक्षेप धारक निर्दोष है और उस पर निक्षेप स्थापक ने असत्य अभियोग चलाया है। यदि वह धरोहर को वापिस न करे तो न्यायाधीश को उसे दण्डित करते हुए उससे निक्षेप वापिस दिलानी चाहिए। कभी-कभी देखने में आता है कि कोई व्यक्ति वस्तु निक्षिप्त करके विदेश आदि जाने पर पुनरावृत्त नहीं होता है तथा वह अब जीवित नहीं है ऐसा सिद्ध हो जाता है ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर निक्षेप किसको प्रत्यर्पित की जावे इस समस्या का समाधान स्मृतिकारों ने मृत-व्यक्ति के उत्तराधिकारी को देने से किया है। वास्तव में उत्तराधिकारी कौन है इसका निर्णय राज व्यवस्था के साथ होना चाहिए।

यदि कभी दैवी आपत्ति आने पर निक्षिप्त वस्तु नष्ट हो जाती है तब विक्षेपधर्त्ता को मुक्त कर दिया जाता है, परन्तु यह मुक्ति निम्न अवस्थाओं में ही मान्य हो सकती है—

चोरैर्हृतं जलेनोढ़मग्निना दग्धमेव वा।
न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरत्ति किञ्चन्॥ मनु-स्मृति अध्याय ८ ॥

यदि द्रव्य चोरी हो गया है अथवा जलप्रवाह होने पर नष्ट हो गया है अथवा जल कर नष्ट हो गया है तो ऐसी स्थिति में निक्षेप को प्रत्यर्पित करने का उत्तरदायित्व नहीं रहता है। परन्तु सामान्य स्थिति में निक्षेप हर दशा में वापिस करने योग्य ही होती है। इस प्रकार संक्षेप से मानव व्यवहार में उपनिधि प्रकरण को स्मृति में दर्शाया गया है।

□

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥ ऋ० १०.९०.४

यह संसार रहित तीन पैरों वाला पुरुष इस अज्ञान के संसार से परे है। इस परमात्मा का एक अंश इस संसार में सृष्टि एवं प्रलय के द्वारा बार-बार आता-जाता रहता है। तत्पश्चात् सर्वत्र व्याप्त होते हुए वह विराट पुरुष खाने वाले चेतन प्राणी और न खाने वाले अचेतन (पर्वत, नदी आदि) दोनों प्रकार के जगत् को लक्षित करके व्याप्त है।

ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर—

आर्य समाज का भावी कार्यक्रम

श्री बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

१—आर्य समाज का कार्यक्रम स्वतन्त्र रुप से सच्चे मानव के निर्माण का कार्यक्रम है अब समय आ गया है जब आर्य समाज के भावी कार्यक्रम केवल साम्प्रदायिक सुधार तक सीमित न रहकर श्रेष्ठ मानव बनाने के कार्यक्रम हों।

२—इक्कीसवीं सदी का समय चुनौतियों का समय है, आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी वैचारिक पूंजी अधिकाधिक रूप में साहित्य और कला के रूप में प्रस्तुत करें। आज का मानव अपनी रुचि की सामग्री साहित्य और कला के झरोंकों से पढता देखाता है। जन जन में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए आर्य समाज का यह कार्यक्रम होना चाहिये कि वैदिक साहित्य सस्ती दरों पर विपुल रूप में वितरित हो सके, प्रत्येक आर्य समाज वैदिक सिद्धान्तों एवं ऋषि दयानन्द के विचारों को व्यक्त किये जाने वाली छोटी–छोटी पुस्तिकाओं के सेटों के वितरण का एक ऐसा केन्द्र होना चाहिये जिसके द्वारा उस शहर के सभी पुस्तकालयों, कॉलेजों सार्वजनिक सभागारों में यत्र यत्र आने वाले सभी नागरिकों को इस प्रकार की पुस्तिकायें, कैसेट, विडियो आदि सहज रूप में मिल सके।

३—विश्व का मानव आज आध्यात्मिक क्षुधा से आकुल है, भौतिक भोजन से अतृप्त आज ा मनुष्य मानसिक परितोष को प्राप्त करने के लिये छटपटा रहा है, सच्चे मार्ग की खोज में आज ा बुद्धिजीवी अविकल रूप से बैचेन है, व्यथित एवं संतप्त विश्व के मानव समुदाय को वेदों की पीयूष-धारा में स्नान कराने की विपुल जिम्मेदारी आर्य समाज के कन्धों पर है, वैदिक धर्म के सन्देश को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाने हेतु आज ऐसे आर्य प्रचारकों की आवश्यकता है जो विदेशी तथा संस्कृत भाषा में निष्णात हो, विश्व के सुदूर अंचलों में वैदिक धर्म का प्रकाश फैलाने का महान् उत्तरदायित्व आर्यसमाज का ही है।

४—आर्यसमाज का शैक्षणिक कार्यक्रम अब स्कूल एवं कॉलेज खोलने के साथ-साथ वैदिक साहित्य के अनुसंधान संस्थानों के खोलने का होना चाहिये। ऋषि दयानन्द के विचारों पर अधिकाधिक अध्ययन एवं शोध कराये जाने हेतु दयानन्द पीठों की स्थापना का व्यापक कार्यक्रम अब आर्य समाज के शैक्षणिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत अविभाज्य रूप से माना जाना चाहिये। इस दृष्टि से आर्य समाज अजमेर के प्रयत्नों की सराहना की जानी चाहिये, जिसके द्वारा दयानन्द शोधपीठ की स्थापना

राजस्थान सरकार के सहयोग से अजमेर में हो सकी। इस प्रकार के शोध पीठों की स्थापना का क्रम आर्य जनों की जाग्रति से ही पूरा किया जा सकता है।

५—वेद मन्त्रों के सर्वप्रिय अर्थ आज के परिप्रेक्ष्य में किये जाने परम आवश्यक हैं, विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ अपने-अपने विषय ज्ञान के भण्डार के साथ वेदों के अर्थ का प्रतिपादन करें, जिससे वेद का ज्ञान सर्वसाधारण के लिये उपलब्ध हो। वेद मन्त्रों से वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विमोचन हो

६—विगत शताब्दी आर्य विचारों, मान्यताओं एवं वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार की शताब्दी थी। हमें उसमें यथेष्ट सफलता नहीं मिली। २१वीं शताब्दी में विषय के मंच पर वेद मंत्रों का वैज्ञानिक स्वरूप प्रकट करने के लिये वैदिक वाङ्मय के विपुल शोध की जिम्मेदारी आर्य समाज नहीं लेगा तो कौन लेगा ? वेदों के अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में व्याख्या ग्रन्थ निकलने चाहियें। वैदिक सिद्धान्तों को प्रकाश में लाने वाले साहित्य का व्यापक रूप से विदेशी भाषाओं में सृजन करवा कर विश्व के प्रत्येक अंचल में इस आध्यात्मिक प्रकाश को फैलाने का महान् उत्तरदायित्व प्रत्येक आर्यसमाज पर है।

७—आर्यसमाज के सभी शिक्षा संस्थानों में शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों के अन्तर्गत ऋषि दयानन्द के वैचारिक दर्शन का प्रतिबिम्ब अभिमुख होना चाहिये। आर्यसमाज के अन्तर्गत आने वाली सभी शिक्षा संस्थानों का केवल एक सूत्रीय कार्यक्रम होना चाहिय वह है—संस्थान में पढ़ने वाला प्रत्येक छात्र ऋषि दयानन्द के विचारों से और आर्यसमाज के दस नियमों से ओत-प्रोत होकर सदाचारी वृत्ति लेकर निकले। प्रचार, प्रसार के तथा गुरुजन के दृष्टान्त से ही आर्यसमाज एक जीवन्त संस्था के रूप में कार्य कर सकेगा और अपने उत्तरदायित्व को निभाने में सफल होगा अन्यथा यह भी अन्य कितनी ही संस्थाओं के तरह पथभ्रष्ट होकर लुप्त हो जायेगा।

८—आर्य समाज में युवावर्ग को आकृष्ट करने हेतु आज के बदलते संदर्भ में नये कार्यक्रम चलाये जाने चाहियें, प्रत्येक आर्य समाज में व्यायाम-शाला, योग-शिविर, वाद-विवाद प्रतियोगिता, पद-यात्रायें आदि के कार्यक्रम अधिकाधिक रूप में आयोजित किये जाने चाहियें, राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक वर्ष में आर्य युवकों को प्रशिक्षित किये जाने हेतु छोटे-छोटे शिविर लगाये जाने चाहियें जिसमें आर्य युवक साथ-साथ रहकर बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता का विकास कर आर्य समाज की नींव के प्रहरी बन सकें। सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में युवक ही सच्चा योगदान दे सकते हैं। प्रत्येक समाज दहेज विरोधी, मद्य निषेध आदि कार्यक्रमों को लेकर युवा शक्ति का प्रभावी उपयोग कर सकता है।

९—षोडश संस्कारों का सर्वसाधारण में प्रचार हो, प्रत्येक संस्कार की सुरभि वैदिक संस्कृति की जीवन शैली से सुरभित हो, आर्य समाज मंदिरों के द्वारा दहेज विरोधी विवाहों का आयोजन

होना चाहिए। सादगी एवं सरल तरीके से वैदिक संस्कार करायें जाने की व्यवस्था से ही हम संस्कारों को घर-घर पहुँचा सकते हैं।

१०—आर्य समाज की प्रनिनिधि सभायें इतनी शक्तिशाली होनी चाहिये ताकि देश की कोई पार्टी राष्ट्रीय महत्त्व के राजनैतिक सवालों एवं बुनियादी समस्याओं के समाधान में आर्य समाज की भूमिका की अवहेलना न कर सके। प्रतिनिधि सभाओं की राजार्य सभायें (राजनैतिक समितियां) देश हित में आने वाले राजनैतिक दृष्टिकोण को जन मानस के सामने प्रकट करें, राष्ट्रीय नव निर्माण की धारा में आर्य समाज की चट्टान सदृश भूमिका हो। ऐसा स्वरूप सशक्त प्रतिनिधि सभाओं के दिये जाने वाले कार्यक्रमों से ही संभव है।

११—ऋषि दयानन्द की विचार धारा सम्पूर्ण जीवन के सर्वोतम उपयोग हेतु एक गतिशील कार्यक्रम प्रदान करती है। आश्रम व्यवस्था का सुदृढ़ रूप में स्थापित होना समाज को जीवित जाग्रत संस्था बनाये रखने के लिये परम आवश्यक है। जीवन के भोगों को भोगने के पश्चात् आई उपरोक्त वृत्ति का उपयोग वानप्रस्थ एवं सन्साय के रूप में यदि आर्यों में प्रचलन नहीं हुआ तो हमें निस्पृह अध्यापकों तथा प्रचारकों का समुदाय कहां से मिलेगा चूंकि वानप्रस्थ एवं सन्यास की वृत्तियां आचरण में क्रियान्वित नहीं हुई इसलिये आर्य समाज का शिक्षा प्रचार, प्रसार का चक्र अवरुद्ध है।

१२—दूर संचार साधनों के व्यापक प्रसार से आज की समूची प्रचार व्यवस्था तत्सबन्धी साधनों पर आश्रित है। वैदिक संदेश को जन-जन तक पहुँचाने हेतु दूर दर्शन, आकाशवाणी, समाचार पत्रों, वृत—चित्रों आदि के माध्यम उपयोग में लाने के लिये आर्य विद्वानों को सामग्री तैयार करनी चाहिये। जिस तरह गुरुवाणी या योग का विशेष यथेष्ट रूप से दूरदर्शन एवं आकाशवाणी आदि साधनों में नियमित प्रचारण होता है, उसी प्रकार वेद मंत्र की सस्वर व्याख्यायें भी इन साधनों के द्वारा क्यों न अधिकाधिक प्रचारित हों?

१३—आर्य समाज को जीवन्त रूप से ज्योतिर्मय बनाने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक आर्य सभासद स्वामी दयानन्द के निर्देशानुसार ईमानदारी से आर्य समाज को अपनी आय का शतांश दे, जिससे आर्य समाजों की हालत सुधरे और प्रत्येक आर्य समाज में एक विद्वान् पुरोहित हो। वैदिक संस्कारों को प्रभाव शाली ढंग से कराये जाने की व्यवस्था प्रत्येक आर्य समाज में होनी परम आवश्यक है। इसके बिना योग्य पुरोहितों एवं प्रचारकों के निर्माण हेतु प्रतिनिधि सभाओं द्वारा व्यापक प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिये।

१४—प्रत्येक आर्यसमाज में एक मेटाडोर वाहन तथा चलते फिरते पुस्तकालय की व्यवस्था होनी चाहिये जिससे उस क्षेत्र के दूर-दराज गांवों की परिधि चलती फिरती प्रचार व्यवस्था के अन्तर्गत आ जाये। चलती-फिरती प्रचार व्यवस्था का क्रम अविलम्ब हमारे समाजों में तेजी से बढ़ना चाहिये, तभी हम सर्वव्यापी अन्धकार को दूर कर पायेंगे। □

घर को आग लग रही घर के चिराग से

—डॉ० त्रिलोकचन्द
दर्शन विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

भारत भूमि पर समय-समय पर अनेक सन्त महात्माओं ने जन्म लेकर इसकी गरिमा को बढ़ाया है। इन महापुरुषों ने अपने-अपने समय में धर्म और संस्कृति की रक्षा की है। इन्होंने अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार अनेक सम्प्रदायों को जन्म दिया। जैसे—नाथ सम्प्रदाय, दसनामी सम्प्रदाय, उदासीन सम्प्रदाय, रामानुज सम्प्रदाय, सखि सम्प्रदाय आदि आदि।

विक्रमी सम्वत् १५२६ ई० में पंजाब के 'रायभोये की तलवंडी' (वर्तमान ननकाना साहिब) नामक गांव के एक खत्री परिवार में महान् सन्त गुरु नानक देव ने जन्म लिया। इनके पिता का नाम श्री कालूराय खत्रीं तथा माता का नाम तृप्ता और बहन का नाम नानकी देवी था। यह एक कट्टर हिन्दू परिवार था। आगे चलकर श्री गुरु नानकदेव के दो पुत्र भी हुए, जिनमें से एक का नाम श्री चन्द्र था, जिन्होंने उदासीन सम्प्रदाय को चलाया तथा दूसरे श्री लक्ष्मीदास थे।

सन्त नानक देव की वाणी में भौतिक और आध्यात्मिकवाद का समन्वय है। यह समन्वय वेदों में भी है। श्री गुरु नानक देव के उपदेश कबीरदास, रविदास, आदि सन्तों से मिलते हैं। कुछ लोग तो श्री गुरु नानकदेव को कबीरदास का अवतार मानते हैं। सन्त श्री गुरु नानकदेव ने लोगों को सरल भाषा में सच्चाई का मार्ग दर्शाया। उनके अनेकों शिष्य हो गये। श्री गुरु नानकदेव के पश्चात् उनकी शिष्य परम्परा में नौ गुरु और हुए, जिनके नाम हैं—श्री गुरु अंगददेव, श्री गुरु अमरदास जी, श्री गुरु रामदास जी, श्री गुरु अर्जुनदेव जी, श्री गुरु हरगोविन्द जी, श्री गुरु हरराय जी, श्री गुरु हरकिशन जी, श्री गुरु तेजबहादुर जी और श्री गुरु गोविन्दसिंह जी। ये सभी गुरु हिन्दू थे। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत यह सम्प्रदाय उसी प्रकार से चलता रहा, जिस प्रकार अन्य अनेक सम्प्रदाय चल रहे हैं।

श्री गुरु तेगबहादुर के समय में औरंगजेब का अत्याचार चरम सीमा पर था, हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जा रहा था। इस अत्याचार से तंग होकर कुछ कश्मीरी पण्डित इक्ट्ठे होकर श्री गुरु तेगबहादुर के पास गये और रोकर कहने लगे—"हे गुरु हमारी रक्षा करो। हमें औरंगजेब जबर-दस्ती मुसलमान बना रहा है।" यह देखकर कट्टर हिन्दू सन्त श्री तेगबहादुर दुःखी हुए और उन्होंने उनसे कहा कि औरंगजेब से जाकर कह दो कि हमारा गुरु तेग बहादुर यदि पहले हिन्दू से मुसलमान हो जाये तो हम भी हो जायेंगे। इस पर औरंगजेब ने श्री गुरु तेगबहादुर को दिल्ली बुलवाया। श्री गुरु अपने पांच शिष्यों सहित दिल्ली पहुँचे। औरंगजेब ने कहा—"आप मुसलमान हो जाओ, सब

सुविधाएं मिलेगी। श्री गुरु ने कहा—"आप हिन्दू हो जाओ।" औरंजगजेब ने कहा, मैं मुसलमान हूं, हिन्दू कैसे बन सकता हूँ? श्री गुरु ने कहा, तो फिर मैं हिन्दू मुसलमान कैसे बन सकता हूँ? इस पर औरंगजेब ने क्रुद्ध होकर श्री गुरु को भयभीत करने के लिये उनके पांचों शिष्यों की बड़े निर्मम ढंग से हत्या करवा दी। एक को जिन्दा आरे से चिरवा दिया। दूसरे को उबलते पानी में डालकर आलू की की तरह उबाल दिया गया। श्री गुरु इतना होने पर भी अडिग ही रहे। वे हिन्दू से मुसलमान नहीं बने। उन्होंने अपना भी बलिदान दे दिया परन्तु धर्म नहीं छोड़ा। दिल्ली चान्दनी चौक में बना गुरुद्वारा सीसगंज श्री गुरु तेगबहादुर की यादगार है। जहां आज भी प्रतिदिन हजारों लोग श्रद्धा से अपना सीस झुकाते हैं।

इसके पश्चात् श्री गुरु गोविन्दसिंह ने लगभग २५० वर्ष पूर्व खालिस (केवल) हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये अपने शिष्यों की एक सेना बनाई, जिसका कार्य केवल हिन्दुओं को मुगलों के अत्याचारों से बचाना था। प्रत्येक सिपाही के लिये पांच नियमों का पालन करना जरूरी था, जिसका वर्णन इस प्रकार है—केस, कंघा, कड़ा, कचहरा (कच्छा) और कृपाण। केश रखने का अभिप्राय यह था कि उस से दुश्मन के हथियारों से कुछ सीमा तक रक्षा हो सके तथा व्यक्तित्व अधिक प्रभावी बन सके। श्री गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं कहा था—

सवा लाख से एक लड़ाऊ, तभी गोविन्दसिंह नाम कहाऊ।

कंघा, केशों को ठीक रखने के लिये था। कड़े से दुश्मन की तलवार को हाथ पर रोका जा कता था तथा अवसर पाकर कड़े के प्रहार से भी दुश्मन पर वार किया जा सकता था। कचहरा ह्मचर्य के लिये था। कच्छे से एक लाभ यह भी है कि व्यक्ति आसानी से भाग-दौड़ सकता था। कृपाण तो था ही इसलिये कि किसी भी समय दुश्मन पर वार किया जा सके। इस प्रकार श्री गुरु गोविन्दसिंह ने एक सेना बनाई थी। जिसको उन्होंने सिख पन्थ का नाम दिया। 'सिख' शब्द शिष्य का बिगड़ा हुआ रूप है। खालिस का अर्थ है—सौ प्रतिशत शुद्ध जिसका अर्थ यहां पर यह है कि इस सेना का कार्य शत-प्रतिशत रूप में हिन्दू धर्म की रक्षा करना है और इसके अलावा और कुछ नहीं। 'खालिस' शब्द से खालसा बना इस प्रकार श्री गुरु गोविन्दसिंह इस खालसा पन्थ के प्रवर्तक थे। इस सेना ने हिन्दू धर्म की रक्षा में बहुत ही प्रसंशीय कार्य किया। श्री गुरु गोविन्दसिंह के इस कार्य को सराहना करते हुए किसी ने कहा है—

न कहूं जबकि, न कहूं तबकि, मैं बात करूं अबकि,
अगर गुरु गोविन्दसिंह न होते तो सुन्नत होती सबकी॥

आज वही सेना हिन्दुओं पर अत्याचार कर रही है, जो रक्षा के लिये बनायी गई थी। वही आज विनाश कर रही है और वह भी इनके इशारे पर जिनसे कभी उसने अपने हिन्दू धर्म की रक्षा की थी। घर का दिया ही घर को जला रहा है। आज श्री गुरु गोविन्द सिंह की आत्मा क्या कहेगी ?

रो पड़ेगी आत्मा, गुरु गोविन्दसिंह की, जानकर हालात को।
फिर सम्हलकर पूछेगी, किसने बहकाया, हे सिखों आपको।।

गुरुग्रन्थ साहिब में कहीं भी ऐसा नहीं है, किसी गुरु की ऐसी आज्ञा नहीं है, जैसा आज कुछ सिख कर रहे हैं। ऐसे समय में सिखपन्थ के विद्वानों, धार्मिक नेताओं, ग्रन्थियों आदि का यह कर्तव्य है कि वे ऐसे सिखों को सच्चाई बतलायें और उन्हें गुरुगोविन्द सिंह के बनाये नियमों के प्रतिकूल चलने से रोकें। □

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम	—	हिमालय दर्शन
सम्पादक		योगेश चन्द्र बहुगुणा
प्रकाशक	—	हिमालय दर्शन प्रकाशन समिति शिवानन्द नगर, टिहरी गढ़वाल उ० प्र०।
संकलित लेख संख्या	—	५१
पृष्ठ संख्या	—	३७०
मूल्य	—	३५ रुपये।

अदम्य महत्वाकांक्षाओं का प्रतीक हिमालय सदियों से उन्नति और स्थिरता की शिक्षा जन जीवन को प्रदान करता हुआ भारत की उत्तर सीमा पर विराजमान है। इतिहास को दृष्टि में रखकर यदि कुछ कहा जाये तो यह कहना शतशः समीचीन होगा कि भारत की उन्नति का मूल रहस्य हिमालय के उत्तुंग शिखरों, गुरु गम्भीर गह्वरों, अपार जल स्रोतों और समृद्ध वनस्पति राशियों में निहित है।

हिमालय के इन रहस्यों को जिज्ञासु पाठकों के हितार्थ उद्घाटित करने के लिये श्री योगेश चन्द बहुगुणा ने 'हिमालय दर्शन' के नाम से इस पुस्तक का सम्पादन करके स्तुत्य कार्य किया है। इस पुस्तक का सम्पादन हिमालय के अनन्य सेवी श्री सुन्दरलाल बहुगुणा और शान्तिलाल जी त्रिवेदी को यशः काम के रूप में अमर करने के लिये किया गया है। इस पुस्तक में ५१ लेखों का सुन्दर संगम है, जिसमें हिमालय के विविध रूपों का प्रकाशन किया गया है। लेखों के अध्ययन से हिमालय की गरिमा का वास्तविक ज्ञान पाठक को होता है। पुस्तक आद्योपान्त पठनीय और अनुशीलनीय है।

डा० विजयपाल शास्त्री
दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गताङ्क से आगे—

ईश्वरीय ज्ञान वेद-प्रकाश किन पर हुआ ?

लेखक—डा० रामेश्वर दयाल गुप्त-(M.A.)Ph. D.

अब तक इस पर विचार हो चुका है कि मनुष्य के स्वाभाविक ज्ञान पर प्रभु के ज्ञान की पुट नैमित्तिक रूप से उसके मानस पर प्रकाश द्वारा पड़ती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शतपथ (११-५-८-३) का उद्धरण देते हुये बताया है कि सर्गारम्भ में वह ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य ऋषियों के हृदय में प्रकाशित हुआ था [अग्नेर्ऋग्वेदः वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः] मनुस्मृति १/२३ में भी यही बात दुहराई है। परन्तु इन ऋषियों को ही क्यों ज्ञान दिया। ज्ञान तो सर्गारम्भ में उत्पन्न सब जीवों को दिया जाना अपेक्षित था। स्व० महात्मा नारायण स्वामी जी का मत था कि आदि जीवों ने अपने में जिन को सर्वोत्कृष्ट समझा उनको प्रमाणीभूत मानकर उनके आगे सिर झुका दिया और उनके ज्ञान से ही अपने को परीक्षित करने लगे जैसे कक्षा में मानिटर होता है। इन ऋषियों के अतिरिक्त अन्यों में ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति ही नहीं थी। वे मुक्ति से लौटे हुये जीव थे, विशेष क्षमता से सम्पन्न थे अतः यह पद विशेष हैं, नाम विशेष नहीं। हर सर्गारम्भ में पात्र चुने जाते हैं और उनकी संज्ञा, अग्नि वायु, आदित्य प्रभृति हो जाती है। ऋग्वेद १०/७१/३ में जो कहा है अन्वविन्दन ऋषिषु प्रविष्टाम" उसका यही भाव है। ऋग्वेद ५/४४/१५ की ऋचो अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते० का भाव यही है कि जो अग्निवत (नेता-ऋषि) जागता है—भ्रमण करता है, उसे ऋचा प्राप्त होतो है। यहां अग्नि का अर्थ अग्नि ऋषि नहीं बल्कि पातृत्वशील के हैं। साम भाग अर्थात् वेद मन्त्रों के गान की क्षमता भी उन्हें ही प्राप्त होती है।

बहुत से लोग यह भी कहते हैं कि "अनन्ता वै वेदाः" होने से २५००० ऋचाओं मात्र में सृष्टि का सारा ज्ञान कैसे आ सकता है। वास्तव में सृष्टि के आदि में मिला ज्ञान वेद का अंश है, अतः वेद है और उस अनन्त वेद में प्रविष्ट होने का साधन है, न कि सम्पूर्ण ईश्वरीय ज्ञान है। ज्ञान की कोई सीमा नहीं होती। ज्ञान का अंश ऋषियों पर उद्भासित हुआ ऋषियों ने अन्यों को दिया। ज्ञान का प्रकाश "धियं जिन्वमहसे" मानव की बुद्धियों में सतत भी प्रकाशित होता रहता है। तभी गायत्री मंत्र में प्रार्थना है-धियो यो नः प्रचोदयात्। वेद तो उस ज्ञान के मापक तथा प्रेरणात्मक मन्त्रभाग हैं। वह ज्ञान सूत्र रूप में है।

ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी—इलहाम की आवश्यकता और उद्भासित होने की पद्धति पर चर्चा करके अब हमें देखना यह है कि वह ईश्वरीय ज्ञान वेद ही है या अन्य तथा कथित धर्म ग्रन्थ। इस का निर्णय करने के लिये हमें कुछ कसोटियाँ निर्धारित करनी होंगी जिन पर विविध ग्रन्थ परीक्षित किये जा सकें।

ताकि किसी ज्ञान-संचय को ईश्वरीय कहा जा सके। उसमें निम्न विशेषतायें होनी चाहिये—

१ यह ज्ञान सृष्टि या सर्ग के प्रारम्भ ही में दिया जाना चाहिये, क्योंकि आदि मानव से अब तक सभी को उसकी प्रेरणा की आवश्यकता है।

२ अतः उस संचय में इतिहास नहीं होना चाहिये, क्योंकि किसी भी ऐतिहासिक पुरुष के जन्म से पहले उसकी विद्यमानता अपरिहार्य है।

३ उसमें त्रैकालाबाधित सत्य अर्थात् ऋत शाश्वत नियम होने चाहियें।

४ उसकी भाषा बनावटी न होकर प्राकृत होनीं चाहिये। तथा वह भाषा स्वर शास्त्र के अनुकूल हो।

५ उसमें मनुष्य जाति का उन्नायक सत्साहित्य हो, जिसे पूर्ण ज्ञान की संज्ञा दी जा सके।

६ उसमें एक मस्तिष्क की ही कृति होने के कारण पूर्वापर विरोध न हो।

७ उसमें सृष्टि क्रम के विरुद्ध अवैज्ञानिक बातों का पृष्टि-पोषण न हो न ऐसी असंगतियाँ घोषित की गई हों।

८ उसमें प्रक्षेप न हो तथा ऐसे प्रबन्ध कर दिये गये हों कि सम्प्रदायों के अगुआ अपनी बात न मिला सकें।

९ उसमें अनावश्यक पुनरुक्ति न हो।

१० उसकी अन्तःसाक्षी अर्थात् स्वतः प्रमाण जन्य संकल्प उसी में हो।

११ आप्त जनों ने युगों-युगों में उसे ईश्वरीय माना हो।

अब इनमें से प्रत्येक पर ऊहा-पोह करके देखेंगे कि इन कसौटियों पर वेद-संहितायें ठीक उतरती हैं या नहीं। (क्रमशः)

□

सम्मति (अभिमत)

वैदिक कन्सेप्ट ऑफ योग मेडिटेशन—देवेन्द्र कपूर

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भारत ने मध्य युग में एवं उसके बाद भी मानवीय व्यक्तित्व में विद्यमान आध्यात्मिक शक्तियों की उन्नति पर विशेष बल दिया है। जिसके परिणामस्वरूप आध्यात्मिक क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र उपेक्षित एवं गौण हो गये। ठीक इसके विपरीत पश्चिमी जगत् ने मानव समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर विशेष ध्यान दिया और उसकी आध्यात्मिक शक्तियों को प्रेरित करने का कोई प्रयास नहीं किया। जिसके कारण मानव अस्तित्व अनेक स्तरों पर तनावों से ग्रसित हो गया। विश्व की दो महान् शक्तियों के मध्य आणविक शस्त्रों की होड़, सम्प्रभु राष्ट्रों के मध्य चल रहे युद्ध, जातीय वैमनस्यता तथा लोगों में व्याप्त प्रान्तीयता की भावना ने समस्त मानव जाति को पारस्परिक विपरीत गुटों में ला दिया है।

ये सभी बातें एक ऐसी मनोदशा को प्रकट करती हैं जो कि सम्पूर्ण रूप में भ्रमित और भ्रान्तियुक्त है तथा सुव्यवस्थित चिंतन से संचालित नहीं है। मानसिक शान्ति से तात्पर्य वैयक्तिक शान्ति से है और यही विश्व शान्ति का आधार है। अत: आवश्यकता है ऐसे साधनों एवं उपायों को उपलब्ध कराने की, जो कि दिग्भ्रमित मन को अनुशासित एवं स्थिर कर सकें।

श्री देवेन्द्र कपूर ने अपनी पुस्तक "योग ध्यान की वैदिक धारणा" में मानव समाज में व्याप्त तनावों के कारणों पर अनुसंधान किया है और शांत मन: स्थिति के लिये मन को साधने के महत्त्व को समझते हुए, इसी मूल विषय को अपनी सम्पूर्ण पुस्तक का आधार बनाया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने १८ वेदमत्रों पर आधारित अट्ठारह ध्यान विधियों पर व्यापक रुप में प्रकाश डाला है। इन ध्यान विधियों का मैंने अविच्छिन्न रूचि के साथ अध्ययन किया है और मैंने अनुभव किया कि इन वैदिक मन्त्रों का मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और ये मंत्र विचारों को गहनता प्रदान करते हैं। वस्तुत: में मंत्र का वास्तविक उद्देश्य जैसा कि शब्द की व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है, मन की चिन्तन शक्ति को एक निश्चित दिशा एवं स्थिरता प्रदान करना है। इन विचारोत्तेजक व्याख्याओं में उल्लिखित मन पर संयम प्राप्त करने की विधियों से मेरा पूर्ण विश्वास है कि पाठक वर्ग अत्यन्त लाभान्वित होगा एवं योगध्यान विधि की वैदिक धारणा से पूर्ण रूपेण परिचित होगा।

श्री कपूर जी ने अपनी इस उल्लेखनीय कृति द्वारा वैदिक विद्वत्ता के क्षेत्र में एक अमूल्य सेवा, आध्यात्मिक रूप से पीड़ित मानवता को प्रदान की है, जिसके लिए मैं उनको हार्दिक बधाई देता हूँ।

रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं प्रो-वाइस चांसलर
गुरुकुल कांगड़ी यूनिवर्सिटी हरिद्वार।

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम—वर्ल्ड पर्सपेक्टिव ऑन स्वामी दयानन्द

लेखक — डॉ० गङ्गाराम गर्ग

प्रकाशक — कनसैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी

एच-१३ बाली नगर, पो० बो० ६२७४

नई दिल्ली–११००१५

पृष्ठ — XLVI+५६२,

साईज — १४×२२

मूल्य — रु० २५०

स्वामी दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह ३ नवम्बर १९८३ से ६ नवम्बर १९८३ तक अजमेर में अत्यन्त धूमधाम से मनाया गया। इस समारोह की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि स्वामी दयानन्द सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन रही। इसी शृंखला में डॉ० गंगाराम जी गर्ग (भूतपूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,हरिद्वार) द्वारा सम्पादित यह पुस्तक भी एक कडी है। डॉ० गंगाराम गर्ग जी ने यह पुस्तक गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की सीनेट के अनुरोध पर लिखी है तथा महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर विश्वविद्यालय की ओर से यह अनुपम भेंट है। उक्त पुस्तक का सम्पादन करके जहाँ विद्वान् लेखक ने आर्यसमाज एवं स्वामी दयानन्द सम्बन्धी साहित्य में श्री वृद्धि की है, वहीं स्वामी दयानन्द पर अंग्रेजी भाषा में लिखित प्रामाणिक एवं देश विदेश के गणमान्य विद्वानों के विचार-पुष्पों का इस 'ग्रन्थ-माला' में गुम्फन करके एक अभाव का अभाव करने का संस्तुत्य प्रयास किया है।

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने ऋषि दयानन्द के चरित्र एवं उनकी मान्यताओं को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया है। 'गुलाब की पंखुडियां' नामक शीर्षक में देश विदेश के प्रसिद्ध एवं शीर्षस्थ व्यक्तियों की ऋषि दयानन्द विषयक उक्तियों का गुम्फन किया है। इसके अतिरिक्त देश विदेश के उच्च कोटि के ५३ विद्वानों द्वारा लिखे गये गम्भीर एवं शोधपूर्ण लेखों का संकलन भी ऋषि दयानन्द पर नयी विचार सरणि के द्वार उद्घाटित करता है। ग्रन्थ के अन्त में डॉ० भवानी लाल भारतीय द्वारा संकलित सन्दर्भ सूची दी गयी है। इस पुस्तक की भूमिका अमेरिकी विद्वान् 'श्री कैनथ जोन्स' द्वारा लिखी गई है। पुस्तक की साज-सज्जा एवं छपाई भी बहुत सुन्दर है। कुल मिलाकर संक्षेप में उक्त ग्रन्थ के विषय में कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ अंग्रेजी भाषा में स्वामी दयानन्द पर लिखे गये साहित्य में एक अद्भुत ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ की बहुत से पत्र-पत्रिकाओं द्वारा साधुवाद एवं प्रशंसा की गयी है। इनमें १५ जनवरी १९८४ साप्ताहिक 'आर्य मर्यादा' जालन्धर में प्रकाशित सम्पादकीय टिप्पणी में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के माननीय कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी एवं १५ जनवरी १९८४ के आर्यमित्र पत्र में

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती द्वारा उल्लिखित टिप्पणियां उल्लेखनीय हैं। श्री वीरेन्द्र जी ने इस ग्रन्थ के अंग्रेजी भाषा में सम्पादन एवं श्री हिदायतुल्ला (उपराष्ट्रपति, भारत सरकार) द्वारा अपने सन्देश में दी गयी ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धाञ्जलि को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है।

उनके अनुसार—"गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डॉ० गंगाराम गर्ग ने महर्षि दयानन्द के विषय में अंग्रेजी में एक पुस्तक प्रकाशित की है। जिसमें भारत और बाहर के देशों के बड़े-बड़े विद्वानों ने महर्षि दयानन्द के विषय में अपने-अपने विचार दिये हैं। इस पुस्तक को पढ़ कर हमें पता चलता है कि संसार ने महर्षि दयानन्द को किस रूप में देखा है। बड़े-बड़े यूरोपीय विद्वानों ने महर्षि की विचारधारा, उनके सिद्धान्तों और उनके व्यक्तित्व के विषय में बड़े सुन्दर लेख लिखे हैं। प्रायः सबने इस बात पर बल दिया है कि महर्षि ने वेदोद्धार के लिये जो कुछ किया है, वह किसी और ने नहीं किया.........।

मेरा लिखने का अभिप्राय केवल यही है कि महर्षि निर्वाण शताब्दी के सम्बन्ध में जो साहित्य प्रकाशित हुआ है उसमें डॉ० गंगाराम जी गर्ग की इस पुस्तक का विशेष स्थान है।"

वस्तुतः उक्त पुस्तक इस प्रशंसा के योग्य ही है। डॉ० गर्ग जी ने अभी कुछ ही दिन पूर्व अंग्रेजी भाषा में ही संस्कृत साहित्य को एक अद्भुत ग्रन्थ पुष्प(एन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ संस्कृत लिटरेचर, साईज–१६×२५, पृ० सं० XLV+517, मूल्य-२५० रु०) भेंट किया है। इस ग्रन्थ में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य पर प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों, लेखकों एवं उनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण देकर संस्कृत साहित्य के एक अभाव की पूर्ति की है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा के जिज्ञासु के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

वस्तुतः दोनों ग्रन्थ प्रशंसनीय एवं संग्रहणीय हैं।

—डा० राकेश शास्त्री

□

गुरुकुल कांगड़ी के छात्रों के लिये विश्वविद्यालय के विजीटर महोदय पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालङ्कार का—

सन्देश[1]

"गुरुकुल के इतिहास को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है प्राचीन और आधुनिक प्राचीनकाल का प्रतिनिधित्व मैं करता हूं और आधुनिक का प्रतिनिधित्व आप सब करते हैं। प्राचीन काल में जब हम अंग्रेजों की दासता की बेड़ियों में जकड़े हुए थे, वह युग संघर्ष का युग था। उस समय आर्य समाज का मुख्य कार्य उपदेशक तथा राजद्रोही उत्पन्न करना था जो अंग्रेज सरकार का तख्ता उलट सकें। किन्तु आज स्थिति भिन्न है। हमारा देश स्वतन्त्र है, अतः आज उपदेशक तैयार करने की आवश्यकता नहीं अपितु आज हमारा उद्देश्य विद्वान् तैयार करना है, जो वैदिक संस्कृति का प्रचार और प्रसार कर सकें,जिनका जीवन सरल, ब्रह्मचर्य एवं सदाचार पूर्ण हो। इतना ही नहीं हमारे गुरुकुल में विद्या प्राप्त करने के पश्चात् छात्र देश के हर क्षेत्र में मूर्धन्य हो। वह राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, संसद–सदस्य, पुलिस–महानिरीक्षक आदि उच्च पदों पर भी विराजमान हो, यही हमारा आधुनिक काल में मुख्य उद्देश्य है। आज समाज की आवश्यकता भिन्न हैं। आज वह समय है जिस में यदि मजिस्ट्रेट, अधिकारी, अथवा शासक आर्य समाजी है तो लोग झुक-झुक कर कहेंगे कि हम भी आर्य समाजी हैं।। इस प्रसंग में उन्होंने अपना उदाहरण भी दिया और कहा कि मैं बचपन से ही अच्छा प्रसारक एवं अच्छा लेखक होने का स्वप्न देखता था, जिसे मेरे निरन्तर प्रयास के कारण साकारता प्राप्त हुई।"

उन्होंने कहा—"कि इस समय यदि मैं बच्चा होता तो मेरा लक्ष्य होता कि मैं प्रेजीडेन्ट बनूं यही आशा में आज इस गुरुकुल के विद्यार्थी से करता हूं। इसी सन्दर्भ में उन्होंने अध्यापकों से भी छात्र के साथ निःस्वार्थ भाव से विशेष परिश्रम करने का आग्रह किया और कहा कि वे परिश्रमी छात्र को यदि हो सके तो अतिरिक्त समय में भी समय दें। झगड़ों में न पड़ें। छात्र एवं अध्यापकों का सम्बन्ध मधुर एवं निःस्वार्थ हो। अन्त में उन्होंने गुरुकुलीय भावना के अनुरूप छात्रों का ही गुरुकुल में प्रवेश लिया जाये इस बात पर बल दिया। इसके लिये उन्होंने दिल्ली–गुरुकुल, झज्जर आदि स्थानों

---

१८ नवम्बर १९८३ को डा० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार (विजिटर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय) की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने कहा कि—

के गुरुकुलों से छात्रों के आगमन का प्रस्ताव रखा, क्योंकि उन्हें हम अपनी गुरुकुलीय भावना के अनुरूप तैयार कर सकते हैं। उन्होंने अंग्रेजी ज्ञान पर भी जोर दिया और कहा "अंग्रेजी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, उसका ज्ञान होना चाहिये। हमारे छात्रों की ऐसी योग्यता हो कि वे ऊंची से ऊंची पदवी पाने के लिये परिश्रम कर सकें। अपने भाषण का उपसंहार करते हुए उन्होंने कहा, हमारे समय में नारा था कि सरकारी नौकरी नहीं करनी है। लेकिन इस समय नारा होना चाहिये कि हमें सरकारी नौकरी ही करनी है, ऊंचे पद को प्राप्त करना है, बड़े-बड़े काम करने हैं इसके लिये हम कम्पिटीशन में बैठें। आज देश की अवस्थाएं अनुकूल है पहले प्रतिकूल थीं। अतः हम अपने हृदय में भावना गडा लें कि हमें देश में ऊंचा उठना है। यही हमारा स्वप्न है।

(अन्त में उन्हें धन्यवाद देते हुए कुलपति जी ने कहा कि सन् १९४२ में हमारा नारा था 'अंग्रेजों भारत छोडो' उसके बाद सुभाष चन्द्र बोस ने नारा दिया—दिल्ली चलो तथा तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा और अब गुरुकुल के छात्रों का नारा होना चाहिए—भारत सरकार पर कब्जा करो)

प्रस्तुतकर्त्ता—**डॉ० राकेश शास्त्री**

---

७५ वर्ष पूर्व का गुरुकुल वृत्तांत—

स्वामी श्रद्धानन्द की लेखनी से

प्रस्तुतकर्त्ता—**जगदीश प्रसाद विद्यालङ्कार**

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अत्युत्तम है। इस समय एक को भी ज्वारादि रोग नहीं है। पढ़ाई बड़ी उत्तमता से हो रही है दयानन्द के मृत्यु दिवस पर उनके जीवन पर विचार करने के लिये विशेष अनध्याय हुआ चतुर्दशी को दिवाली की तैयारी के लिये छुट्टी दी गई। उस दिन ब्रह्मचारियों ने स्वयं कंडीले तथा पटाके आदि बनाये अमावस के दिन प्रातःकाल ब्रह्मचारी गण कन्दुक-क्रीडा में सम्मिलित रहे और कुछ भ्रमणार्थ अपने अधिष्ठाताओं सहित बाहिर गये सायंकाल पांच बजे से आरम्भ होकर छः बजे बड़ा होम समाप्त हुआ फिर भोजन पश्चात् म० अर्जुनसिंह स्वदेशी खेलों के अध्यापक ने एक दो करतब दिखलाये जिसके पश्चात् ब्रह्मचारियों ने बनेटी, फरी गतकादि के जो खेल सीखे थे उन सबकी परीक्षा दी। कुछ ब्रह्मचारियों के संरक्षक भी आये थे जो यह दृश्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए तत्पश्चात् सवाआठ बजे से सभी ब्रह्मचारी अध्यापक अधिष्ठाता तथा अन्य सभ्यगण यज्ञशाला

में एकत्रित हुए। वेद मन्त्रों से यज्ञशाला सुसज्जित थी तथा प्रकाश का उत्तम प्रबन्ध था। ब्रह्मचारी जयचन्द्र ने वेद मन्त्र-पूर्वक ईश्वरोपासना प्रार्थना की, जिसके पीछे ब्रह्मचारी ब्रह्मदत्त ने ऋषि दयानन्द की प्रशंसा में कुछ श्लोक स्वर सहित पढ़े। मुख्याधिष्ठाता ने इसके पश्चात् ऋषि दयानन्द की प्रशंसा में कुछ घटनायें पेश करके उनसे शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा की, साढे नौ बजे यह अधिवेशन समाप्त हुआ। यद्यपि एक, दो तथा तीन श्रेणियों के ब्रह्मचारियों को इस में सम्मिलित होने से मुक्त किया गया था तथापि तृतीय श्रेणी के ब्रह्मचारी विशेष आज्ञा लेकर सम्मिलित हुये।

सायंकाल के खेल बराबर होते हैं जिनमें कुछ ब्रह्मचारी विशेष योग्यता संपादन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। घोडों की सवारी भी अनध्याय के दिन बराबर होती है।

ब्रह्मचारियों का तोल—गत पूर्णिमा के पश्चात् अभी आधे संरक्षकों को ही भेजा गया था कि श्री डॉ० चिरंजीव भारद्वाज के लिखने पर तोल का रजिस्टर उनके पास भेजा गया। उक्त डॉ० जी ने रजिस्टर इसलिये मंगवाया है कि ब्रह्मचारियों के तोल में परिवर्तन की ऊँच-नीच देख कर आगे के लिये भोजन का ठीक प्रकार निश्चय कर दें। जब रजिस्टर लौट आयेगा तब शेष संरक्षकों की सेवा में भी उनके ब्रह्मचारियों के तोल लिखकर भेज दिये जायेंगे। गत परीक्षा का परिणाम लिखकर संरक्षकों के पास भेजा जा रहा है।

दक्षिण हैदराबाद की—दुर्घटना पर सहाय्यतार्थ जो अध्यापकादिकों से प्राप्त हुआ है, वह १५५) से बढ़ गया है। इनमें बड़ी रकमें यह हैं। मुख्याधिष्ठाता १६) श्री पं० काशीनाथ जो १५), श्री महाशय पंतराम जी २०), श्री चौधरी बुद्धन सिंह जी १०)। ब्रह्मचारियों ने जो सात दिन शाक, दाल तथा घी छोड़ा था उससे साढ़े छयानवे रुपये प्राप्त हुए। ब्रह्मचारी भारद्वाज तथा ब्रह्मचारी इन्द्र ने पारितोषिक में मिली हुई अपनी अपनी बन्डी सहाय्यतार्थ दे दी, जिन्हें बेचकर रोकड रुपये भेजे गये। गुरुकुल भण्डार तथा अन्य पुरुषों से जमा करके एक बड़ा गट्ठर कपड़ों का तैयार है जो भेजा जायेगा।

दर्शक इस समय बहुत आते हैं। सर्व गुरुकुल को अवलोकन करके प्रसन्न हो जाते हैं। बाबू हीरालाल जी इन्जीनियर भक्खर से आये थे, सब कुछ देखकर प्रसन्न हुए और पुस्तकालय की आलमारियों के क्रयार्थ १००) दान दे गये।

इमारत का काम भी चल रहा है। महाविद्यालय मन्दिर के दोनों बड़े कमरों पर भी गार्डर चढ़ गए। अब आशा है कि एक मास तक यह इमारत समाप्त हो जायेगी। अभी शेष इमारत बनाने के लिए किसी ठेकेदार की चिट्ठी नहीं आई। यदि ठेका न हुआ तो १५ दिसम्बर से अमानी काम आरम्भ होगा। (सद्धर्म प्रचारक, बुधवार १३ कार्तिक, संवत् १९६५, ता० २८ अक्टूबर, १९०८)

गुरुकुल समाचार

२ अक्टूबर, १९८३ को गांधी जयन्ती के अवसर पर मातृ ग्राम कांगड़ी में साक्षरता दिवस का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आयोजित समारोह की अध्यक्षता माननीय कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने की। साक्षरता दिवस का उद्घाटन कुलपति जी ने श्यामपट पर "ऊँ" लिखकर किया। गांव के निरक्षर लोगों ने जिसको अपनी स्लेटों पर लिखने का प्रयास किया। सर्वप्रथम डा० बी०डी० जोशी ने साक्षरता अभियान पर अपने भाषण में देश में वर्तमान निरक्षर लोगों की संख्या के विषय में जानकरी दी एवं बताया कि इस अभियान के लिये ४००० रु० की ग्रान्ट प्राप्त हो चुकी है। डा० विजय शंकर सक्सेना, अध्यक्ष वनस्पति विभाग ने अपने भाषण में आशा व्यक्त करते हुए कहा कि कांगड़ी ग्राम के अनपढ़ लोग प्रौढ़ शिक्षा से लाभ उठाकर अपना जीवन स्तर ऊंचा उठाने का प्रयास करेंगे।

अपने भाषण में श्री कुलपति जी ने इस अभियान की महत्ता पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि हमें विशेष रूप से नारी को शिक्षित करना है क्योंकि नारी ही मां के रूप में प्रथम शिक्षा अपने शिशु को देती है।

अन्त में कुलसचिव महोदय ने समस्त उपस्थित महानुभावों का धन्यवाद किया तथा विश्वविद्यालय की ओर से कांगड़ी ग्राम के लोगों को साक्षर बनाने में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया तथा गुरुकुल के उद्देश्य से साक्षरता अभियान को जुड़ा हुआ बतलाते हुए कहा कि आर्य समाज का उद्देश्य ही शिक्षा का प्रचार करना है। इसलिये गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को इस कार्य में अग्रणी रहना अत्यन्त आवश्यक है। इस सभा का संचालन डा० त्रिलोक चन्द्र जी ने किया। जिन्हें प्रौढ़ शिक्षा अधिकारी नियुक्त किया गया। इस अवसर पर उन्होंने संकल्प लिया कि कांगड़ी ग्राम के १५ से पैंतीस वर्ष के किसी स्त्री पुरुष को अशिक्षित नहीं रहने दिया जायेगा।

दिनांक १० अक्टूबर, १९८३ को कुलसचिव डा० जबरसिंह सेंगर को कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने गोली चलाकर जख्मी कर दिया। डा० सेंगर ने जो कि स्कूटर पर सवार थे, अत्यन्त साहस का परिचय दिया, वे सीधे मुख्य कार्यालय पहुँचे। जहां से उन्हें तुरन्त अस्पताल ले जाया गया। इस घटना से समस्तं विश्वविद्यालय में रोष व्याप्त हो गया तथा इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति को रोकने के लिये विशेष कदम उठाने की मांग की गयी।

दिनांक ३ नवम्बर, १९८३ अजमेर में आयोजित ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर डा० राकेश शास्त्री, संस्कृत विभाग तथा डा० त्रिलोक चन्द्र, दर्शन विभाग के नेतृत्व में वेद महाविद्यालय एवं कला महाविद्यालय के छात्रों का एक दल सरस्वती यात्रा पर अजमेर गया तथा वहां के सभी आयोजनों में उत्साह पूर्वक भाग लिया। साथ ही वहां के एतिहासिक स्थलों पुष्कर तीर्थ, ढाई दिन का झोंपड़ा एवं आमेर का किला आदि का अवलोकन कर ज्ञान वृद्धि की।

दिनांक ५ नवम्बर, १९८३ ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर वैदिक साहित्य के प्रख्यात ११ विद्वानों–१. पं० विश्वनाथ जी (भू०पू० वेदोपाध्याय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय) २. पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार (विजीटर एवं भू०पू० कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय) ३. आचार्य प्रियव्रत जी (भू० पू० कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय) ४. पं० सत्यकाम विद्यालंकार ५. पं० रामनाथ वेदालंकार (भू०पू० उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय) ६. पं० विराज वेदालंकार ७. पं० सत्यदेव भारद्वाज ८. पं० नरदेव जी ९. डा० दिलीप वेदालंकार १०. पं० क्षितीश कुमार वेदालंकार ११. आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (वर्तमान उपकुलपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) को सम्मानित किया गया। यह हमारे लिए अत्यन्त गौरव की बात है क्योंकि इससे विश्वविद्यालय की गरिमा में श्री वृद्धि हुई है।

दिनांक २० नवम्बर, १९८३ को विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में कालिदास अकादमी द्वारा अखिल भारतीय विश्वविद्यालय स्तर पर एक संस्कृत–वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमें गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व–संस्कृत विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री द्वारा प्रशिक्षित **दूधपुरी गोस्वामी** (वेदालंकार प्रथम वर्ष) तथा **ब्र० सत्यदेव** (एम० ए० संस्कृत द्वितीय वर्ष) ने किया। इनमें से दूधपुरी गोस्वामी ने प्रथम तथा सत्यदेव ने तृतीय स्थान प्राप्त कर विश्वविद्यालय के गौरव में श्री वृद्धि की। पुरस्कार स्वरूप दूधपुरी गोस्वामी को एक स्वर्ण पदक तथा १०० रु० नकद एवं ब्र० सत्यदेव को कांस्य पदक एवं १०० रु० नकद रूप में प्राप्त हुए। इन दोनों छात्रों के संयुक्त प्रयास के फलस्वरूप विश्वविद्यालय को एक चल विजयोपहार प्राप्त हुआ। इसके लिये दोनों छात्र बधाई एवं प्रशंसा के पात्र हैं।

२६ नवम्बर, १९८३ को कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा जी की अध्यक्षता में विज्ञान महाविद्यालय में एक सभा का आयोजन किया गया। इस में मुख्य अतिथि श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी के दौहित्र, संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा के विद्वान्, वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ एवं उच्चकोटि के सम्पादक पं० सत्यकाम विद्यालंकार जी ने मुख्य अतिथि पद को सुशोभित किया। इसमें सर्वप्रथम आचार्य रामप्रसाद जी ने मुख्य अतिथि का परिचय दिया पश्चात् डा० त्रिलोक चन्द्र, योग निदेशक द्वारा गत वर्ष १ नवम्बर १९८२ को स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय योग प्रशिक्षण केन्द्र की संक्षिप्त रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। इसमें ५२ प्रशिक्षार्थियों ने प्रवेश लिया था, जिनमें ४६ प्रशिक्षार्थी उत्तीर्ण हुए। उत्तीर्ण छात्रों को पं० सत्यकाम विद्यालंकार जी ने प्रमाण पत्र प्रदान किये एवं छात्रों को आशीर्वाद देते हुए कहा कि—"गुरुकुल का लक्ष्य वेद–साहित्य का अनुवाद तथा प्रचार करना तथा जीवन को कल्याणकारी कार्यों में लगाने के लिये प्रेरित करना है। योग एक साधन है, इसका लक्ष्य ईश्वर की निकटता प्राप्त करना है।

दिनांक २ दिसम्बर, को अकस्मात् ही जन्तु विभाग के प्रवक्ता डा० तिलकराज सेठ को जबरदस्त दिल का दौरा पड़ा, जबकि इससे पूर्व वह पूर्ण रूपेण स्वस्थ थे। उन्हें तत्काल राम कृष्ण मिशन अस्पताल में भर्ती कराया गया। चिकित्सकों ने उन्हें तीन माह की पूर्ण विश्राम की सलाह दी है। अब वे धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। गुरुकुल परिवार उनके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की कामना करता है।

३ दिसम्बर, १९८३ को आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें डा० सत्यकाम विद्यालंकार ने 'वेदों की वैज्ञानिकता' विषय पर अपने विद्वत्तापूर्ण विचार प्रस्तुत किये। सभा का संयोजन डा० भारत भूषण विद्यालंकार, वेद विभाग ने किया।

दिनांक ३ दिसम्बर, को पं० सत्यकाम विद्यालंकार (श्रद्धानन्द जी के दौहित्र) के साथ कुलपति श्री हूजा जी एवं डा० बी. डी. जोशी ने मातृ ग्राम कांगड़ी की पाठशाला के भवन में रात्रि वास किया। रात्रि ८ से १० बजे तक पं० सत्यकाम जी की अध्यक्षता में समस्त ग्रामवासियों की एक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में ग्रामवासियों की अनेक समस्यायें उभर कर सामने आईं और बड़े खुले रूप से समस्याओं एवं उनके निदानों पर विचारों का आदान प्रदान हुआ। श्री शराफत अली, ग्राम विकास अधिकारी के इस विचार विमर्श में सक्रिय योगदान से सभा की व्यवहारिकता को अधिक लाभ मिला।

दिनांक ४ दिसम्बर,८३ की प्रातः ६ बजे ही माननीय कुलपति जी के अनुरोध पर पं. सत्यकाम जी द्वारा गांव के छात्रों एवं ग्रामवासियों के लिये अत्यन्त प्रेरणा पूर्ण श्रमदान कार्य का श्री गणेश किया गया।

दिनांक ७ दिसम्बर से १७ दिसम्बर ८३ तक जन्तु विभाग के अध्यक्ष डा. बी.डी. जोशी के नेतृत्व में विज्ञान महाविद्यालय के छात्रों का एक दल सरस्वती यात्रा पर रामेश्वरम् एवं कन्याकुमारी गया तथा छात्रों ने सामुद्रिक जीव विज्ञान से सम्बन्धित अनेक जानकारी प्राप्त की। स्वेक पार्क,मद्रास तथा मद्रास यूनिवर्सिटी में हो रही अन्तरिक्ष विज्ञान प्रदर्शनी से भी छात्रों का ज्ञानवर्धन हुआ।

दिनांक ९ दिसम्बर,८३ को आचार्य श्री रामदेव दिवस के उपलक्ष्य में वेद महाविद्यालय के शिक्षक-कक्ष में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा की अध्यक्षता आचार्यं रामप्रसाद वेदालंकार ने की। इस अवसर पर वक्ताओं ने आचार्य श्री रामदेव जी के त्यागमय जीवन पर अपने विचार प्रस्तुत किये तथा बताया कि वे हमारे लिये प्रेरणा के स्रोत हैं। प्रमुख वक्ताओं में आचार्य श्री रामप्रसाद जी वेदालंकार, श्री सुरेश चन्द्र त्यागी, (प्राचार्य विज्ञान महाविद्यालय), प्रो० वेद प्रकाश शास्त्री एवं प्रो० मनुदेव बन्धु रहे। सभा का संयोजन प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री संस्कृत विभाग ने किया।

२३ दिसम्बर १९८३ को स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के अवसर पर श्रद्धानन्द द्वार से एक शोभा यात्रा में मान्य कुलपति हूजा जी, आचार्य रामप्रसाद जी,डा० जबर सिंह सैंगर (कुलसचिव) सुरेश चन्द्र त्यागी, प्राचार्य विज्ञान महाविद्यालय तथा सहायक मुख्याधिष्ठाता एवं विश्वविद्यालय तथा गुरुकुल विभाग के समस्त प्राध्यापक, कर्मचारियों, तथा छात्रों ने भाग लिया। सबसे आगे गुरुकुल विभाग के छात्र बैण्ड की धुन के साथ मस्त होकर श्रद्धानन्द जी के नारे लगाते हुये चल रहे थे। यह शोभा यात्रा वेद मन्दिर में पहुंचकर एक सभा में परिवर्तित हो गयी। जिसकी अध्यक्षता कुलपति श्री हूजा जी ने की । सभा का संयोजन डा० जयदेव वेदालंकार दर्शन विभाग ने किया। सभा में स्वामी श्रद्धानन्द जी को भावभीनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की गयी तथा उनके स्वप्नों को मूर्त रूप प्रदान करने का संकल्प लिया गया।

दिनांक २१ से ३१ दिसम्बर ८३,तक गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय राष्ट्रीय सेवा योजना का द्वितीय वार्षिक शिविर पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम में सम्पन्न हुआ। इस वर्ष भी शिविर में ५४ शिविरार्थियों ने भाग लिया एवं शिविर का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व तथा व्यवस्था का भार डॉ. बी. डी. जोशी ने कुशलता-पूर्वक वहन किया। कुलपति श्री हूजा जी ने दो दिन पूर्ण रूप से शिविर स्थल में बिताये और छात्रों के साथ मिलकर श्रमदान एवं बौद्धिक गोष्ठियों में सक्रिय रूप से भाग लिया। शिविर का उद्घाटन २३-१२-८३ को श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के पुण्य अवसर पर प्रो० एल० आर० शाह, भूतपूर्व निदेशक, राष्ट्रीय सेवा योजना, भारत सरकार द्वारा सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता मान्य कुलपति श्री हूजा जी ने की।

दिनांक २६ दिसम्बर ८३ का लोकसभा अध्यक्ष डॉ० बलराम जाखड़ जी भी शिविर स्थली कांगड़ी ग्राम पधारे और स्थल के प्राकृतिक वातावरण से अत्यन्त प्रभावित हुए। लगभग प्रत्येक छात्र से भी जाखड़ जी ने व्यक्तिगत रूप से परिचय प्राप्त किया और ऐसे शिविरों की उपयोगिता की अत्यन्त सराहना की ।

दिनांक २८ दिसम्बर ८३ को श्री वेंकट नारायणन कृषि उत्पादन आयुक्त, उ.प्र. सरकार, भी कांगड़ी ग्राम पधारे तथा शिविरार्थियों से विचार विमर्श किया। बाद में कुलपति की अध्यक्षता में एक सभा का आयोज्न किया गया, जहां ग्रामवासियों की समस्याओं तथा निदानों पर विस्तृत चर्चा हुई।

इस अवसर पर जिला बिजनौर के लगभग सभी उच्च प्रशासनिक अधिकारी उपस्थित थे। दिनांक ३१-१२-८३ को शिविर के समापन समारोह के मुख्य अतिथि बिजनौर के जिलाधीश श्री दर्शन सिंह जी रहे। उन्होंने आश्वासन दिया कि गुरुकुल विश्वविद्यालय के माध्यम से किये जा रहे कार्य में भरपूर सहयोग देगें।

१ जनवरी १९८४ को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर एक जनवरी से तीम केन्द्रों पर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत अध्ययन-अध्यापन का कार्य आरम्भ हो गया। निम्नलिखित गांवों में यह कार्यक्रम चल रहा है :—

कांगड़ी, जगदीशपुर, जमालपुर, सीतापुर, रोहालकी, किशनपुर, मेहवड़ कलां, खेड़ली, टिबड़ी, कुंजबाग आदि। कनखल व ज्वालापुर के कुछ मौहल्लों में भी प्रौढ़ शिक्षा के केन्द्र चल रहे हैं। जमालपुर गांव में दो महिलायें महिला केन्द्र चला रहो हैं। अत्यन्त उत्साह और प्रगति के साथ अशिक्षितों को शिक्षित बनाया जा रहा है।

१२ जनवरी, १९८४ को गुजरात विद्यापीठ के कुलपति डा० रामलाल पारीख का गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। उनके सम्मान में वेद महाविद्यालय के शिक्षाक–कक्ष में एक सभा का आयोजन किया गया। जिसका संयोजन डा० विनोद चन्द्र सिन्हा, अध्यक्ष इतिहास विभाग ने किया। पारीख जी को माल्यार्पण के पश्चात् कुलपति श्री हूजा जी ने अपने संक्षिप्त भाषण में गुरुकुल किस दिशा में कार्य कर रहा है, इस ओर इंगित किया। मुख्य अतिथि ने गुरुकुल के कार्य की प्रशंसा करते हुए गुरुकुल को सर्वाधिक ऊंची एवं पुरानी संस्था बताया और कहा कि इस समय भारतीय संस्कृति पर चारों ओर से आक्रमण हो रहा है। गुरुकुल जैसी संस्थाएं ही इस आक्रमण से भारत की रक्षा कर सकती हैं। उन्होंने गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली की प्रशंसा करते हुए अपने आदर्शों पर दृढ़ रहने का आग्रह किया।

दिनांक १३ जनवरी, ८४ को उज्जैन में सम्पन्न हुई प्रतियोगिता के विजेताओं दूधपुरी एवं सत्यदेव के सम्मानार्थ एक सभा का आयोजन स्टाफ रूम में किया गया। मान्य कुलपति श्री हूजा जी के आदेश से समस्त कार्यवाही संस्कृत में ही सम्पन्न हुई। गुरुकुल के मूल भूत उद्देश्यों पर मान्य कुलपति जी ने प्रकाश डालते हुये आशा व्यक्त की कि गुरुकुलीय परिसर में इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पूर्ण प्रयास किया जायेगा। कुलपति जी की संस्कृत भाषण सुनने की इच्छा से प्रो० वेद प्रकाश शास्त्री, डा० जयदेव, डा० विजय पाल शास्त्री, डा० सत्यव्रत राजेश तथा डा० राकेश शास्त्री ने संस्कृत भाषा में ही भाषण दिया। अन्त में आचार्य श्रो रामप्रसाद वेदालंकार जी ने संस्कृत में अपने विचार प्रकट करते हुए धन्यवाद दिया।

२६ जनवरी, ८४ को परिसर में अत्यन्त उत्साहपूर्वक गणतन्त्र दिवस मनाया गया। वि०वि० के कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजाजी ने ध्वजारोहण किया। ध्वजारोहण के पश्चात् उन्होंने एन.सी.सी. कैडेट एवं विद्यालय स्काउट्स की सलामी भी ली। अपने संक्षिप्त भाषण में श्री कुलपति जी ने कहा कि गुरुकुल प्रगति की दिशा में बढ़ा रहा है, किन्तु हमें और भी उत्साह के साथ इस ओर सक्रिय होना चाहिए। राष्ट्रीय आन्दोलन में गुरुकुल की भूमिका पर भी उन्होंने प्रकाश डाला। □

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय–

प्रगति का एक वर्ष

वर्ष १९८३ में विश्वविद्यालय पुस्तकालय प्रगति के पथ पर तीव्र गति से अग्रसर हुआ। इस आलोच्य वर्ष में पुस्तकालय के संग्रह में लगभग २८०० पुस्तकों की वृद्धि हुई, छात्रों के लिये विभिन्न विषयों की लगभग १५०० पाठ्य पुस्तकें मंगवाई गईं।

गत वर्ष जहां विभिन्न विषयों की २७० पत्रिकायें पुस्तकालय में मंगवाई जाती थीं वहां आलोच्य वर्ष के अन्त तक ३५० पत्रिकायें मंगवाई जाने लगीं, गुरुकुल के इतिहास में प्रथम बार सभी विषयों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के जरनल्स मंगवाने का कार्य प्रारम्भ किया गया। लगभग ५०,००० रु० की राशि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं को मंगवाने में विनियोजित की जा रही है।

पुस्तकालय को इस वर्ष सर्व प्रथम केवल पुस्तकों की सुरक्षा एवं जिल्दबंदी हेतु संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार से ३०,००० रुपये का अनुदान प्राप्त हुआ, इस अनुदान से पुस्तकालय की १००० पत्रिकाओं की जिल्दबंदी का कार्य भी तेज गति से कराया जा रहा है।

पुस्तकालय में यहां के पुराने एवं दुर्लभ संग्रह को देखते हुए १९०० से पहले की सभी पुस्तकों का 'दुर्लभ पुस्तक संग्रह' के नाम से पृथक् संग्रह बनाया जा रहा है। इस संग्रह में से धीरे धीरे अत्यन्त दुर्लभ पुस्तकों को प्रकाशित करने की योजना भी सातवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रम में सम्मिलित की जा रही है।

पुस्तकालय समिति की दिनांक २-१-८४ को सम्पन्न बैठक में पुस्तकालय की अनेक प्रकार की वर्षों से उलझीं समस्याओं का समाधान किया गया। अब पुस्तकालय में दीमकों से पुस्तकों का नष्ट होना बंद हो गया, सारे पुस्तकालय भवन को पेस्ट कन्ट्रोल ऑफ इण्डिया के सहयोग से दीमक से सुरक्षित कर दया गया है।

विजिटिंग टीम के समक्ष पुस्तकालय के स्वरूप को पूर्ण आधुनिक बनाने हेतु अनेक योजनायें प्रस्तुत की जा रही हैं।

१ समस्त पुस्तकालय संग्रह को खुले परिवेश में रखने हेतु स्टील की रैक्स मंगवाये जाने का प्रस्ताव।
२ प्राध्यापकों एवं शोध छात्रों के गंभीर अध्ययन हेतु पृथक् से कक्ष बनवाने का प्रस्ताव।
३ माइक्रोफिल्मिंग कक्ष बनवाने का प्रस्ताव।
४ पुस्तकालय को ५,००,००० रुपये का विशेष अनुदान दिये जाने का प्रस्ताव।
५ इस पुस्तकालय की छवि को राष्ट्रीय वैदिक पुस्तकालय के रूप में प्रकट करने हेतु व्यापक योजनाओं पर विचार किया जा रहा है।

पुस्तकालय में इस वर्ष फोटो स्टेट मशीन के आ जाने से शोध–छात्रों को बहुत सुविधा हो सकेगी, इससे पुस्तकालय की दुर्लभ सामग्री को भी सुरक्षित करने में सहायता मिलेगी।

विश्वविद्यालय के निर्धन छात्रों को पुस्तकालय में आंशिक रोजगार देने के कार्यक्रम में इस वर्ष ४ छात्रों का चयन किया। पुस्तकालय की प्रगति में यहां के अधिकारियों, प्राध्यापकों का भी प्रत्येक पग पर सहयोग प्राप्त होता रहता है।

पुस्तकालय में १९८३ से प्रतियोगात्मक पुस्तक संग्रह की पृथक् से स्थापना की गई, विभिन्न प्रतियोगात्मक परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों के लिये यह संग्रह वरदान सिद्ध हुआ है।

प्रस्तुतकर्ता
जगदीश विद्यालंकार

आर्य समाज के नियम

१ सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२ ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३ वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४ सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५ सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७ सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य बर्तना चाहिए।

८ अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९ प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१० सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

शर्मा प्रिण्टर्स (नजदीक पंजाब नेशनल बैंक) ज्वालापुर।

गुरुकुल-पत्रिका

चैत्र, वैशाख : २०४०

मार्च-अप्रैल : १९८४

वर्ष : ३६

अंक : ३-४

पूर्णांक: ३५४-५५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

विषय–सूची

ओ३म्

गुरुकुल पत्रिका

(गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालयस्य, मासिक पत्रिका)

चैत्र, वैशाख २०४० अंक : ३-४
मार्च, अप्रैल : १६८४ वर्ष : ३६ पूर्णांक ३५४-५५

श्रुति-सुधा

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विशुरूपं यदस्य ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ।। साम० ५८७ ।।

अन्वय :—इन्द्रः जगतः चर्षणीनां राजा,अधिक्षमा विश्वरूपं यत् [अस्ति तत्] अस्य [एव अस्ति] ततः दाशुषे वसूनि ददाति । उपस्तुतं राधः अर्वाक् चित् चोदत् ।

सं० अन्वयार्थ :—इन्द्र संसार का, मनुष्यों का राजा है। इस पृथिवी पर नाना रूपों वाला जो कुछ भी है वह सब भी इसी का ही है। उसी में से दानी को वह नानाविध वैभव देता है। अति प्रशंसनीय धन वह हमारी ओर प्रेरित करे।

अन्वयार्थ :—(इन्द्रः जगतः चर्षणीनां राजा) सर्वविध ऐश्वर्यों का स्वामी, परमेश्वर इस सकल जगत् का और इस में रहने वाले सभी मनुष्यों का राजा है-स्वामी है। इतना ही नहीं (अधिक्षमा विशुरूपं यत्) इस पृथिवी पर नानारूपों वाला जो प्राणिजात है वा जो पदार्थ जात है वह भी सब (अस्य) इस इन्द्र का ही है, या इस सब का भी वही राजा है। (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) वह जगत् का स्वामी वह प्रभु अति प्रशंसनीय मनोवांछित अपने धन को भी इधर आत्मसमर्पण करने वाले साधक की ओर प्रेरित करे ।

वह इन्द्र ही इस सम्पूर्ण संसार का और इसमें विद्यमान प्राणिसमूह और पदार्थसमूह का स्वामी है, राजा है। वह सर्वविध धन-वैभव दानशील को देता है। अति स्तुत्य वैभव—आन्तरिक दिव्य वैभव भी इस आत्मसमर्पण करने वाले उपासक की ओर ही वह प्रवाहित करना है। □

महापुरुषों के वचन

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

(गीता ६।५)

मनुष्य को अपने ही सहारे अपना उद्धार करना चाहिये और हीनभावना से अपने को बचाना चाहिये ।

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।।
चरित्रमेवं व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम् ।।

(वा० रामा०-२।१०९।४)

मनुष्य के चरित्र या बर्ताव से ही पता लग जाता है कि वह कुलीन है या अकुलीन, वीर है या मात्र डींग मारने वाला तथा पवित्र है या अपवित्र ।

यः संयमधुरां धत्ते धैर्यमालम्ब्य संयमी ।
स पालयति यत्नेन वाग्वने सत्यपादपम् ।।

(ज्ञानार्णव-पृ० १२१)

जो संयम से रहने वाला व्यक्ति धैर्य का सहारा लेकर संयम की धुरा को धारण करता है, वही वाणी के वन में सत्यरूपी वृक्ष की यत्नपूर्वक रक्षा करता है अर्थात् धैर्य और संयम के बिना मनुष्य सत्य की रक्षा नहीं कर सकता ।

न कंचिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ।।

(अर्थशास्त्र-चाणक्य १/१५)

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह किसी का अपमान न करे, सबके मत को सुने, एक बालक की भी अच्छी बात को सुनकर उसका उपयोग करे ।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आ मृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ।।

(मनुस्मृति ४/१३७)

पूर्व की विफलताओं के कारण अपने को हीन समझकर हतोत्साहित नहीं होना चाहिये, प्रत्युत् अभ्युदय के लिए जीवन पर्यन्त परिश्रम करते रहना चाहिए और उसको दुर्लभ नहीं मानना चाहिये । □ □ □

महापुरुष चरितम्

स्वामी दर्शनानन्द :

यः ख्यातः सद्दार्शनिकाग्रणीः सन् बभूव शास्त्रार्थमहारथीन्द्रः ।
यद् युक्तिजातं प्रबलं नितान्तं स दर्शनानन्दसरस्वतीड्यः ॥

जो अपने समय के प्रसिद्ध उत्तम दार्शनिकों में अगुआ होकर शास्त्रार्थ महारथियों में श्रेष्ठ बन गये। जिनकी युक्तियाँ बहुत प्रबल होती थीं, वे स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती स्तुति के योग्य हैं।

महात्मा नारायण स्वामी :

परोपकारे सततं प्रसक्तान्, दान्तान् प्रशान्तान् सुगुणैश्च कान्तान् ।
सप्रश्रयं तानिह संस्मरामो, नारायण स्वामी महात्मनो वयम् ॥

परोपकार में निरन्तर तत्पर, जितेन्द्रिय, प्रशान्त अपने गुणों से कान्त, महात्मा नारायण स्वामी का हम आदर पूर्वक स्मरण करते हैं।

महात्मा हंसराज :

योग्यो भृशं किन्तु समाजसेवाव्रतं समादाय चकार कार्यम् ।
आजीवनं साधु महान् मनीषी, श्री हंसराजः किल सोऽभिनन्द्यः ॥

अत्यधिक योग्य होते हुए भी समाज सेवा के कठिन व्रत को लेकर जिसने आजीवन कार्य किया। वह सज्जन, महान् विद्वान् श्री हंसराज निश्चय ही सभी के अभिनन्दन के योग्य हैं।

धर्मवीर लेखराम :

वेदोदितो धर्म इहास्त्यभीष्टः, लोकस्य सर्वस्य हिताय नूनम् ॥
तस्य प्रचारे सततं प्रसक्तः, श्री लेखरामो महनीय आसीत् ।

सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिये निश्चय ही वेद में कहा गया धर्म अभीष्ट है, ऐसा समझकर वेद धर्म के प्रचार में निरन्तर लगे हुए लेखराम जी सबके पूजनीय थे।

(महापुरुषकीर्तनम्—पं० धर्मदेव)

—०—

सम्पादक के नाम पत्र

श्रीमन्नमस्ते ।

११ दिसम्बर, १९८३ को महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी की ओर से स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती एवं राय साहब चौधरी प्रताप सिंह जी ने आर्य समाज, अनारकली, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली में जब मेरा सम्मान किया तो मुझे अन्य सामग्री एवं ग्रन्थों के साथ परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा प्रकाशित "महर्षि दयानन्द निर्वाण शती स्मृति ग्रन्थ" अर्थात् Dayananda Commemoration Volume भी मिला। इसमें मेरा भी लेख है। ग्रन्थ उत्तम बना है। इसके लिये सभी संबद्ध महानुभाव बधाई के पात्र है।

उक्त ग्रन्थ के "हिंदी खण्ड" में पहला लेख श्री दीनानाथ सिंह आर्य का है जो महर्षि के जीवन के अन्तिम दिवस से संबन्धित है। लेख बड़े परिश्रम से लिखा गया है। उन्होंने अपने लेख के अंतिम भाग में लिखा है कि श्री गोपाल राव हरि जी ने अपने ग्रन्थ में कहीं भी जोधपुर की विरोधी प्रवृत्तियों का उल्लेख नहीं किया, न नन्ही जान का, न नौकर द्वारा चोरी का। लेख के अन्त में श्री आर्य जी लिखते हैं—"जगन्नाथ रसोइये का नाम, दूध के साथ कांच पीसकर दिया जाना और स्वामी जी का जगन्नाथ को रुपया देना तथा देश की सीमा से बाहर जाने की सलाह–ऐसी कथाएं हैं, जो लोक प्रचलित हैं–उनकी पुष्टि करना भी कठिन है और अस्वीकार करना भी।"

महर्षि को विष दिये जाने के विषय में श्री गोपालराव हरि, देवेन्द्र बाबू एवं जोधपुर के राव राजाओं के क्या विचार हैं, मैं इस विवाद में पड़ना नहीं चाहता, पर एक दो तथ्य प्रस्तुत करना चाहता हूँ। महर्षि का निर्वाण अक्तूबर१८८३ में हुआ और कुछ ही मास बाद अगले ही वर्ष १८८४ में मैक्समूलर ने अपने लेख में लिखा है कि उन्हें समाचार पत्रों में से संकेत देखने को मिले हैं कि स्वामी जी की मृत्यु उनके शत्रुओं द्वारा विष देने से हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इंग्लैंड में बैठे लोगों को भारत में ही रहने वालों की अपेक्षा भारत के विषय में अधिक जानकारी थी। इसका कारण भी स्पष्ट है क्योंकि उस समय इंग्लैंड का भारत पर राज्य था। यही नहीं, मैक्समूलर ने अपनी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व अर्थात् १८९९ में स्वामी जी पर एक और लेख लिखा था, जिसमें स्वामी जी को जहर देने वाली बात को दुहराया है और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उन्हें बतलाया गया है कि जोधपुर की वेश्याओं के बहकावे पर किसी ब्राह्मण रसोइये द्वारा स्वामी जी को जहर दिया गया और रसोइये ने आत्महत्या कर ली थी। आगे मैक्समूलर महोदय लिखते हैं कि स्वामी जी की सहसा मृत्यु

का यही कारण था, अन्यथा दयानन्द बहुत शक्तिशाली थे और उनमें नेतृत्व करने की क्षमता थी। ये बातें मैक्समूलर ने कहां-कहां लिखी हैं, इसकी पूरी जानकारी निर्वाण शताब्दी पर ही प्रकाशित मेरे ग्रन्थ "World Perspectives on Swami Dayananda Saraswati" में पृष्ठ संख्या १२४ और १२७ पर दी गई है। यह ग्रन्थ Concept ने छापा है और Daystar Publications, B-2/48 A, Lawrence Road, New Delhi–110035. (फोन : ७१२११६९) से भी उपलब्ध है। डॉ० भवानीलाल भारतीय ने भी अपने ग्रन्थ "नवजागरण" के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती (१९८३ पृष्ठ ५२३) में मैक्समूलर के इन लेखों की ओर संकेत किया है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि महर्षि को विष देने वाली बात कल्पित नहीं है, बल्कि उसी समय ज्ञात तथ्यों पर आधारित है।

—डॉ० गंगाराम गर्ग
II/२०, वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर
हरिद्वार–२४९४०७

दिनांक १५-१२-१९८३

□ □ □

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥
(यजु० ४०।२)

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कर्तव्य कर्मों को करता हुआ ही पूर्ण आयु–पर्यन्त जीने की, अर्थात् अपने को समुन्नत करने की इच्छा करे। उसका कल्याण इसी में है; कर्तव्य कर्म को छोड़कर भागने में नहीं। कर्मबन्धन से बचने का यही उपाय है।

वैदिकयुगो नारीजातिश्च

—डॉ० प्रमिला वात्स्यायन
रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
रांची गर्ल्स कॉलेज, रांची

कस्यचित् अपि समाजस्य प्रगतिं ज्ञातुं तत्समाजे तत्कालीनसमये नार्यावस्था कीदृशी इति ज्ञानमावश्यकम्। प्रगतिशीले समाजे नारी अपि स्वतंत्रव्यक्तित्वयुक्ता, शिक्षिता एवं प्रगतिशीला अस्ति। रुग्णे एवं पराङ्मुखे समाजे नारी दलिता, धर्षिता एवं अशिक्षिताऽस्ति। वेदेषु अस्माकं समाजस्य सांस्कृतिको निधिः सुरक्षितः मानवतायाः विकासस्य इतिहासश्च समाहितः। अतएव वैदिकयुगे नार्यावस्था कीदृशी आसीत् इति जिज्ञासा विशेषतया स्वाभाविकी अस्मिन् युगे यदा सर्वत्र नारीमुक्त्याः आन्दोलनस्य चर्चा श्रूयते।

'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इति कात्यायनस्मरणात् संहितावद् ब्राह्मणग्रन्थाः अपि वेदपदार्थान्तर्गता एव। वेदकालोनसमाजः निःसन्देहरुपेण पुरुषप्रधानः पितृमूलकः समाजः आसीत्। पुत्राः, कन्याः, वध्वः सर्वे तस्य छत्रछायायां सुखपूर्वकं अवसन्। पिता कन्यानां शिक्षादीक्षाविषये विशेष-सावधानः आसीत्। कन्याः अन्यविषयातिरिक्तं काव्यकलासंगीतनृत्याभिनयेषु अपि पारंगताः अभूवन्। ऋग्वेदे अनेकाः सूक्तविधायिकाः ऋषिकाः दृश्यन्ते। काक्षीवतः पत्नी घोषा निजतपस्यया मन्त्रदर्शनेन च अश्विनकुमारयोः अनुकम्पया परिपक्वावस्थायां विवाहसौख्यं अनुभूतवती। ऋग्वेदस्य दशममण्डले द्वौ सूक्तौ अश्विनीकुमाराभ्यां काक्षीवतीघोषायाः एव।

कन्यानां उदारशिक्षायाः एव परिणामः आसीत् यत् लोपामुद्रा, अपाला, रोमशा, सूर्या प्रभृति ऋषिकाः ऋग्वेदकालीनसमाजे आसन्। उपनिषद्काले समाजस्य उच्चस्तरे कन्यासु अपि उपनयनसंस्कारः प्रचलितः आसीत्। 'पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते' कथयति स्मृतिकारः। तदनन्तरं ताः विधिपूर्वकं शिक्षां अगृह्णन्। हारीतस्य इदं कथनं प्रेक्षणीयं-'द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योद्वाहाश्च। ब्रह्मवादिनामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति।' ब्रह्मवादिनीः स्त्रियः उपनिषद्युगस्य विशिष्टता। ताः निजजीवनं ब्रह्मचिन्तने अनयन। एताः समकालीनदार्शनिकैः सह शास्त्रार्थं अपि अकुर्वन्। बृहदारण्यके उपनिषदे याज्ञवल्क्यस्य पत्नी मैत्रेयी याज्ञवल्क्येन सह शास्त्रार्थे प्रवृत्ता आसीत्। मैत्रेय्याः जीवने, कार्यकलापे वाण्यां च तत्त्वज्ञानस्य पूर्णता प्राप्यते। यदा याज्ञवल्क्यः निजसम्पत्तीनां विभाजनं करोति तदा मैत्रेयी कथयति 'येनाहं नामृता स्याम, किं तेन कुर्यामिति।' तदा याज्ञवल्क्यः तां प्रति आत्मतत्त्वं कथयति। वाचाक्नवीगार्गी तम् एव याज्ञवल्क्यं शास्त्रार्थे पराजितवती। उपनिषद्काले नार्यः गुरुकुलेषु अध्यापिका रूपे अपि प्रतिष्ठिताः आसन्। पाणिनिः स्पष्टरुपेण तान् 'उपाध्यायाः' कथयति।

ऋग्वेदस्य विवाहसूक्ते विवाहस्य उच्चादर्शो दृश्यते। पतिः कथयति—

"गृभ्णामि ते सौभाग्यत्वाय हस्तं मया जरदष्टिर्यथासः।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यमत्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥" (ऋ० १०/८५/३६)

अनेन सुस्पष्टं यत् धार्मिककार्येषु स्त्रीणां महत्त्वपूर्णस्थानं आसीत्। गृहस्थस्य किमपि कार्यं विना पत्नीं न अभवत्। अतएव पूर्वोक्तमन्त्रे पतिः कामयते पत्न्याः यावज्जीवनं साहचर्यम्। तैत्तिरीय-ब्राह्मणस्योक्तिरस्ति "अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः" (२/२/२६)। वैदिकसिद्धान्तानुसारं पतिः पत्नी च एकस्य शरीरस्य द्वे अंगे आस्ताम्। एकं बिना द्वितीयं अपूर्णम्। विवाहसूक्ते पुनर्पुनः द्वयोः दीर्घजीवनस्य कामना कृता।

वैदिककाले काचित् क्षत्रियकन्याः एव स्वयंवराः आसन्। प्रचलितो विधिः अयमेव आसीत् यत् पिता एव कन्यायाः वरं चिनोति स्म। ऋग्वेदस्य तृतीये मण्डले यत् कथितं 'पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन मनसा दधन्वे' (ऋ०, ३-३१-१) तत् इमं विधिं प्रति एव संकेतितम्। शतपथे ब्राह्मणे अपि सुकन्या कथयति यत् 'यस्मै मां, पिताऽदामैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति (शतपथ ब्राह्मण ४-१-५-९ विवाहविषयका) मातापित्रोः सम्मतिः कन्याय आवश्यकी आसीत्। बृहद्देवता अस्मिन् विषये एकं आख्यानं कथयति। श्यावाश्वः ऋषिः राजकन्यां पत्नीरूपे प्राप्तुं इच्छति। अतः सः नृपं निजाभिलाषया अवगतं करोति। नृपः निजां पत्नीं शशीयसीं वदति अस्मिन् विषये। तस्याः सहमत्या एव नृपः आप्तऋषित्वाय श्यावाश्वाय कन्यां ददाति। बालविवाहस्य एकोऽपि प्रसङ्गः ऋग्वेदे न प्राप्यते। ऋग्वेदस्य दशममण्डले वर्णितः विवाहः युवावस्थानन्तरं प्रौढावस्थायां कृतः विवाहः आसीत्। पारस्करगृह्यसूत्रे कथितं 'समुद्वह्य यथर्तु प्रवेशनम्।' अयं अभिगमनाज्ञा संकेतः यत् वरो वधू च आपन्नयौवनौ। यद्यपि वैदिकः आर्यः सामान्यतया केवलं सकृत् एव पाणिग्रहणं करोति स्म, तथापि यत्र-तत्र एकस्यैव नरस्य एकाधिकविवाहानां संकेतानि अपि प्राप्यन्ते।

दुहितारूपे, पत्नीरूपे, मातारूपे च स्त्री सर्वदा सम्मान्या आसीत्। विवाहसूक्ते सा "सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रू वा भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवेषु।" इति आशीर्वचनेन समन्विता। न केवलं ताः गृहकार्येषु एव चतुराः आसन्, अपितु कृषिवाणिज्यादिकार्येषु अपि नराणां योगदायिकाः आसन्। नार्यः पतिभिः सह युद्धक्षेत्रं अपि अगच्छन्। अगस्त्यस्य पुरोहितस्य खेलस्य ऋषेः पत्नी विशाला निजपत्या सह युद्धक्षेत्रं गतवती। वृत्रासुरस्य माता दनुरपि पुत्रेण सह युद्धक्षेत्रं गता आसीत्, इन्द्रेण तत्र मारिता च सा। संक्षेपेण ऋग्वेदे जाया गृहरूपासीत्— 'जायेदस्तम्।'

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह पर मान्य कुलपति द्वारा

स्वागत भाषण

अर्चनीय स्वामी जी, परिद्रष्टा महोदय, कुलाधिपति जी, विशिष्ट अतिथिगण, देवियों, सज्जनों एवं ब्रह्मचारियों !

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८४ वें दीक्षान्त समारोह के अवसर पर मुझे आपका अभिनन्दन करते हुये अतीव प्रसन्नता हो रही है। स्वामी सत्य प्रकाश जी का मैं अत्यन्त आभारी हूं कि उन्होंने इस दीक्षान्त समारोह में पधारने का हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया और अपनी गरिमामयी उपस्थिति से समारोह की शोभा बढ़ायी।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी के व्यक्तित्व से हम सभी परिचित और प्रभावित हैं। उनका जीवन एक खुली किताब है और हमारे लिये प्रेरणा का एक भारी स्रोत है। आप विज्ञान और वेद दोनों के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपने १९६७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र के प्रोफेसर पद से अवकाश प्राप्त किया और १९७१ में सन्यास ग्रहण किया। भौतिकी और रसायन शास्त्र में आपके सैकडों अनुसंधान पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आप विज्ञान परिषद् के प्रमुख संचालक रहे हैं। 'अंग्रेजी हिन्दी वैज्ञानिक कोष' तथा 'वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा' आपकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। देश में हिन्दी माध्यम से वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वाले वैज्ञानिकों में आप अग्रणी हैं। इसके साथ ही आप पातञ्जल योग और उपनिषदों में पारंगत हैं। आपने ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके अंग्रेजी भाषा भाषी लोगों में वेद के प्रचार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया हैं। सी० एस० आई० आर० द्वारा प्रकाशित भारत की सम्पदा श्रृंखला पुस्तकों के आप मुख्य सम्पादक रहे हैं।

आदरणीय स्वामी जी !

आप जैसे मनीषी व्यक्ति को अपने बीच पाकर हम अपने आपको इसलिये भी गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं, क्योंकि आधुनिक ऋषियों की परम्परा का इस संस्थान के संस्थापक ने पुनरावर्तन किया है और आपका गैरिक परिधान उसी अनुपम आध्यात्मिक प्रकाश का प्रेरक प्रतीक है। आज दीक्षा लेने वाले स्नातकों के लिये यह दिन और आपका उपदेश अविस्मरणीय रहेगा।

आपकी उपलब्धियां और प्रखर योग्यता को ध्यान में रखते हुये इस विश्वविद्यालय की शिष्ट परिषद् ने इस वर्ष आपको विद्या-मार्तण्ड की मानद उपाधि से अलंकृत करने का निश्चय किया है।

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह (१९८३-८४) एवं अन्य कार्यक्रमों की झलकियां

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त यज्ञ का दृश्य नवस्नातकों को आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार यज्ञ कराते हुए, साथ में अधिकारीगण।

विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर अधिकारीगण-

दाएं से-श्री सरदारी लाल वर्मा, आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालङ्कार, डॉ० एम० आराम (कुलपति, गांधी रूरल इन्स्टीट्यूट, मदुराई) कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा, डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा), पं० सत्यकाम विद्यालंकार (आचार्य), डा० गंगाराम गर्ग ।

कुलपति जी दीक्षान्त समारोह पर स्वागत भाषण देते हुए।
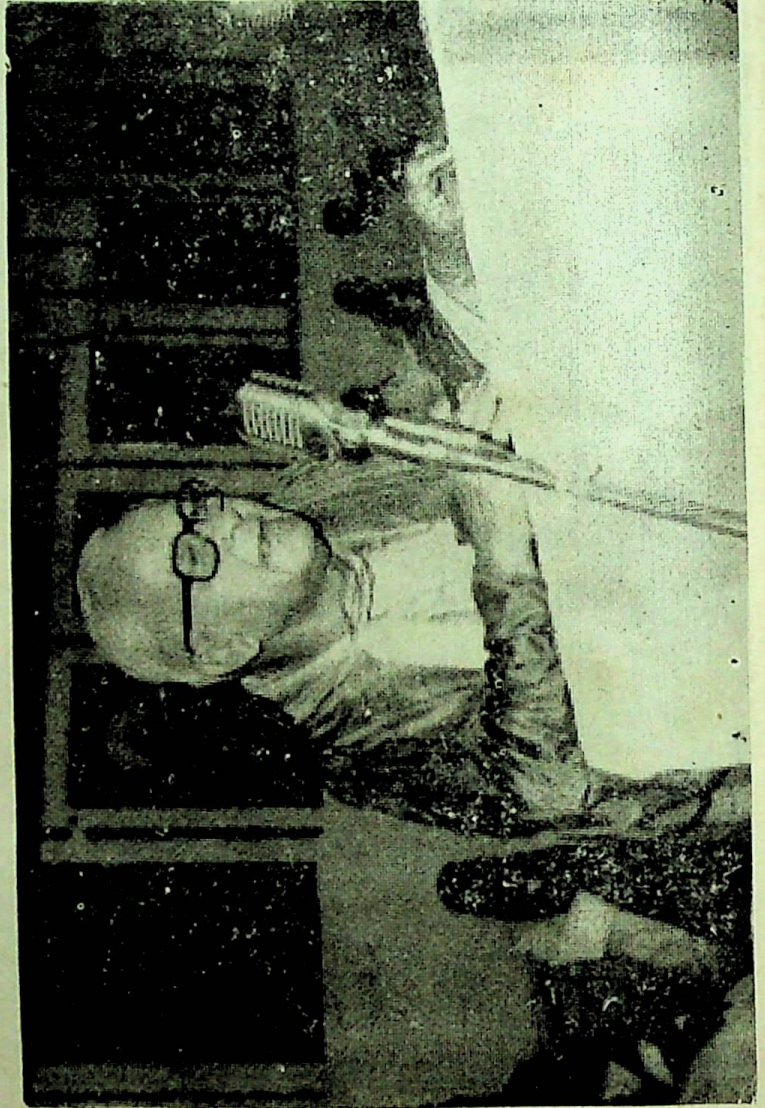
कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी दीक्षान्त समारोह पर नवस्नातकों को सम्बोधित करते हुए

उनकी ओर से हम आपको यह उपाधि प्रदान करते हुये अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। देवियों एवं सज्जनों !

इस वर्ष के आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार विजेता श्री सत्यकाम विद्यालंकार का भी मैं अभिनन्दन करता हूं। श्री सत्यकाम विद्यालंकार वेदों के निष्णात ज्ञाता हैं और उन्होंने भी ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को गति दी है। आप गुरुकुल के यशस्वी स्नातक हैं और वर्षों से वेद का प्रचार, भाषण, चित्रकला तथा शब्दों के आलेखों द्वारा करते रहे हैं।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि विश्वविद्यालय की कार्यपरिषद् ने आपको इस विश्वविद्यालय में मानद प्रोफेसर के पद पर कार्य करने हेतु आमन्त्रित किया है और आर्य विद्या सभा ने आपको गुरुकुल के आचार्य का पद–भार सौंपा हैं। आपने अत्यन्त कृपा कर इन दोनों पदों पर कार्य करने की सहमति प्रदान की है। हम आपके प्रति कृतज्ञ हैं।

मान्य पण्डित जी, आपकी उपलब्धियों को देखते हुए विश्वविद्यालय की सीनेट ने आपको 'विद्यामार्तण्ड' की उपाधि से विभूषित करने का निश्चय किया है। उसकी ओर से यह उपाधि प्रदान करते हुए हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

इस अवसर पर मैं गुरुकुल कांगड़ी की ओर से और आप सबकी ओर से भारत के पहले अन्तरिक्ष यात्री राकेश शर्मा का भी अभिनन्दन करना चाहूंगा, आर्य जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि राकेश शर्मा आर्य समाज के प्रसिद्ध उपदेशक पं० लोकनाथ, जो कि 'यज्ञरूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिये' गीत के रचयिता हैं, के पौत्र हैं। मेरी उत्कट इच्छा है कि चाँद पर उतरने वाला पहला भारतीय गुरुकुल का ब्रह्मचारी हो।

इधर जो कुछ पंजाब में हो रहा है। उसके बारे में भी हमें कुछ सोचना है, करना है। एक वक्त था जब हमारा देश 'आसिन्धु' सिन्धु पर्यन्त था और सिन्धु से ही हमने हिन्दू नाम लिया था। लेकिन हमारे देश के चार टुकड़े बने और अब पाँचवाँ टुकड़ा बनाने का षड्यन्त्र रचा जा रहा है। गुरुकुल के गुरुजन और आर्यजनों को सोचना है कि इसका किस प्रकार से प्रतिकार किया जाय तथा राष्ट्र की मूल भूत एकता पर मंडराते हुये साम्प्रदायिक खतरों का कैसे मुकाबला किया जाये।

इस सन्दर्भ में मैं श्री वी० के० आर० वी० राव द्वारा वी० टी० कृष्णामाचारी स्मृति व्याख्यान माला में दिये गये व्याख्यान को दोहराना चाहूंगा जिसमें उन्होंने कहा कि हमें राष्ट्र निर्माण की सर्वांगीण प्रक्रिया में भारतीय तत्त्व चिन्तन और मूल्यों के आधार पर ही विकास का ढांचा स्थिर करना है। भारत में भिन्नता होते हुये भी एक राष्ट्रीयता का स्वरूप विद्यमान है। अतः न केवल

शासन तन्त्र को अपितु स्वयंसेवी संस्थानों को भी इस महान् राष्ट्रीय यज्ञ में इकट्ठे मिलकर कार्य करना है जिससे देश में फैली हुई संकुचित विचार धारा और व्याप्त पाखण्ड का नाश हो, प्राचीन और आधुनिक जीवन मूल्यों का समन्वय हो और राष्ट्र हर दृष्टि से अभ्युदय तथा कल्याण की ओर अग्रसर हो सके।

उपस्थित भद्रजनों !

वार्षिक दीक्षान्त समारोह गत वर्ष की गतिविधियों को भी उपस्थित करने का एक सुखद अवसर होता है।

अपने स्थापना काल से लेकर ८४ वर्षों की सुदीर्घ यात्रा में इस विश्वविद्यालय ने युग की कई करवटें देखीं। आँधी और तूफान के अनेक झटके महसूस किये। लेकिन सुदृढ़ और अडिग चट्टान के सदृश कुलपिता के आदर्शों से पोषित यह विश्वविद्यालय आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त शिक्षा संस्थान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है और सम्पूर्ण विश्व की दृष्टि आज गुरुकुल पर केन्द्रित है।

कॉमनवेल्थ विश्वविद्यालयों के बर्मिंघम सम्मेलन में गुरुकुल के कुलपति के रूप में अगस्त १९८३ में मुझे आमन्त्रित किया गया था। इस सम्मेलन में विश्व के प्रमुख शिक्षा शास्त्रियों ने भाग लिया। इसमें मैंने निरन्तर शिक्षा एवं सर्वांगीण ग्राम सुधार में गुरुकुल विश्वविद्यालय की भूमिका पर प्रकाश डाला। मैंने आयरलैण्ड, फ्रांस, हालैंड, पश्चिमी जर्मनी, बेल्जियम आदि देशों के प्रमुख विश्वविद्यालयों का अवलोकन भी किया। मैंने अनुभव किया कि वहाँ के शिक्षा शास्त्री गुरुकुल शिक्षा स्वरूप को समझने और ग्रहण करने में जिज्ञासा तथा रुचि लिये हुये हैं। मैंने अनेक कुलपतियों को गुरुकुल में आकर शिक्षा की भारतीय परम्परा को देखने का निमन्त्रण दिया है।

१९८० के जिला जज सहारनपुर के निर्णय के बाद गुरुकुल में पुनर्निर्माण का युग आरम्भ हुआ। किन्तु गत तीन वर्षों में आशा के विपरीत कतिपय अप्रत्याशित दिशाओं से गुरुकुल की प्रगति में बाधायें डालने के अनेक प्रयत्न किये गये। फिर भी मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि बावजूद इन बाधाओं के मान्य परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार और कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी के नेतृत्व में गुरुकुल निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर हुआ है। संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप नियमित रूप से शिक्षा-पटल, कार्य परिषद् एवं शिष्ट परिषदों की बैठकें सम्पन्न हुईं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार तथा उत्तर–प्रदेश सरकार के प्रतिनिधि इन बैठकों में सम्मिलित हुये। उनके सहयोग एवं परामर्श से विश्वविद्यालय को उज्ज्वल स्वरूप प्राप्त हुआ है।

गतवर्ष विश्वविद्यालय के गुरुजनों और अधिकारियों ने समय-समय पर अनेक शिक्षा सम्मेलनों, परिचर्चाओं एवं संगोष्ठियों में भाग लिया।

५ जून १९८३ को विश्वविद्यालय में पर्यावरण दिवस पर एक विद्वद् संगोष्ठी का आयोजन हुआ। देश के अनेक विद्वानों ने इस संगोष्ठी में भाग लिया। भारत सरकार के पर्यावरण मन्त्रालय के उपमन्त्री माननीय श्री दिग्विजय सिंह इस संगोष्ठी के उद्घाटन के लिये पधारे।
देवियों एवं सज्जनों !

मुझे आपको सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि भारत सरकार के पर्यावरण विभाग ने गंगा के समन्वित अध्ययन की योजना के अन्तर्गत इस विश्वविद्यालय को लगभग १० लाख रुपये का अनुदान देना स्वीकार किया है। इस कार्य हेतु हमें ऋषिकेश से लेकर गढ़मुक्तेश्वर तक का गंगा का भाग मिला है। डा० विशयशंकर अध्यक्ष, वनस्पति-विज्ञान इस प्रयोजना के निदेशक हैं।

२५ जुलाई १९८३ को विश्वविद्यालय में वृक्षारोपण का कार्यक्रम बड़े भव्य रूप से मनाया गया। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के मन्त्री श्री शिवनाथ सिंह कुशवाहा, चिपको आन्दोलन के प्रणेता पद्मश्री सुन्दरलाल बहुगुणा, मेरठ मण्डल के आयुक्त श्री बी० के० गोस्वामी, जिलाधीश श्री एल० के गुप्ता ने पर्यावरण सम्बन्धी अपने विचार अभिव्यक्त किये। गत वर्षा ऋतु में विश्वविद्यालय परिसर एवं कांगड़ी ग्राम में हजारों वृक्षों का आरोपण किया गया।

२५ से २७ दिसम्बर तक अखिल भारतीय कृषक समाज ने इस विश्वविद्यालय में डॉ० बलराम जाखड़, अध्यक्ष लोकसभा के नेतृत्व में अपना वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया। इस अवसर पर देश भर से हजारों कृषकबन्धु इस विश्वविद्यालय में आये। उन्होंने इसे देखा और इसकी प्रगति की सराहना की।

९-१० मार्च १९८३ को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की छठी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप देने के लिये गुरुकुल में आयी। इसके सदस्य थे-श्री रमारंजन मुखर्जी, भू०पू० कुलपति वर्दवान विश्वविद्यालय, प्रो० आर० सी० गौड, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, प्रो० एम० एल० रैना, पंजाब विश्वविद्यालय, श्री बी० आर० क्वाटरा उप-सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, इस समिति के सचिव थे।

इस सन्दर्भ में जो प्रश्न उभर कर सामने आया वह था कि क्या गुरुकुल की कोई निजी विशेषता है अथवा गुरुकुल भी अन्य विश्वविद्यालयों की तरह ही है जो बी० ए० की परीक्षायें लेते हैं और डिग्रियां बांटते हैं।

इस अवसर पर मैंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८० वें दशक का कार्यक्रम उपस्थित करते हुये कहा कि गुरुकुल सामान्य विश्वविद्यालयों की तरह नहीं, अपितु विश्व की समस्याओं के समाधान की दिशा में भी उपयोगी हो सकता है। वह सन्देश है आध्यात्मिक मूल्यों का प्रचार, विज्ञान का प्रसार और पाखण्ड का खण्डन, अर्थात् श्रेयस् और प्रेयस् का संगम। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जानते थे कि देश तभी सशक्त होगा जब सभी देशवासी सशक्त, सबल, हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी, ओजस्वी और विचारवान् होंगे। वह देश की निर्बल असहाय, असमर्थ जनता को बलवान्, स्वावलम्बी तथा समर्थ बनाना चाहते थे। अतः जहां एक ओर उन्होंने समाज सुधार के कार्यक्रम पर बल दिया, वहां व्यक्तिगत सुधार पर भी उन्होंने यथेष्ट बल दिया।

इसी हेतु स्वामी श्रद्धानन्द से आज से ८४ वर्ष पूर्व गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की, ताकि यहां से निकले हुये ओजस्वी स्नातक अच्छे ब्राह्मण, अच्छे वैश्य बनें और देश के उद्धार में अपना योगदान दें, लेकिन जिस पौराणिकता पाखण्ड और पोपलीला के विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने युद्धभेरी बजाई थी वह अभी भी देश में व्याप्त है। अतः उनके कार्यक्रम को गतिमान करने हेतु तथा अज्ञान और रूढ़ियों के इन गढ़ों को मिटाने हेतु व्रत—संकल्प नवयुवक समुदाय की, दयानन्द के वीर सैनिकों की, बहुत आवश्यकता है और उनको तैयार करने का कार्य गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का है।

इस सन्दर्भ में आचार्य सत्यकाम विद्यालकार ने गुरुकुल को वैदिक संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने की योजना विश्वबिद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी के सम्मुख रखी थी, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया।

विजिटिंग कमेटी ने हरिद्वार की शैक्षणिक आवश्यकताओं का भी जायजा लिया तथा विश्वविद्यालय की गतिविधियों का गहराई से अध्ययन किया और इसकी कमजोरियों एवं क्षमताओं का मूल्यांकन किया। आशा की जाती है कि उनकी सिफारिशें गुरुकुल के विस्तार में बहुत उपयोगी सिद्ध होगीं।

१९ मार्च, १९८४ को गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गोवर्धन ज्योति की छठी रश्मि का विमोचन करते हुये महात्मा आर्य भिक्षु ने कहा कि "आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालकों में गुणों की वृद्धि करें तथा अवगुणों को दूर करें।'

इन दिनों आर्य समाज गुरुकुल काँगड़ी ने भी अंगडाई ली है। संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर की आर्थिक सहायता से आर्य समाज गुरुकुल काँगड़ी ने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश'

के दूसरे तीसरे एवं छठे समुल्लास के सरलीकृत एवं संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किये। इसी प्रकार उन्होंने 'व्यवहार भानु' के सरलीकृत संस्करण का प्रकाशन किया। इन तीनों पत्रिकाओं का प्रकाशन इस आशा से किया गया है कि स्वामी जी के विचार घर-घर तक पहुँचें।

मुझे यह कहते हुए भी प्रसन्नता हो रही है कि पद्मश्री विनयचन्द्र मौदगिल्य, प्राचार्य गन्धर्व महाविद्यालय, नई दिल्ली, जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल में हुई थी, ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को संगीत शिक्षा की ओर प्रेरित करने हेतु अपनी अमूल्य सेवायें प्रदान की हैं। इस श्रृंखला में उन्होंने पिछले दिनों तीन दिन तक गुरुकुल में प्रवास किया तथा चुने हुये ब्रह्मचारियों को सस्वर वेदमन्त्र एवं अन्य गीत सिखाये।

मुझे आपको यह सूचना देते हुए हर्ष हो रहा है कि पिछले दिनों इस विश्वविद्यालय में अमेरिकन अध्ययन के अखिल भारतीय संगठन का १८ वाँ वार्षिकोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर उ०प्र० के पर्यटन मन्त्री श्री गुलाब सेहरा ने अपने सन्देश में कहा कि ऐसी संस्थाओं ने देश विदेश में एकात्मकता प्रतिष्ठित करने में लाभदायक भूमिका निभाई है। अवध विश्वविद्यालय के कुलपति श्री मेहरोत्रा ने कहा कि इस प्रकार के सम्मेलनों से गुरुकुल कांगड़ी की छवि निखरेगी। इस सम्मेलन का उद्घाटन हमारे मान्य परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने अपने ओजस्वी भाषण से किया। उन्होंने कहा कि किपलिंग तो कहता था, पूर्व पश्चिम का संगम सर्वथा असम्भव है। मैं भारतीय किपलिंग कहता हूं पूर्व और पश्चिम अभिन्न हैं और सदा ही एक दूसरे से जुड़े रहेंगे।

देवियों तथा सज्जनों !

आप जानते ही हैं कि गुरुकुल का मातृ-ग्राम काँगड़ी ग्राम है। इस विश्वविद्यालय द्वारा इस गाँव को पूर्ण रूप से अंगीकृत कर लिया गया है। २६ दिसम्बर १९८३ को लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ का इस गाँव में पदार्पण हुआ तथा वे इस गाँव की प्रगति से काफी प्रभावित हुये। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ज्वालापुर ने ग्रामवासियों को कुटीर उद्योग धन्धों के लिए ऋण देने का व्यापक कार्यक्रम शुरू किया है जिससे यहाँ के निवासियों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है।

गत वर्ष श्रद्धानन्द सप्ताह के दौरान डा० बी०डी० जोशी के निर्देशन में पुण्य भूमि में राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत कैम्प लगाया गया, विश्वविद्यालय के ५० छात्रों ने अत्यन्त लगन और निष्ठा से काँगड़ी ग्राम में कार्य किया।

अन्य विशिष्ट अतिथिगण के अलावा माननीय बलराम जाखड, श्री आर० वैंकटनारायण, कृषि उत्पादन आयुक्त उत्तर प्रदेश, श्री दर्शन सिंह जिलाधीश, बिजनौर ने कैम्प का अवलोकन किया। इसका उद्घाटन भारत सरकार के भू०पू० सलाहकार श्री शाह ने किया था।

डा० त्रिलोक चन्द के निर्देशन में गुरुकुल काँगड़ी द्वारा प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम के अन्तर्गत ३० प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का सफलतापूर्वक संचालन किया जा रहा है।

गुरुकुल पुस्तकालय ने भी आशातीत प्रगति की है। गत वर्ष पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की लगभग ५,००० पुस्तकें मंगाई गईं। इस समय विभिन्न विषयों की ३५० पत्रिकायें नियमित रूप से आ रही हैं। पुस्तकालय में इस वर्ष गुरुकुल से प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य एवं गुरुकुल के स्नातकों के विपुल प्रकाशन को पृथक् रुप से 'गुरुकुल प्रकाशन संग्रह' के नाम से संगृहीत किया गया है। इसके लिये पुस्तकालयाध्यक्ष श्री जगदीश विद्यालंकार धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रो० विनोद चन्द्र सिन्हा के नेतृत्व में गुरुकुल का संग्रहालय राष्ट्रीय ख्याति की ओर अग्रसर हो रहा है। इस सत्र से यहाँ अष्टधातु कक्ष और चित्रकला कक्ष की भी स्थापना की गई है। पंजाब विधान सभा के अध्यक्ष माननीय श्री मेहरोत्रा ने, जो पिछले दिनों गुरुकुल आये थे, गुरुकुल के संग्रहालय हेतु १०,००० रु० विशेष अनुदान के रूप में स्वीकृत किये।

मित्रों !

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि विश्वविद्यालय में शोध तथा प्रकाशन का कार्य आलोच्य वर्ष में उत्साहवर्धक ढंग से बढ़ा है। आपको ज्ञात ही है कि गुरुकुल से नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली पाँच पत्रिकाओं के अतिरिक्त ऋषि दयानन्द निर्वाण शताब्दी पर गुरुकुल काँगड़ी ने अपने श्रद्धासुमन प्रस्तुत करते हुये 'ऋषि दयानन्द की साधना और सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। निर्वाण शताब्दी के अवसर पर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के सौजन्य से डा० गंगा राम गर्ग ने अंग्रेजी में 'वैदिक पर्सपैक्टिव ऑन स्वामी दयानन्द सरस्वती' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस पुस्तक की भूमिका सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्रो० कैनिथ जॉन्स द्वारा लिखी गई।

वेद एवं कला महाविद्यालय के वेद, संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा हिन्दी विभागों में अनुसंधान-कार्य प्रगति पर है। इस वर्ष वेद-विभाग में ५ छात्रों के पंजीकरण किये गये इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि अब तक केवल चार विभागों में ही अनुसंधान कार्य की अनुमति थो इस वर्ष दर्शन-विभाग में भी अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने की अनुमति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रदान कर दी है। तदनुसार दर्शन विभाग में भी ५ छात्र पंजीकृत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने हेतु मनोविज्ञान, अंग्रेजी तथा विज्ञान महाविद्यालय के वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान तथा रसायन-विज्ञान आदि विभागों में भी अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से पत्राचार चल रहा है।

विश्वविद्यालय अपने स्थापना काल से ही उच्चतर अध्ययन तथा अनुसंधान कार्य में अग्रणी रहा है। महर्षि दयानन्द को केन्द्र बनाकर शोध के विविध परिदृश्य प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। वैदिक मानवतावाद, वेद वर्णित संस्थायें, दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में समाज का स्वरूप, प्राचीन भारत में धर्म निरपेक्षता, जनमत, भारत-कुम्बुज सम्बन्ध, बाली द्वीप में भारतीय संस्कृति का विकास, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वैदिक परम्परा, सत्यदेव परिव्राजक तथा आर्य समाज और प्रेम चन्द ऐसे कार्य हैं जो विश्वविद्यालयीय शोध कार्य की तुलना में प्रतिबद्ध किन्तु लोकोपयोगी कार्य का दिशाबोध कराते हैं। वैदिक शिक्षा दर्शन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विनियोग करना ही हमारा लक्ष्य है और भावी अनुसंधान कार्य की रूपरेखा भी इसी दिशा में स्थिर की जा रही है

आज की नई पीढ़ी स्वतन्त्रता के ऊंचे महलों में उपलब्ध सुख सुविधाओं की तो आकांक्षा करती हैं और उनके अभाव में उग्र आन्दोलन चलाने की बात भी करती है, पर वह नहीं जानती कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये उनके पूर्वजों ने क्या कुर्बानियां दीं, क्या यातनायें भोगीं ? स्वतन्त्रता के लिए लड़ी गई लड़ाई तथा उसकी बुनियादी विशेषताओं का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से आकलन कर, भारतीय इतिहास की पुनर्रचना के लिए योजनाबद्ध अध्ययन करने की आवश्यकता को ध्यान में रख कर विश्वविद्यालय ने अपनी छठी योजना में लाजपतराय अनुसंधान पीठ प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव अनुदान आयोग के समक्ष रखा। विजिटिंग कमेटी के सदस्यों ने इस प्रस्ताव का हार्दिक अनुमोदन किया है। मुझे विश्वास है कि भारत की स्वतन्त्रता एवं पुनर्जागरण के इतिहास की नवसंरचना में यह पीठ अप्रतिम योगदान करेगी।

विश्वविद्यालयीय संकायों के विद्यार्थियों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की विशेष उपलब्धियों से परिचित कराने के लिए भारतीय विश्वविद्यालयों के विद्वानों के व्याख्यानों का आयोजन किया गया। मगध विश्वविद्यालय, गया के इतिहास के प्रोफेसर डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, जवाहर लाल नेहरू वि० वि० के सेन्ट्रल एशिया स्टेडीज के अध्यक्ष डॉ० रामराहुल, दिल्ली वि० वि० के मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ० एच० सी० गांगुली, रांची विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉ० आर० एस० श्रीवास्तव तथा मुजफ्फरनगर के प्रोफेसर डॉ०विश्वनाथ मिश्र ने विजिटिंग फैलो के रूप में आकर व्याख्यान दिए। इनके आगमन से वि० वि० की सार्थकता बढ़ी है।

प्राध्यापकों की नियुक्तियों के निमित्त विषय-विशेषज्ञ के रूप में जगन्नाथ वि० वि०, पुरी के कुलपति डॉ० सत्यव्रत शास्त्री, वर्दवान वि० वि० के कुलपति प्रो० रमारंजन मुखर्जी, गुजरात विद्यापीठ के कुलपति डा० रामलाल पारिख तथा कश्मीर वि० वि० के कुलपति श्री वहीद मलिक यहाँ पधारे। उन्होंने वि० वि० की प्रगति को देखकर हार्दिक सन्तोष व्यक्त किया।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के श्री के० एन० सिंह, कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा लाओस, वियतनाम और कम्पूचिया के मान्य राजदूत भी इस वर्ष गुरुकुल पधारे और यहां की प्राचीन गुरु-शिष्य प्रधान प्रणाली को देखकर अभिभूत हो गये।

भारत की भावात्मक एकता की पुष्टि तथा नवनिर्माण की अद्यतन जानकारी के लिए जहां, यहां के विद्यार्थी बम्बई, कन्याकुमारी, रामेश्वरम्, मद्रास, अजमेर, जयपुर, आगरा तथा मथुरा की सरस्वती यात्रा पर गये, वहां अन्तर्विश्वविद्यालय खेल परिषद् की सदस्यता प्राप्त कर हमारे विद्यार्थी खेल-कूद के क्षेत्र में भी उतरे। इस वर्ष अलीगढ़ वि०वि० में आयोजित अन्तर्विश्वविद्यालयीय हाकी प्रतियोगिता में हमारे छात्रों का उल्लेखनोय प्रदर्शन रहा।

विद्यार्थियों की शारीरिक क्षमता की वृद्धि के लिए जिमनेजियम की व्यवस्था को भी सुधारा गया, यद्यपि इस क्षेत्र में बहुत कुछ करना शेष है। इसका उद्घाटन श्री टी० एन० चतुर्वेदी तत्कालीन शिक्षा सचिव, भारत सरकार ने किया।

विश्वविद्यालय के छात्रों को परिसर में ही उचित व्यवसाय मार्ग निर्देशन तथा व्यवसाय जगत् की पूरी जानकारी देने के लिए एक विश्वविद्यालय सेवा योजना एवं मंत्रणा-केन्द्र की स्थापना की गई है, जो व्यवसायोन्मुख शिक्षा के व्यवहारीकरण में यह एक ठोस कदम है और इस दिशा में इस अंचल के छात्रों को आगे बढ़ने का पूर्ण अवसर मिल सकेगा। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदत्त इस योजना के लिए हम हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

शिष्ट परिषद् तथा कार्यपरिषद् में शिक्षा मंत्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आगामी तीन वर्षों के लिए मनोनीत सदस्यों डा० एल० पी० सिन्हा, कुलपति हिमाचल विश्वविद्यालय, डा० एम० आराम, कुलपति, गांधी रुरल इन्स्टीट्यूट मदुराई, जस्टिस श्री आई० डी० दुआ, श्री गुरुबख्श सिंह, उप-सचिव, शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार, डा० रामलाल पारीख, कुलपति, गुजरात विद्यापीठ, तथा श्री आर० एस० चितकारा का मैं इस अवसर पर हार्दिक स्वागत करना चाहूंगा। ये अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं और इनके दीर्घ अनुभवों से हमें भरपूर लाभ मिलेगा।

यदि इस अवसर पर मैं कन्या गुरुकुल की उपलब्धियों का जिक्र न करूं तो बात अधूरी ही रहेगी। यहां की आचार्या बहन दमयन्ती कपूर कन्याओं को वेद, वेदांग, व्याकरण, संस्कृत तथा गृह-कलाओं में पारंगत बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। कन्याओं को अतीत के राष्ट्रीय आदर्शों से प्रेरणा लेकर जीवन संग्राम में विवेक तथा उत्साहपूर्वक चल पड़ने के लिए तैयार करना ही इस संस्था का लक्ष्य है। कन्या गुरुकुल की स्नातिकाओं में ललित कला, उद्योग तथा शिक्षा के क्षेत्र में

नये आयाम स्थापित किये हैं। यहां की छात्रायें चरखा कताई, काव्य तथा वाद-विवाद-प्रतियोगिता, खेल, विज्ञान-प्रतियोगिता तथा गृह-विज्ञान प्रदर्शनी में प्रथम रहती हैं। खेलों में प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर यहां की छात्राओं का चयन हुआ है।

निर्माण कार्यों की शृंखला में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त धनराशि से ८ प्रोफेसर-क्वाटर्स का निर्माण सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा किया जा रहा है। इसका शिलान्यास १ फरवरी १९८४ को कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी के सान्निध्य में हमारे परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने किया।

विश्वविद्यालय विभाग गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली की जीती जागती प्रयोगशाला है। ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर नित्य-क्रिया से निवृत होकर श्री ईश्वर भारद्वाज के नेतृत्व में ब्रह्मचारी वेदमन्त्रों का सस्वर पाठ तथा योगाभ्यास करते हैं। वरिष्ठ ब्रह्मचारियों को प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी द्वारा प्रतिदिन एक वेद-मन्त्र अर्थ सहित कंठस्थ कराया जाता है। ब्रह्मचारियों की नियत वेश-भूषा, भोजन-व्यवस्था तथा आवासीय व्यवस्था में इस वर्ष विशेष सुधार हुआ है। पण्डित सत्यकाम जी के सुदक्ष आचार्यत्व में ब्रह्मचारियों का दल अपने कार्य में निरन्तर अग्रणी होता चलेगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

मैं एक बार पुनः गुरुकुल की गत वर्ष की उपलब्धियों के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार, आकाशवाणी नजीबाबाद, विश्वविद्यालय की शिष्टपरिषद्, कार्यपरिषद् तथा शिक्षा पटल के मान्य सदस्यगण के प्रति आभार प्रकट करना चाहूँगा, जिन्होंने समय-समय पर हमें अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया तथा हमारा मार्ग प्रदर्शन किया। इसके साथ ही मैं स्थानीय प्रशासन को भी धन्यवाद देना चाहूँगा, जिन्होंने इस दौरान परिसर में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

मैं इस अवसर पर अपने अध्यापकों, कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों को भी साधुवाद देना चाहूँगा, जिन्होंने मेहनत और लगन से ये सब उपलब्धियां प्राप्त कीं।

मान्यवर स्वामी जी!

इस वर्ष पी-एच० डी० की १, एम० ए० की ६२, एम०एस० सी० की ४२, बी० एस० सी० की ३२ तथा अलंकार की १७ उपाधियां प्रदान की गई हैं।

अब आपसे निवेदन है कि नव-स्नातकों को आशीर्वाद देने की कृपा करें।

□

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर आर्य जगत् के उद्भट विद्वान् स्वामी श्री सत्य प्रकाश जी सरस्वती का नवस्नातकों को–

दीक्षान्त भाषण–

नव दीक्षिन्त सौम्य युवास्नातक वृन्द !

आपके गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, कुलपति एवं अधिकारियों ने मुझे दीक्षान्त भाषण देने के लिए स्नेह पूर्वक आमंत्रित किया है, इसके लिये मैं आभारी हूं। मैं भी एक विश्वविद्यालय का अन्तेवासी रहा और उसी में १९२५, १९२७ और १९३२ में मैंने तीन उपाधियां पायीं और तीन दीक्षान्त भाषण सुने। मैं भारत की पराधीनता के युग का स्नातक हूं। मेरे समय में देश में इतने विश्व विद्यालय नहीं थे, जितने आज हैं। मेरा विश्वविद्यालय १८८८ के लगभग (१८५७ की क्रांति के ३१ वर्ष बाद) स्थापित हुआ था। १८५८ में पहली श्रृंखला के तीन विश्वविद्यालय स्थापित हुए–कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के। लगभग ३० वर्ष बाद दो और बने–प्रयाग और लाहौर के। आज बिश्वविद्यालय स्तरीय उपाधि देने वाली संस्थायें १०० से ऊपर हैं। आपका विद्यालय २ अन्तेवासियों और एक आचार्य से प्रारम्भ हुआ–हरिश्चन्द्र, इन्द्र और मुंशीराम। मुझे उन दिनों की याद है जब हरिश्चन्द्र और इन्द्र स्नातक हुए थे। मैं नहीं जानता कि उस समय १९१२ के प्रथम दीक्षान्त भाषण में क्या कहा गया था। आपका गुरुकुल देश का गौरव था और आर्य जगत् को उस पर अभिमान था। कहा जाता है कि २ मार्च १९०१ को हरिद्वार में एक विद्यालय का शुभारम्भ हुआ–जिसमें ९ आचार्य और विद्यार्थी थे। हरिश्चन्द्र की आयु १३ वर्ष की रही होगी और इन्द्र कुछ और छोटे थे। महर्षि दयानन्द की मृत्यु के दो वर्ष बाद १८८५ में आर्यजगत् ने महर्षि की स्मृति में दयानन्द स्कूलों की श्रृंखला प्रारम्भ की जिनकी शती धूमधाम से मनाने की तैयारियां प्रारम्भ हो गयी हैं। हंसराज और मुन्शीराम–ये दो व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में देश के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। इन दोनों संस्थाओं के प्रारम्भिक युग में पार्थक्य अधिक था। मुन्शीराम जी का गुरुकुल राष्ट्रीय था और हंसराज जी द्वारा प्रेरित दयानन्द विद्यालय भारत की पराधीनता के प्रतीक थे और सरकारी स्कूलों के सामञ्जस्य में थे।१९४७की स्वतन्त्रता के बाद आज सभी विद्यालय और विश्वविद्यालय राष्ट्रीय और राष्ट्र के गौरव हैं। विद्यालयों के दो ही उद्देश्य हैं–पूर्वार्जित ज्ञान का संरक्षण, और नवीन ज्ञान अर्जन। इसे ही वैदिक परिभाषा में क्रमशः क्षेम और योग कहेंगे। गुरुकुलों से भी हमें यही आशा का है और नवीन पद्धति के विश्वविद्यालयों से भी। पुराने ऋषियों ने परम्परा से ज्ञान के विभिन्न

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती दीक्षान्त भाषण देते हुए ।

क्षेत्रों में हमें जो सामग्री दी, वह भी सुरक्षित रहे और साथ ही साथ अपने स्नातकों से हम यह भी पूछने का अधिकार रखते हैं कि इस ज्ञान सागर में उन्होंने नया क्या दिया। हमारे पुराने ऋषियों ने अपने अपने क्षेत्र में पुराना भी सुरक्षित रखा और नया भी दिया था। गौतम, कपिल, कणाद, यास्क और पाणिनि के ग्रन्थ देखिये, सबने अपने पूर्वजों के ज्ञान को आगे की पीढ़ियों तक बढ़ाया भी और अपना नया भी दिया। मानव योनि की यह विशेषता हैं। पशुओं का ज्ञान श्रुति है, न शास्त्र। मनुष्य से ही यह अपेक्षा की जाती है, कि पुराना भी पढ़े, और आगे उसमें कुछ वृद्धि भी करे, गुरुकुल के नवीन स्नातकों से भी मैं यह कहूंगा। आपके ऊपर ऋषि-ऋण है। आपका पढ़ा हुआ और आपके आचार्यों का पढ़ाया गया तभी तेजस्वी होगा, जब हम यह कह सकेंगे, कि आपने अपने अध्ययन के फलस्वरूप ज्ञान-भण्डार का और पुराने वाङ्मय को, पूर्व बिचार धारा को, कला को, शिल्प को, कौशल को, जनजीवन के प्रवाह को भी कुछ नया दिया है। नवीनता के पर्यावरण में प्राचीनता भी गौरवान्वित होती है और इसी प्रसंग में ऋग्वेद प्रारम्भ में ही **पूर्वेभिः** और **नूतनैः ऋषिभिः**— दोनों प्रकार के ऋषियों की कल्पना की है। ऋषि दयानन्द की परिभाषा में पहले समय के विद्वानों को पूर्व-ऋषि और आप जैसे नवीन अध्येता ब्रह्मचारी और विद्वानों को जो नवीन तर्कों के विशेषज्ञ हों, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्रों में नये मार्ग प्रशस्त करने का संकल्प किया हो, वेद प्रतिपादित नूतनऋषि कहा गया है। पूर्व ऋषियों के प्रति समादर की भावना रखना, और नूतन-ऋषियों की बातों को निष्ठा पूर्वक सुनना तथा मानना इस प्रकार की भावना जिस समाज में जाग्रत रहती है, वह समाज उन्नति की ओर अग्रसर रहता है, अन्यथा समाज में रुढ़िवादिता व्याप्त होने लगती है। आप सब स्नातक नूतन-ऋषि हैं और इसलिए मेरे जैसे वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा आप नवस्नातकों का स्वागत, अभिनन्दन और विनम्र अभिवादन।

विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में मेरी दृष्टि में यह अन्तर है कि हम विश्वविद्यालय के प्राचार्यों और विद्यार्थियों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे शास्त्र का विकास करेंगे; किन्तु महाविद्यालय के विद्यार्थी और आचार्यों का कर्तव्य है, कि वे पढ़कर पूर्वाजित ज्ञान को जीवित रखेंगे और आगे आने वाली पीढ़ियों को यह ज्ञान सौंप देंगे। आज जो स्नातक शिक्षित होने के अनन्तर दीक्षित हो रहे हैं, उनसे मैं यही कहूँगा, कि जो कुछ आपने गुरुओं के समीप रहकर सीखा है, उसको समाज में जीवित रखें और मुझे आशा है कि आप में से कुछ स्नातक उस शास्त्रीय ज्ञान को प्रशस्त करने में भी उद्यत रहेंगे। मैं पुरानी यज्ञशाला को ज्ञान-विज्ञान के विकास की वेधशालाएं, अनुसंधान शालाएं और प्रयोगशालाएं मानता हूँ। उन्हीं यज्ञशालाओं में बैठकर प्राचीन ऋषियों ने वेदांग, उपांग और उपवेदों का विकास किया था। महर्षि दयानन्द ने यज्ञ की जो परिभाषा अपने ग्रन्थों में की है, वह आज के स्नातकों को सर्वदा याद रखनी चाहिये। महर्षि यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार करते हैं—

'यज्ञ' उसे कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या, उसके उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र, जिनसे वायु, वृष्टि, जल, औषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम मानता हूँ। आर्य समाज के विद्वानों ने स्वामी दयानन्द की इस परिभाषा की सर्वदा उपेक्षा की है। आज गायत्री यज्ञ, पारायण यज्ञ, शांति यज्ञ, हमारे विद्वानों को सद् उद्देश्यों से बहुत दूर विचलित कर रहे हैं। हिन्दू वातावरण में और महर्षि दयानन्द द्वारा अनुप्राणित वातावरण में यही तो अन्तर है। हमने यज्ञ को रूढ़ि अर्थों में लेना आरम्भ किया है। जो लोग वैज्ञानिक प्रयोग शालाओं में, शिल्प में, कारखानों में, अनुसन्धान-शालाओं में और चिकित्सा संस्थानों में कार्य कर रहे हैं, हमने उन्हें याज्ञिक समझा ही नहीं। आपके गुरुकुल में तो कम से कम यज्ञ की वास्तविकता परिभाषा का स्वरूप निखारना चाहिए, प्रसन्नता की बात है, कि आपकी गुरुकुल भूमि से कुछ ही दूरी पर रानीपुर में भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स का विशाल उद्योग है, ऋषिकेश में भी उपयोगी कार्य हो रहा है। यह सब यज्ञ हैं। क्या आपने इन यज्ञों के ऋत्विजों का आह्वान, आदर सत्कार किया ? आप अपने स्नातकों को इन यज्ञों के प्रति निष्ठावान् बनाएं। नहीं तो आपकी यज्ञों के प्रति श्रद्धा हिन्दुओं की कोटि की अन्धश्रद्धा ही कहलावेगी (वस्तुतः श्रद्धा शब्द का जो यौगिक अर्थ है, उनके साथ अन्ध शब्द का प्रयोग हो ही नहीं सकता)। अभी अजमेर में जो महर्षि निर्वाण शताब्दी मनाई थी, उसमें हमने पहली बार महर्षि द्वारा प्रतिपादित यज्ञ की परिभाषा चरितार्थ की–देश के ८–९ वैज्ञानिकों को और कतिपय अन्य विशेषज्ञों को स्वर्ण पदक से सम्मानित किया था, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्रों में कार्य करके भारत को गौरवान्वित किया है। वह समारोह ऋषि से शब्दों में यज्ञ था। यजुर्वेद के अध्याय १८ में प्रथम सत्ताइस मंत्र ऐसे हैं, जिनके अन्त में 'यज्ञेन कल्पताम्' ये दो शब्द बराबर प्रयुक्त हुए हैं। इन दोनों को भाष्य करते समय महर्षि दयानन्द ने लगभग प्रत्येक मंत्र का अर्थ अलग अलग किया है। मैं आज के स्नातकों से कहूँगा कि इस पुण्य–स्थली में यज्ञ द्वारा तुम सबने विद्या प्राप्त की है। आप अपना आगे का जीवन भी यज्ञ द्वारा निर्मित करें। आपका समस्त जीवन यज्ञमय हो। देवहित आपकी आयु अर्पित हो, आपके यज्ञ भी यज्ञ पर आधारित हों—आयुर्यज्ञेन कल्पताम्, यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। आप याज्ञिक बनें। किन्तु जब मैं ऐसा उद्बोधन आपको दे रहा हूँ, तो मेरा अभिप्राय यह नहीं है, आप प्रातः से सायं तक काष्ठाग्नि पर स्वाहोच्चार के साथ हव्य द्रव्य की आहुति डालते या डलवाते रहें। स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के अष्टादश अध्याय के मन्त्रों में यज्ञेन शब्द का प्रसंगानुसार अलग अलग अभिप्राय लिया है। मैं कुछ उदाहरण दूंगा। आप में से कइयों ने आचार्य के चरणों में बैठकर शायद यजुर्वेद पढ़ा हो।

१– पृथिवी, नक्षत्र, द्यौ, दिशा के प्रसंग में–यज्ञेन पृथिवीकाल-विज्ञापकेन (१८)

२– अंशु, उपांशु, मैत्रावरुण, मन्थी, आदि के प्रसंग में-यज्ञेन अग्निपदार्थोपयोगेन (१९)
३– स्रुच, कलश, ग्रावाण, वेदि, बर्हि आदि के सम्बन्ध में-यज्ञेन हवनादिना (२१)
४– अग्नि, धर्म, अंक, सूर्य के प्रसंग में–यज्ञेन संगतिकरण योग्येन परमात्मना (२२)
५– एक, तीन, पांच आदि संख्याओं के प्रसंग में यज्ञेन संगतिकरणेन योगेन दानेन वियोगेन वा, अर्थात् जोड़, गुणाव, घटाना, भाग देना आदि अंकगणित द्वारा (१४)

६– त्र्यवि, दित्यवाट्, त्रिवत्स आदि गाय, भेड़, बकरी आदि के प्रसंग में - यज्ञेन पशुपालन–विधिना (२६), और इसी प्रकार षष्ठवाट्, षष्ठौही, उक्षा आदि के प्रसंग में–यज्ञेन पशु शिक्षाख्येन (२७)

७– व्रीहि, यव, माष, तिल, गोधूम आदि के प्रसंग में–यज्ञेन सर्वान्नप्रदेन परमात्मना (१२)
८– अश्मा, मृत्तिका, हिरण्य, लोह,सीस,त्रपु आदि के प्रसंग में– यज्ञेन संगतिकरणयोग्येन (१३)

स्वामी दयानन्द जब यज्ञ का अर्थ संगतिकरण करते हैं तो उनका अभिप्राय रसायन विद्या, धातु विद्या, शिल्प, भौतिकी आदि से होता है ।

आर्य जगत में स्वतन्त्रता के बाद सुन्दर यज्ञशालाओं के भवन तैयार करने की परिकल्पना उठी, तो हमने देश-देशान्तर में भव्य और रमणीक यज्ञ शालाएं बना डाली–मन्दिर, मस्जिद और गिरजे भी बहुत बने, परन्तु आर्य समाज की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द के अभिप्राय की एक भी यज्ञशाला नहीं बनी । किन्तु भारत राष्ट्र तो इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था । आज हमारा आर्यसमाज कुछ गिर कर हिन्दु बनता जा रहा है; किन्तु यह अच्छा हुआ कि भारत राष्ट्र न तो हिन्दू राष्ट्र बना, न मुस्लिम राष्ट्र । हमारा राष्ट्र अभी तक आर्य (भारतीय) राष्ट्र बना हुआ है । आज हमारे देश में १०० के लगभग विभिन्न कार्यों की राष्ट्रीय प्रयोगशालायें हैं । सैकड़ों कारखाने हैं, चिकित्सा, कृषि, शिल्प और विज्ञान को प्रोत्साहन देने वाली यज्ञशालायें हैं । इन पर हमें गर्व है । ये संस्थान और संस्थायें राष्ट्रीय यज्ञस्थली हैं । किन्तु रुढ़िग्रस्त हिन्दुत्ववादी आर्य समाज आज भी इन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है ।

मैं अपने आज के स्नातकों से आग्रह पूर्वक संकेत करूंगा कि आपकी शिक्षा–दीक्षा आर्य जगत् के सर्वश्रेष्ठ शिक्षा–संस्थान में हुई है । इसके लिए आपको बधाई है । आपके कुलपति और कुलाधिपति और अधिकारियों से भी कहूँगा, कि आप अपने अन्तेवासियों को दयानन्द के सपनों को पूरा करने की प्रेरणा दें । इन्हें राष्ट्रवादी बनाएं । ये राष्ट्रीय संस्थानों में यशस्वी स्थान प्राप्त करें ।

इस संबंध में एक घटना का उल्लेख करूं । कई वर्षों की बात है, मैं गृहस्थी था । अपनी पत्नी के साथ स्पेन के प्रसिद्ध नगर बार्सिलोना गया वहां मरियम के नाम पर एक गिरजाघर कई दशकों से

बन रहा है। आयोजकों की कल्पना है कि वह संसार का सबसे ऊंचा गिरजाघर होगा। अभी केवल आगे की ऊंची दीवार तैयार हुई है। गिरजे के जिस श्रद्धालु पादरी ने मुझे गिरजा घर घुमाकर दिखाया, उसने वेदना भरे भावुक शब्दों में कहा—आज लोग यूनिवर्सिटियों को तो धन देते हैं, किन्तु भगवान् के नाम पर बनने वाले गिरजों के लिये नहीं। यही तो ईसाईयत है, मुसलमान भी ऐसा ही समझता है, अधोगति प्राप्त हिन्दु की भी यही मनोवृति है और आर्यसमाज का व्यक्ति भी इसी मनोवृति में साथ दे रहा है। यह सम्प्रदाय वादिता है आर्य समाज को इसी से बचाना है। स्वामी दयानन्द इसी मनोवृति से हमें बचाना चाहते थे। वैदिक धर्म यथार्थ जीवन का है, यज्ञमय जीवन का निर्माण वेद की शिक्षा है। उन्नीसवें शतक में वेद के परमोद्धारक ऋषि दयानन्द एकमात्र ऐसे धर्माचार्य थे जिन्होंने यूरोप में विकसित ज्ञान विज्ञान एवं नये शिल्प का स्वागत किया। आज का यूरोपीय या अमरीकी विद्वान् बाइबिल की दुहाई नहीं देता। उसका ज्ञान-विज्ञान मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए है। ईसाइयों ने वैज्ञानिकों का विरोध किया, मुसलमानों ने भी विरोध किया। पौराणिक हठाग्राहियों ने भी विरोध किया। हममें से भी कुछ रूढिवादी हिन्दू आर्य समाजियों ने भौतिकतावाद की गन्ध विज्ञान और शिल्प में पायी, पर विज्ञान के चरण आगे बढ़ते गये। वेद, वेदाँग, उपवेद सबको मिलाकर वर्तमान नाम विज्ञान है। विज्ञान ही मानव मात्र का समान धर्म है। विज्ञान प्रतिपादित–अपौरुषेयत्व में निष्ठा रखना ही सच्ची आस्तिकता है और इसी अपौरुषेयत्व के प्रति नतमस्तक होना मनुष्य का सहज स्वाभाविक धर्म है। अपौरुषेय सृष्टि में विराट् पुरुष का दर्शन करना और इस पुरुष के साक्षात्कार से व्यक्ति और समाज को शाश्वत नैतिकतत्त्व की ओर अग्रसर करना मनुष्य का स्वाभाविक सहज धर्म है। हम अपने विगत मध्यकालीन इतिहास में हिन्दू गणित, ग्रीक ज्योतिष, अरब की रसायन-इन संकुचित भावनाओं के शब्दों का प्रयोग करते थे; किन्तु आज मानव मात्र का एक गणित है, एक रसायन है, एक शिल्प शास्त्र है। ऋषि दयानन्द ने इसी प्रकार की एक कल्पना तथाकथित धर्म के क्षेत्र में की थी। वे समस्त मानव को एक धर्म मंच पर, एक आस्तिकता पर और एक नैतिकता पर लाना चाहते थे। आपके गुरुकुल के स्नातकों से भी इस दिशा में कार्य करने की पूरी आशा हमें थी। हम कभी-कभी आपको ही लक्ष्य करके आवेश में खुशियों के साथ गाया करते थे कि गुरुकुल का ब्रह्मचारी अरब देश में वेद-घोष ले जावेगा, भारत से दूर वेद का प्रचार करेगा। इस सब का एक अर्थ था कि राष्ट्र या देश की, जातपांत की, सम्प्रदायों की सीमायें लांघ कर एक मानवता को हमारा स्नातक प्रश्रय देगा, सभी देशों के अन्धविश्वासों और अज्ञानों को दूर करेगा।

हम २२-२४ वर्ष के वसु ब्रह्मचारी से बहुत आशा नहीं करते। आप सब स्नातक जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। आप वैवाहिक गृहस्थ जीवन में रुद्र और आदित्य ब्रह्मचारी बनने की चेष्टा करें। ज्ञान के विस्तारक का नाम ब्रह्मचारी है। ब्रह्म और वेद शब्द समानार्थक हैं। सृष्टि ज्ञान का

नाम ही विद्या है । इसके दो भेद हैं—परा और अपरा । मूर्त सम्बन्धी ज्ञान सृष्टि का नाम अपराविद्या है। अपराविद्या ईश्वर में निष्ठा उत्पन्न करती है, किन्तु पराविद्या सृष्टि से हमें ऊपर उठाकर सृष्टि रचयिता तक ले जाती है । अमूर्त सृष्टि का ज्ञान पराविद्या है। इस पराविद्या के पांच अध्याय हैं। पांचों के विषय अमूर्त हैं—पहले अध्ययन का विषय इन्द्रियाँ हैं, दूसरे का प्राण, तीसरे का मानस क्षेत्र या अन्तःकरण, चौथे का जीवात्मा और पांचवें का विराट् पुरुष या ब्रह्म । ये पराविद्या अध्ययन के शीर्षक हैं। उपनिषदों में इसी विद्या का उल्लेख है । ये पांचों तत्त्व निराकार हैं। भौतिक या रसायन शास्त्र के क्षेत्र से बाहर इनका क्षेत्र है । इन क्षेत्रों में न्यूटन का सिद्धान्त नहीं लगेगा, न आइन्स्टीइन का । इनका विषय काल्पनिक नहीं है, यथार्थ है । इन पांच की सहायता के बिना कोई ज्ञान अर्जित नहीं हो सकता। इनके तत्त्व दर्शन के प्रति कोई उपेक्षा की भावना नहीं रख सकता । वेद का अध्ययन इस दिशा में भी आपका मार्ग प्रशस्त करेगा । आप अपनी ज्ञानपिपासा को बढ़ाते जायें । आपका गृहस्थ धर्म इस जीवन में बाधा नहीं डालेगा । ऋषियों की भी पत्नियां थीं । ऋषि स्वयं भी ऋषि थे और उनमें से कतिपय की सन्तानें भी ऋषि थीं । कुछ ऋषि-पत्नी भी थी, और ऋषिकायें भी थीं । सर विलियम ब्रैग नोबुल पुरस्कार विजेता हुए और उसका पुत्र ब्रैग (जूनियर) भी साथ ही साथ इस पुरस्कार में उसका साझी हुआ । सर जे० जे० थॉमसन ने नोबुल पुरस्कार पाया और उसके पुत्र जी० पी० थॉमसन ने भी । मेडम क्यूरी ने अपने पति पीरे क्यूरी के साथ भौतिकी के क्षेत्र में नोबुल पुरस्कार पाया और दुबारा उसकी पत्नी क्यूरी ने रसायन के क्षेत्र में यही पुरस्कार पाया। क्यूरी-परिवार की पुत्री आइरीन क्यूरी और उसके दामाद जोलियों ने भी साथ-साथ नोबुल पुरस्कार पाया । इस अर्थ में मैं आपसे कह रहा हूँ कि गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होकर भी आप ऋषित्व प्राप्त कर सकते हैं । आज आप वसु हैं । मेरी आकांक्षा है कि आपका ब्रह्मचर्य, आपका वेद प्रेम आगे भी बढ़े, जीवन भर आपका वेदाध्ययन बना रहे, गृहस्थ रहकर भी आप रुद्र ब्रह्मचारी बनें तथा आपका पढ़ा-लिखा तेजोवान् बने । अभी तो आपने ज्ञान का 'अ, इ, उ, ण्' सीखा है, श ष स र, हल् तक पहुँचते पहुँचते कई जीवन लगेंगे । ज्ञान की कोई सीमा नहीं । परमात्मा की थाह नहीं, परमात्मा की रची सृष्टि की भी थाह नहीं । परमात्मा अज्ञेय है और उसकी रचना का प्रत्येक कण भी अज्ञेय है । अज्ञेय से अज्ञेय को समझने की पात्रता केवल ज्ञानियों में है । अज्ञानी अपने तुच्छ ज्ञान में ही अपनी सर्वज्ञता समझता है । आदित्य ब्रह्मचारी ही यह जानता है कि जो कुछ उसने जाना, वह कितना कम है, शून्य के बराबर । केनोपनिषद् का ऋषि, सुकरात ऐसा तत्त्ववेत्ता, न्यूटन ऐसा वैज्ञानिक ही इस सत्य के आस्वादन का अधिकारी था ।

आप सम्भवतया समझते हों, कि गुरुकुल या आचार्य—कुल की परम्परा आपकी ही संस्था में है । उपनिषदों में गुरु-शिष्यपरम्परा की कतिपय नामावलियां हैं । सुकरात, प्लेटो और अस्तूर की

परम्परा प्रसिद्ध है। विज्ञान के क्षेत्र में, यूरोप के विश्वविद्यालयों में विज्ञान के क्षेत्र में यह परम्परा तीन सौ वर्षों की है। हममें प्रत्येक व्यक्ति जिसने विज्ञान के क्षेत्र में कुछ भी यशस्वी काम किया है, अपने गुरु के नाम पर गौरवान्वित होता है। मेरे गुरु अभी जीवित हैं, ९३ वर्ष की आयु के। मैं और मेरे गुरु भाई आज तक भी (८० वर्ष की आयु में भी) उनकी आंख से आंख मिलाकर बातचीत करने की उद्दण्डता नहीं करते उनके भी गुरु थे, उनके समय में गुरु की भी यही स्थिति थी। मैं अपनी वंशा वली बनाऊं तो ७००-६०० वर्ष पहले के जगत्–प्रसिद्ध जर्मन रसायन से अपना नाता जोड़ सकता हूं। पर यह गुरु-शिष्य सम्बन्ध प्रथम स्नातक उपाधि के समय स्थापित नहीं होता। जिस गुरु ने अनुसंधान और उच्च अध्ययन के क्षेत्र में हाथ पकड कर कुछ सिखाया, वह अन्तिम गुरु हमारा गुरु है। मेरा एक गुरु और अनेक शिष्य। मेरे एक माता पिता उनके पुत्र। गुरु और शिष्य में इतना गहरा सम्बन्ध इन गुरुकुलों में हुआ है, कि गुरु अपने शिष्य को न केवल अपने ज्ञान क्षेत्र में आलोक देता है वह उसके मानों परे जीवन का उत्तर दायित्व लेता है कहां नौकरी लगे, कहां आगे के कार्य के लिए सुविधायें प्राप्त हों और कभी-कभी कहां शादी विवाह हो, इन सबकी उसे चिन्ता है। मालूम नहीं कि आपके गुरुकुल में यह परम्परा कहां तक स्थापित हुई है पहले गुरु के गौरव से शिष्य गौरवान्वित होता है और बाद को शिष्य के गौरव से गुरु भी अपने को यशस्वी समझता है। कभी किसी बात में गुरु की अपकीर्ति हुई, तो शिष्य को उस अपकीर्ति का परिणाम भी भोगना पड़ता है।

विगत ८० वर्षों में आपके गुरुकुल ने शिक्षा और आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के संबंध में अच्छी सेवा की थी, आपके अनेक स्नातकों के विद्यानुराग से हम सभी परिचित हैं। हिन्दी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में इन-स्नातकों ने अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की। दिल्ली नगरी में १००, २०० आप के स्नातक अच्छा काम कर रहे हैं। किसी एक का नाम नहीं लेना चाहता। देश देशान्तर में मिशनरी का काम भी इन्होंने अच्छा किया। आज के स्नातकों को अपने इन बड़े गुरु भाइयों के चरणों पर चलने का हौंसला बढ़ाना चाहिए। नौकरियां हम बड़े-बड़े विश्वविद्यालय–स्नातकों को भी नहीं दे पाते, पुनः आपको भी हम आश्वास्न नहीं कर सकते। जब कभी मैं आपके गुरुकुल के पुराने स्नातकों के सम्पर्क में आया हूँ। उनमें एक विशेषता पायी है, वह है आत्मविश्वास की। यह आत्मविश्वास उन्हें नित्य नूतन संघर्षों के लिये साहस और सामर्थ्य देता है आपके स्नातक यशस्वी हुए हैं और पी.एच.डी. एम.ए. आचार्य या शास्त्री की उपाधियाँ ले लेने में इन्हें कोई कठिनाई मालूम नहीं होती। वाद प्रतिवाद प्रतियोगिता में मैं इन स्नातकों की कुशलता प्राय: विश्वविद्यालय में भी देख चुका हूं।

मैं न तो स्नातको को उपदेश देने का साहस करुंगा और न अधिकारियों को सुझाव। पर कुछ बातें अवश्य कहूँगा : तैत्तरीय उपनिषद् के उद्‌बोधन से उत्तम और उद्‌बोधन हो ही क्या सकता

है ? स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय वातावरण में सभी भारतीय विश्वविद्यालयों ने पूर्णतया या अंशतः इसे अपना लिया है। यह उद्‌बोधन किसी सम्प्रदाय की बपौती नहीं हैं। यह उस समय का है जब मानवता संकीर्ण सम्प्रदायों में बंटी थी न हिन्दू था न बौद्ध, न ईसाई और न मुसलमान।

आज युग विशेषज्ञता का है। आपके विश्वविद्यालय महाविद्यालय या गुरुकुल की कुछ विशेषता होनी ही चाहिये। प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने पाठ्यक्रम, पठन-पाठन पद्धति आदि विवरणों में स्वतन्त्र है (सीमा या बाधा केवल अर्थ तन्त्र की है, अनुदानों की है) आप पूर्ण स्वतन्त्रता पूर्वक अपने संस्थान की विशेषता का विकास करें। ऊंचे स्तर पर पहुँच कर कोई भी शिक्षा संस्थान सभी विषयों के अध्ययन का भार नहीं ले सकता। मेरा सुझाव है, कि अन्य संस्थानों का आप न तो अनुकरण करें और न उनसे प्रतियोगिता। आप अपने लिये सीमित क्षेत्र का वरण करें। स्मरण रक्खें कि विज्ञान विषयक शोध संस्थान आप नहीं चला सकते। आज यह क्षेत्र इतना व्ययसाध्य है कि इंग्लेंड, फ्रांस और जर्मनी के पुराने विश्वविद्यालय भी अपने को इस कार्य के लिए दरिद्र पा रहे हैं।

आप स्नातक कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने की आतुरता न दिखावें। आप अपनी पद्धति के गुरुकुलों से देश की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या के शिक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते।

आप अपने गुरुकुलों में ऐसे स्नातक तैयार करें, जो वैदिक वाङ्मय के ऊंचे विद्वान् हों। अष्टाध्यायी, निरुक्त, महाभाष्य के महाविद्वान् हों इन्हें आप भाषाशास्त्र के विद्वान् बनायें। इस क्षेत्र में काम करने के लिए तपस्या करनी पड़ेगी। एकाध आचार्य और दो चार शिष्य लेटिन, ग्रीक और प्राचीन भाषाओं के विशेषज्ञ बनें और भारत के इतिहास के मर्मज्ञ हों। चीन की पुरानी संस्कृति का ये अध्ययन करें और धीरे-धीरे इस क्षेत्र को विकसित करें। आपका संग्रहालय और पुस्तकालय इन सीमित क्षेत्रों में सम्पन्न हो।

आपके प्राच्य-विभागीय छात्रों को भी संसार की गति विधि से परिचय होना चाहिए। पाठ्यक्रम से बाहर इनके लिये कुछ विशेष व्याख्यानों का प्रबंध करना होगा। चुने हुए कुछ आचार्यों और कुछ शिष्यों को ऐसे कामों के लिए आपके अधिकारियों को प्रोत्साहन देना होगा।

आर्य समाज के प्रति भी आप के गुरुकुल का एक कर्त्तव्य है। मैं आपसे पुरोहित तैयार करने के लिए नहीं कहता। निष्ठावान् तपस्वी उच्चस्तरीय मिशनरी आपको तैयार करने होंगे। देश के अनेक प्राञ्चलों में आपके स्नातक काम करने का अवसर प्राप्त करें, आर्य समाज की संस्थायें इनका भरणपोषण कर निकटवर्ती एवं दूरस्थ देशों में इन्हें भेजें। ये सेवा-व्रती अपने कार्य के योग्य आपके

माध्यम से शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करें और फिर कार्यरत हों, तो आर्य जगत् को भी गुरुकुल पर भरोसा होगा।

बहुत दिनों से मेरी कल्पना रही है कि उच्चस्तरीय अनुसन्धान या शोधपत्रिका आर्यजगत् की भी होनी चाहिये। होशियारपुर से एक पत्रिका निकलती है। आपके गुरुकुल से वैदिक मैगजीन निकालता था, एक वैदिक पाथ निकलता है। ये पत्रिकायें आज की दृष्टि से स्तरीय या मानक नहीं हैं। यदि इन पत्रिकाओं का जीवन क्षणिक है, तो ये यशस्वी नहीं हो सकती। मैं स्वयं प्रयाग के विज्ञान परिषद् से विज्ञान शोध सम्बन्धी एक पत्रिका ('विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका') लगभग २७ वर्ष से निकाल रहा हूँ–यह हिन्दी भाषा की एक मात्र अधिकृत शोध पत्रिका है। यदि गुरुकुल को ऐसी पत्रिका निकालनी है। तो गुरुकुल के पास कम से कम ५ लाख रुपये की एक स्थायी निधि होनी चाहिये। इतनी धनराशि से पचास– साठ हजार रुपया वार्षिक ब्याज आवेगा। तब आश्वस्त होकर उसके ब्याज से त्रैमासिक उच्चस्तरीय पत्रिका निकाली जा सकेगी। आज अनेक विश्व–विद्यालयों ने दयानन्द पीठ की स्थापना की है। इनकी संख्या बढ़ती जायेगी। बिना स्तरीय शोध पत्रिका के इन पीठों का काम भी अधूरा रहेगा। क्या आर्यसमाज के क्षेत्र में गुरुकुलों में निष्ठा रखने वाले ५–१० धनी मानी ऐसे व्यक्ति नहीं मिल सकते जो इस काम के लिए एक–एक लाख रुपया दे दें ? शोध संस्थान खोलने की बात मैंने कलकत्ता में भी सुनी, बम्बई में भी दिल्ली में भी अजमेर में भी। शोध संस्थान का नाम तो लोगों ने सुना है, किन्तु शोध कार्य के लिये शोधकर्ता को जो शोध स्वतन्त्रता चाहिये, उसे कोई देने को तैयार नहीं है। हमारा समाज भी रूढ़ियों से बंधा हुआ है। शोधकर्ता अपने क्षेत्र में कल्पना की मुक्त उड़ान लेता है। दूसरों को भी उसकी प्रत्यालोचना करने का अधिकार है, पर विचारों के स्वातंत्र्य और उनके प्रकाशन में कोई बाधा नहीं डाल सकता। आपका गुरुकुल संस्थान इस कार्य को उदारता से प्रारम्भ करे तो बहुत अच्छा होगा। आप नहीं करेंगे तो कोई करेगा ही। सम्भवतया यूनिवर्सिटी वालों को करना पड़े। गुरुकुलों और यूनिवर्सिटियों में अब निकट का सम्पर्क बढ़ाना चाहिए।

स्वतन्त्रता के बाद हमारे सम्मुख विगत कई वर्षों से दुःखद कहानियाँ भी आयीं। उत्तर भारत में यह विषाक्तता तेजी से फैली। हमारी समस्त शिक्षा - संस्थायें इसके कलुषित प्रभाव से ग्रस्त हो गयीं। अभी यह प्रभाव मिटा नहीं है। विद्यार्थियों में यह विष ऐसा फैला कि उनके लिए अभि–शाप बन गया। इसमें सबसे अधिक हानि युवकों और छात्रों की हुई। ये संयम खो बैठे, दूसरों ने अपने स्वार्थ के लिए उन्हें मूर्ख बनाया। आज गुरुकुल भी उस प्रभाव से बच न पाया। मैं अनैतिक तत्त्वों की बात नहीं करना चाहता, जिन्होंने यह स्थिति पैदा कर दी गुरुकुल को प्रतिष्ठा की हानि हुई है, और विश्वविद्यालयों की भी।

१९४७ से पूर्व देश परतन्त्र था, उस परतन्त्रता में भी विश्वविद्यालयों को स्वतन्त्रता प्राप्त थी और उस समय का शासक उस स्वतन्त्रता का सम्मान करता था। देश स्वतन्त्र हो गया; किन्तु हमारी परतंत्रता बढ़ती गयी। आर्थिक स्वतन्त्रता आयी—राष्ट्रीयकरण हुआ, जिसका अर्थ था सरकारीकरण। सरकारीतंत्र की अस्थिरता ने देश में उच्छृंखलता पैदा की। उत्तरदायित्वों से शून्य अधिकारी की मांग बढ़ी और इसका अवश्यंभावी परिणाम युवकों को भोगना पड़ा। युवक आज की भयंकर परिस्थिति के जनक भी हैं और भोक्ता भी। ऐसे पर्यावरण में मैं गुरुकुलों के आदर्शों की बात ही नहीं करना चाहता।

नव स्नातकों को बहुत बहुत आशीर्वाद और शतशः बधाइयां आप और आपके गुरुकुल के गौरव में देश का गौरव है। मेरी समस्त शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। मैंने वही कार्य किया। उनकी एक एक ईंट पर मुझे गर्व है और प्यार है। पर जब आज उसकी धरती पर चलता हूँ, तो आंखों को नीचे किये हुए, सशंकित सा, जहां वर्षों से दीक्षान्त समारोह ही न हो पाया।

□ □ □
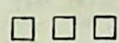
यज्ञाग्नि के दिग–दिगन्त हो, सुरभित व्याधि विपद भय क्षय हो।
वैदिक विचार धारानुकूल प्रिय जन-जन का परिपूर्ण हृदय हो॥
ओम पताका घर–घर फहरे ऋषिवर दयानन्द की जय हो।
सत्पथ प्रेरक अटल व्रत, आर्यों का ध्रुव सम दृढ़ निश्चय हो॥
निन्दक वेद पराजित हों, वैदिक धर्म की अविचल जय हो।
अज्ञाततम का नाश हो, तमसो मा ज्योतिर्गमय हो॥
रहो स्वस्थ सानन्द प्रसन्नचित, जिओ सुखी शत वर्ष अभय हो।
सब विधि यह नव वर्ष सभी को सुखद शांति मंगलमय हो॥

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
अधिष्ठाता–वेद प्रचार विभाग, दिल्ली
आर्य प्रतिनिधि सभा, १५–हनुमान रोड,
नई दिल्ली–११०००१

गुरुकुलों की समस्याओं का एक ही हल है

–डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले गुरुकुलों की बाढ़ सी आ गयी थी। जगह-जगह गुरुकुल खुल रहे थे। कोई राज्य ऐसा नहीं था जिसमें गुरुकुल नाम की कोई न कोई संस्था नहीं थी। महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री राजेन्द्र प्रसाद ये सब राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र अगर कहीं देखते थे, तो उनकी दृष्टि गुरुकुलों की तरफ जाती थी। नाम चाहे गुरुकुल हो, चाहे विद्यापीठ हो–सबका मतलब एक ही था–राष्ट्रीयता, भारतीयता, इस देश की संस्कृति में प्रेम। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह स्वाभाविक था कि इन संस्थाओं को सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त होती, क्योंकि देश के अन्धकार के युग में ये ही राष्ट्रीयता, भारतीयता तथा देश की संस्कृति को बनाये रखने वाले केन्द्र थे, जिन्होंने बिदेशी संस्कृति के इस देश की संस्कृति पर हो रहे आक्रमण का डटकर मुकाबला किया था।

स्वतन्त्रता आयी और सरकार ने १९६२ में गुरुकुल पद्धति के मूल स्रोत गुरुकुल कागड़ी को विश्वविद्यालय की मान्यता प्रदान की। यह मान्यता इस कारण नहीं दी गयी थी कि जहां गुरुकुल स्थापित था उसके आस-पास अंग्रेजी, गणित, फिलॉसफी, सोशियोलोजी आदि की उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाएं नहीं थीं। स्कूल-कॉलेज जगह-जगह शहर-शहर खुले हुए थे जहां प्रचलित शिक्षा पद्धति के अनुसार जो चाहता शिक्षा प्राप्त कर सकता था। गुरुकुल को विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता देने का लक्ष्य यह था कि जिन सिद्धान्तों को लेकर गुरुकुलों की स्थापना को हुई थी उन सिद्धान्तों को सुरक्षित रखा जाये। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के कुछ आधारभूत सिद्धान्त हैं। उदाहरणार्थ, ब्रह्मचर्य, तपस्या का सादा जीवन, गुरु-शिष्य का दिन-रात का सम्बन्ध, आश्रम-व्यवस्था, प्रातःकाल उठकर संध्या-हवन करना, संस्कृत तथा वैदिक संस्कृति का ज्ञान एवं उसे जीवन में उतारना, सह–शिक्षा का न होना, जन्म की जात-पांत को न मानना इत्यादि ये गुरुकुल शिक्षा पद्धति के आधारभूत सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों का यह अर्थ नहीं है कि गुरुकुल में पढ़े बालकों को वर्तमान विज्ञान से वंचित रखा जाये। जब गुरुकुल काँगड़ी अपने यौवन पर था तब यहां के विद्यार्थी उक्त सिद्धान्तों को जीवन में

घटाते हुए शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिकतम विज्ञान का पूर्ण ज्ञान रखते थे, साथ ही संस्कृत के भी पूर्ण पंडित होते थे। थोड़े शब्दों में कहा जाए तो कहा जा सकता है कि गुरुकुल के विद्यार्थी प्राचीन भारतीय संस्कृति में ओत-प्रोत होने के साथ-साथ पूर्व तथा पश्चिम के विज्ञान में भी निष्णात होते थे और इसी संमिश्रण को गुरुकुल शिक्षा पद्धति का नाम दिया गया था। १९६२ से जब गुरुकुल काँगड़ी को सरकार द्वारा विश्वविद्यालय की मान्यता तथा आर्थिक सहायता दी जाने लगी तब गुरुकुल का यही चित्र सरकार के सामने था, यही उसका स्वप्न था। यह मान्यता गुरुकुल विश्वविद्यालय को नहीं, परन्तु गुरुकुल कांगड़ी जैसा भी वह था उसे दी गयी थी।

दुर्भाग्यवश, अब स्थिति वह नहीं है। अब जो छात्र विश्वविद्यालय की कक्षाओं में पढ़ते हैं उन्हें गुरुकुल की परम्पराओं का न तो ज्ञान है, न उन परम्पराओं को जानने की उनमें उत्सुकता है। अब गुरुकुल के विद्यालय विभाग में तो वह परम्परा मौजूद है, परन्तु गुरुकुल विश्वविद्यालय विभाग में अपनी वह विशेषता नहीं रही जिसके कारण इस सस्था को विश्वविद्यालय की पदवी दी गई थी। ९-१० मार्च ८४ को युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन की एक विजिटिंग कमेटी गुरुकुल विश्वविद्यालय की कुछ आर्थिक योजनाओं का अध्ययन करने वहां गई थी। मैं भी उनके साथ गुरुकुल गया था। बातचीत के दौरान इस कमेटी के एक मुख्य सदस्य ने मुझे कहा कि सुना है वहां यज्ञशाला में कोई यज्ञ नहीं करता, वह सूनी पड़ी रहती है। मैंने उन्हें कहा कि असली गुरुकुल है, छोटे बच्चों का गुरुकुल, जिसमें बाल्यावस्था में बच्चे लिये जाते हैं, उसमें तो प्रातः सायं दोनों समय सन्ध्या हवन होता है। जब हम लोग गुरुकुल पहुँचे, रात को सोने के बाद उठने पर प्रातः चार बजे ब्रह्मचारी वेदों के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे और पांच बजे के लगभग शौचादि से निवृत्त होकर योगासन कर रहे थे। यह सब देखकर कमेटी के सदस्य प्रभावित अवश्य हुए, परन्तु मेरा मन कहता रहा कि दिखाते हम इस बच्चों के गुरुकुल को हैं और इसका लाभ मिलता है गुरुकुल के उस भाग को जिसमें न गुरुकुलीयता है, न गुरुकुलीय संस्कृति है और जिसमें 'गुरुकुल' इस नाम के सिवाय ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे यथार्थ रूप में गुरुकुल कहा जा सके, ऐसा गुरुकुल जो गुरुकुलीय सिद्धान्तों पर आधारित हो।

मैंने यह सारी समस्या कमेटी के सामने नग्न रूप में रखी। गुरुकुल को अनुदान के रूप में जो मान्यता मिली है वह उसके गुरुकुलीय रूप को, गुरुकुलीय संस्कृति को कायम रखने के लिये मिली है, परन्तु इस ग्रान्ट से लाभ मिल रहा है गुरुकुल के उस भाग को जो गुरुकुलीय रूप या गुरुकुलीय संस्कृति नहीं है। होना तो यह चाहिए था कि गुरुकुल विश्वविद्यालय में वे विद्यार्थी दिखलायी देते जो अन्य शिक्षा संस्थाओं से अपनी विशेषता के कारण भिन्न हैं,परन्तु हो यह रहा है कि इसका विकास अन्य चालू शिक्षा संस्थाओं का प्रतिबिम्ब होता जा रहा है। उसी के लिये लाखों रुपयों की माँग हो

रही है, और उसी के लिये यू० जी० सी० लाखों दे रही है। इस संस्था में वे विद्यार्थी भरती हो रहे हैं जो गुरुकुलीयता या गुरुकुलीय संस्कृति से शून्य होते हैं, अधिकांश संख्या उन्हीं लोगों की है। इस समस्या का हल ढूढ़ना आवश्यक है क्योंकि अगर यह समस्या हल हो जाती है तो भारत भर के सब गुरुकुलों की समस्या इस विश्वविद्यालय का विकसित अंग होने के कारण हल हो जायेगी। इस समय वृक्ष का तना बढ़ता जा रहा है, उसकी जड़ सूखती जा रही है। गुरुकुलीयता या गुरुकुलीय संस्कृति को पनपाने के लिए उसकी जड़ में पानी देना होगा ताकि अपने ढंग का यह वृक्ष हरा-भरा हो, इसके पंत्तों में चमक हो, फूलों में सुगन्ध हो और फलों में रस हो।

कमेटी के सदस्यों में से उन सज्जन ने जिन्होंने शंका की थी कि यहां की यज्ञशालाएं सूनी पड़ी रहती है इस समस्या का हल सुझाया। उन्होंने कहा कि गुरुकुल को विश्वविद्यालय की मान्यता उसकी अपनी बिशेषता के कारण दी गयी थी। यह विशेषता वहां से शुरु होती है जहां से बालक गुरुकुल में प्रवेश करता है। गुरुकुल का विद्यालय विभाग उसी प्रकार विश्वविद्यालय का अङ्ग है जिस प्रकार गुरुकुल का कॉलेज विभाग अङ्ग है या जिस प्रकार पैर सम्पूर्ण शरीर का अंग है। गुरुकुल विश्वविद्यालय को दी जाने वाली ग्रान्ट के लिये आपको यह प्रयत्न करना चाहिये कि गुरुकुल का विद्यालय विभाग तथा कन्या गुरुकुल इन दोनों को गुरुकुल विश्वविद्यालय का अभिन्न अंग माना जाय ताकि दोनों विभागों को आर्थिक अनुदान से इतने उच्च स्तर पर लाया जा सके जिस कारण आपके गुरुकुल के वातावरण में पढ़े हुए छात्रों तथा छात्राओं से सारा विश्वविद्यालय भर जाये और आपको बाहर से छात्र लेने की आवश्यकता न रहे, इसी प्रकार आप अपनी संस्कृति तथा अपनेपन को कायम रख सकते हैं अन्यथा बाहर से छात्र भरती करते-करते किसी समय आप नाम मात्र के गुरुकुल कहलायेंगे, आपका अपनापन नष्ट हो जायगा, अनुदानों से आप एक बड़ी युनिवर्सिटी बन जायेंगे, परन्तु भीतर से खोखले हो जायेंगे।

इस सिलसिले में उन्होंने अलीगढ़ यूनिवर्सिटी तथा जामिया मिलिया का दृष्टान्त दिया। ये संस्थाएं स्वतन्त्र रूप से केन्द्र द्वारा शासित हैं। इनके विद्यालय-विभाग भी केन्द्र द्वारा विश्वविद्यालय को प्रदत्त अनुदानों से चलते हैं। इनकी अपनी-अपनी विशेषता है जिसे प्रजातान्त्रिक राज्य में बनाये रखना राजनीतिक सिद्धान्त है। राजनीति में अल्प संख्यक लोगों या संस्थाओं को राज्य से पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता हैं। गुरुकुल पद्धति में लड़के-लड़कियों का एक साथ रहकर पढ़ना निषिद्ध है। यह हमारे सिद्धान्त का अंग है। इसमें किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है। इसलिये अगर गुरुकुल के संचालक सिद्धान्त के आधार पर लड़कियों के गुरुकुल को एक अन्य परिवार में रखते हैं तो इस आधार पर निरन्तर मिलने वाली सरकारी सहायता से वंचित किया नहीं जा सकता। गुरुकुल विश्वविद्यालय को सैद्धान्तिक रूप से एक 'यूनिट' मानकर उसे विद्यालय--विभाग, कन्या गुरुकुल विभाग

तथा कॉलेज विभाग के तौर पर युनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन से अथवा केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से अन्य केन्द्रीय विद्यालयों की तरह गुरुकुलीय पद्धति को शिक्षा तथा जीवन विधि को ध्यान में रखते हुए भरपूर आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये ताकि भारत भर के गुरुकुल एक दृढ़ नींव पर खड़े होकर एक सूत्र में बंध सकें। हमें गुरुकुल विश्वविद्यालय के लिए हमारे "फ़ीडिंग गुरुकुल" सहायक होंगे ताकि हमारा विश्वविद्यालय उन गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त छात्रों से इतना भर जाये कि हमें बाहर से छात्रों को लेने की आवश्यकता ही न रहे।

इस दिशा में गुरुकुल के संचालकों को सक्रियता से, तत्परता से तथा बार-बार आवेदन पत्र देकर और मिलने-जुलने से प्रयत्न करने की आवश्यकता है ताकि गुरुकुल शिक्षा पद्धति शिक्षा के जगत् में अपना स्थिर स्थान बना सके। इस समस्या को हल करने के लिये एक साधिकार कमेटी बना देनी चाहिए जो सिर्फ इस समस्या को हल करे, क्योंकि गुरुकुलों के अध्यापकों का असन्तोष दूर करने का यही एक मार्ग है कि उन्हें विशेष पद्धति का अनुसरण करने के कारण गुरुकुल विश्वविद्यालय के यूनिट का अंग स्वीकार किया जाय।

□ □ □
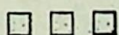
वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति

—डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,

वृहत्तर भारत प्राचीन भारतीय इतिहास के गौरव की गाथा है। हमारे सांस्कृतिक प्रचार की एक रोचक कहानी है और विश्व को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने का एक प्रबल प्रयास है। इसीलिये प्रस्तुत विषय पर आप के समक्ष कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को रखने का प्रयास किया है।

इतिहास साक्षी है कि विश्व में भारतीय संस्कृति के प्रसार की कहानी बेजोड़ है। ईसाईयत के प्रचारक जब अपने धर्म प्रचार के लिये निकले तो उनके एक हाथ में बाईबिल और दूसरे हाथ में शराब की बोतल थी। ईसाई धर्म को फैलाने के लिये वे बाईबिल मुफ्त बांटते थे और प्रलोभन के रूप में अंग्रेजी शराब की बोतल भी दी जाती थी। शराब तो प्रतीक है। कहने का अभिप्राय है कि ईसाईयत को फैलाने के लिये प्रलोभन के समस्त मार्ग खोल दिये गये थे। ठीक इसी प्रकार से इस्लाम के बन्दे जब अपने धर्म प्रचार के लिये निकले तो उनके एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार थी। कुरान के अपनाने से जो इनकार करता था, दूसरे साथ में लटकी हुई तलवार से उसकी गर्दन काट दी जाती थी। यह बात प्राय: सर्वविदित है कि हजरत मुहम्मद साहब के पश्चात् उनके खलीफाओं के समय में इस्लाम धर्म का प्रचार और प्रसार बलपूर्वक किया गया। सातवीं शती में अरब प्रायद्वीप में इस्लाम धर्म का अभ्युदय हुआ था और आठवीं शती के मध्य तक विश्व के एक विशाल भूखण्ड पर इस्लाम की विजय वैज्यन्ती फहराने लगी थी। इस्लाम की विश्वव्यापी लहर शीघ्र ही सीमान्तों से भारत में प्रवेश करने लगी थी। किन्तु सुदीर्घ काल तक मुस्लिम शासकों द्वारा शक्ति प्रयोग तथा शान्ति पूर्वक प्रचार से भी इस्लाम धर्म को भारत में उल्लेखनीय सफलता मिली। भारत में आने से पूर्व इस्लाम जिन देशों में गया था, उसे विलक्षण सफलता मिली थी, किन्तु इस देश में काफी प्रयास के बाद भी इस्लाम भारत के एक बहुत थोड़े से भाग को अपना अनुयायी बना सका था।

ईसाई और इस्लाम धर्म के प्रचार की तुलना जब भारतीय संस्कृति के प्रचार के साथ जाती है, तो एक अजीब ही दृश्य हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। ईसा मसीह और हजरत मुहम्मद साहब से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब भारतीय पण्डित अपनी संस्कृति के प्रसार के लिये भारतीय सीमाओं से

बाहर निकले तो उनके हाथ न कोई विशेष पोथी थी और न शराब की बोतल या तलवार। वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रसार की कहानी तो निराली है।

प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति भारतीय सीमाओं को पार करके जिस विशाल प्रदेश में फैली, उसे ही हम वृहत्तर भारत कहते हैं। इसमें साइबेरिया से सिंघलद्वीप और ईरान से प्रशान्त महासागर के बोर्नियों और बालि टापू तक का फैला हुआ विशाल भूखण्ड सम्मिलित है। भारत की इस सांस्कृतिक विजय की कहानी बड़ी ही अद्भुत है। रक्त की बूंद भी बहाये बिना भारतीय पण्डितों ने जो कार्य किया विश्व के इतिहास में उसका सानी नहीं है। ईसा के जन्म से सैकड़ों वर्ष पूर्व भारतीय पण्डित भारतीय सीमाओं को पार करने लगे थे। मन में कोई प्रलोभन नहीं था। शक्ति की बात कभी उठो ही नहीं। एक ही संकल्प था कि विश्व को मानवता का सन्देश देना है। बदले में लेने की कोई भी भावना नहीं थी। आने जाने की बात आज बड़ी सरल है। यातायात के द्रुतगामी साधनों ने दूरियों को लगभग समाप्त कर दिया है। किन्तु प्राचीन काल में सीमाओं को पार कर बाहर जाना एक कठिन बात थी मार्ग के पर्वत जंगली जानवर और मरुस्थल बहुत बड़े अवरोधक थे। पैदल यात्रा में जाड़ा, गर्मी और बरसात की समस्यायें भी आती थीं। इनकी कोई भी चिन्ता न करते हुए भारतीय पण्डितों ने जो कार्य किया है उसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

भारतीय संस्कृति के प्रसार के दो प्रधान प्रेरक कारण थे। प्रथम तो आर्थिक है। वित्रेषण मनुष्यों को दूर दूर के देशों में जानें और भारी संक्टों के उठाने की प्रेरणा देता है। हिन्द महासागर में भारत की केन्द्रीय स्थिति होने से वह प्राचीन विश्व के सभ्य देशों के समुद्री रास्तों के मध्य में पड़ता था। अतः भारतीय पश्चिम के सिकन्दया और पूर्व में चीन के समुद्र तक व्यापार के लिये जाया करते थे। उन दिनों यह समझा जाता था कि वर्मा, मलाया, जावा तथा सुमात्रा आदि देशों में सोने की खानें हैं। इन्हें सुवर्ण भूमि और सुवर्ण द्वीप से नाम से पुकारा जाता था। धन की आशा में भारतीय व्यापारी जहां गये वहां स्वाभाविक रूप से भारतीय संस्कृति भी ले गये। असभ्य जातियों को सभ्य बनाने में भारतीय व्यापारियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन व्यापारियों से प्राथमिक जानकारी मिलने के फलस्वरूप, भारतीय संस्कृति प्रसार का दूसरा कारण भी निर्मित हो गया। यह दूसरा कारण लोक कल्याण की कामना और धर्म प्रसार को भावना थी। इससे अनुप्राणित होकर भारतीय ऋषि और चित्रक मानव जाति को सभ्य और उन्नत बनाने के लिये निकल पड़े। कभी-कभी महत्त्वाकांक्षी सरदारों तथा क्षत्रिय राजकुमारों ने भी वृहत्तर भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के प्रसार के तीन मुख्य साधन व्यापारी, धर्म प्रसारक और उपनिदेशक थे। हमारे उपनिदेशक का आशय दूसरे देशों में भारतीयों का स्थायी रूप से बस

जाना था। सुवर्णद्वीप में इस प्रकार के अनेक भारतीय राज्य स्थापित हुए। कहा जाता है कि अशोक के काल में निर्वासित भारतीयों ने मध्य एशिया की एक प्रमुख बस्ती खौतन का उपनिदेशक कुणाल की हृदयस्पर्शी कथा ने संबन्धित है। कुणाल अशोक का प्रिय पुत्र था। उसकी आखें बहुत सुन्दर थी। युवा होने पर उसका विवाह काँचनमाला के साथ हुआ। अशोक ने बुढ़ापे में तिष्यरक्षिता नामक एक सुन्दरी ने विवह किया। यह स्त्री कुणाल की मनमोहक आंखों पर मुग्ध थी उसने कुणाल से प्रणय की याचना की किन्तु पुत्र ने विमाता के साथ इस पाप को स्वीकार नहीं किया। अत: तिष्यरक्षिता उसकी कहर शत्रु बन गयी। कुछ समय बाद कुणाल को तक्षशिला का प्रान्तपति बनाकर वहां भेज दिया गया। इसी बीच अशोक बीमार पड़ा। उसकी चिकितसा का भार तिष्यरक्षिता पर था। उसे अपना वैर चुकाने का अवसर मिल गया। उसने तक्षशिला के पौरों और जानपदों के पास एक जाली चिट्ठी भेजी। इसमें अशोक की ओर से यह आदेश था कि कुणाल की आंखें निकाल ली जाये। तक्षशिला के पौरजानपद इस आदेश को मानने को तैयार नहीं थे। किन्तु कुणाल को जब इस आदेश का पता लगा तो उसने बिना किसी हिचक से अपनी आंखे निकलवा दी और कांचनमाला के साथ पाटलिपुत्र लौटा। कहा जाता है कि अशोक को जब इस घटना का पता लगा तो उसने तिष्यरक्षिता को जीवित जलवा दिया। जो लोग इस षड़यन्त्र में सम्मिलित थे, उन्हें देश निर्वासन की सजा दी गयी। राज्य से निकले हुये ये व्यक्ति खौतन में जाकर बस गये। यह भी कल्पना की गयी है कि सम्राट अशोक मृत्यु दण्ड देना पसन्द नहीं करता था। उस समय राज–द्रोहियों को निर्वासन का दण्ड दिया था और सम्भवत: इस कार्य के लिये मध्य एशिया के क्षेत्र को चुना गया था। आठवीं शताब्दी तक मध्यएशिया में भारतीय संस्कृति के यहां इतने अधिक अवशेष मिलें हैं कि इसे उपरलाहिन्द कहा जाता है। उपरला हिन्द होते हुए भारतीय संस्कृति का प्रचार चीन और जापान में हुआ। पूर्वी देशों में भारतीय संस्कृति का फैलाव मानव जाति के विकास में भारतवर्ष की बहुत बड़ी देन है। मध्य एशिया इसमें महत्त्वपूर्ण पडाव था। अतः इस क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का फैलना असाधारण महत्त्व रखता है। वर्तमान समय में साईबेरिया के दक्षिण में. तिब्बत तथा भारत के उत्तर में, कैस्पियन सागर के पूर्व में तथा गौवी मरुस्थल के पश्चिम में अवस्थित मध्य एशिया के विशाल भूखण्ड को तुर्किस्तान का नाम दिया जाता है। राजनीतिक दृष्टि से आज इसके तीन बड़े भाग हैं। चीनी—तुर्किस्तान, रुसी–तुर्किस्तान और अफगान–तुर्किस्तान। मुस्लिम आक्रान्ताओं के कारण यहां के अधिकांश प्राचीन अवशेष नष्ट हो चुके हैं। फिर भी पूर्वी अथवा चीनी तुर्किस्तान से पुरातत्त्व की प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है।

प्राचीन काल में वृहत्तर भारत के दो प्रधान क्षेत्र थे। प्रथम तो मध्य एशिया जिसकी संक्षिप्त चर्चा आप की गयी। दूसरा था दक्षिण पूर्वी एशिया इस सम्पूर्ण क्षेत्र को परला हिन्द के नाम से पुकारा

जाता है। इसमें वर्मा, मलाया, कम्बुज, जावा, सुमात्रा, बालि, बोर्नियो और प्रशान्त महासागर के अनेक क्षेत्र सम्मिलित थे। बुद्ध और मौर्यकाल में पूर्व के इन प्रदेशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध रहा है। परन्तु ईसवी सन् के प्रारम्भ से भारतीयों ने अपने वहाँ उपनिवेश बसाने प्रारम्भ कर दिये। शुंग-सातवाहन काल तक दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीयों की अनेक बस्तियां बस गयी थीं। गुप्त काल में तो यह दशा आ गयी कि इस क्षेत्र के प्रायः सभी देशों में ऐसे राज्य कायम हो गये। जिन्हें पूर्णतया भारतीय कहा जा सकता है। गुप्तकाल में भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी प्रसार प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है।

जब भारतीयों ने दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रवेश करके अपने उपनिवेश स्थापित किये, तो उस समय यह भूखण्ड बर्बर जातियों द्वारा आवासित था। हिन्दू आवासकों ने इन्हें सभ्यता का प्रथम पाठ पढ़ाया। जीवन का शायद ही कोई ऐसा पहलू बना हो, जो इनके प्रभाव से अछूता रह पाया हो। सुवर्ण द्वीप के आवासन का श्रेय हिन्दू राजकुमारों और ब्राह्मणों को है अतः यहां शैव और वैष्णव धर्मों की प्रधानता रही, जावा तथा बोर्नियो आदि स्थानों से हिन्दू देवताओं की सैकड़ों मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता क्राफोर्ड ने तो जावा के सम्बन्ध में लिखा है कि पुराणों का शायद ही कोई ऐसा देवता हो जिसकी प्रतिमा जावा में न पाई गई हो। आज भी बालि के शिल्पी, इन्द्र, विष्णु और कृष्ण को मूर्तियाँ बनाते हैं। यहां के अधिकांश निवासी आज भी हिन्दू हैं। जो भारतीय विधि से दुर्गा तथा शिव की पूजा करते हैं। आज बाली में दिखाई देने वाला यह हिन्दू प्रभाव प्राचीन काल में सामूचे सुवर्णद्वीप में फैला हुआ था। इस प्रभाव की पुष्टि साहित्य और कला से भी होती है। सुवर्ण द्वीप में लिपि और संस्कृत भाषा का प्रसार था। चम्भा और कम्बुज से संस्कृत के सैकड़ों अभिलेख मिले हैं। कम्बुज के राजा यशोवर्मा ने पातञ्ज महाभाष्य पर टीका लिखी थी। (नवीं शती)

भारतीय धर्म और साहित्य के साथ-साथ सुवर्णद्वीप में भारतीय कला का भी प्रसार हुआ। कम्बुज की मूर्ति कला गुप्त कालीन काल से प्रादूर्भूत हुई थी। धीरे-धीरे यहां के शिल्पी इतने दक्ष हो गये कि उन्होंने पाषाणों में अमर काव्यों की रचना कर डाली। कम्बोडिया तथा जावा के मन्दिरों में रामायण, महाभारत और हरिवंश पुराण के दृश्य बहुत सफाई और सफलता के साथ उत्कीर्ण किये गये हैं। जिस उत्तर भारत में मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा मन्दिरों का विनाश हो रहा था, उस समय कम्बुज में अंकोरवाट और अंकोर धाम के विश्वविख्यात मन्दिरों का निर्माण हो रहा था। (सूर्य वर्मा द्वितीय ११४३ ४५ और जयवर्मा सप्तम ११८१-१२००) वास्तुकला का उच्चतम विकास अंकोरवाट तथा बोरोबुदूर के अद्वितीय मन्दिरों में मिलता है। इस प्रकार के देवालय न भारत में पाये जाते हैं न

किसी दूसरे देश में वे विश्व की अद्भुत् वस्तुओं में गिने जाते हैं तथा इन प्रदेशों में भारतीय संस्कृति के अमर स्मारक हैं। दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय राज्य लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी तक विद्यमान रहे। तत्पश्चात् इस क्षेत्र में इस्लाम धर्म और संस्कृति का प्रसार हुआ।

बृहत्तर भारत की कहानी तो आज पुरानी पड़ गयी है। किन्तु इसकी गौरवमयी गाथा आज भी सजीव है। आज भी आध्यात्मिक दृष्टि से भारत विश्व का गुरु है।

□

मुझे आगे बढ़ना है

चाहे शीतल हिम भी प्रचण्ड आग बन जाए,
चाहे 'पुष्प-माला' भी कराल नाग बन जाए,
चाहे अनन्त आनन्द भी 'नाश-राग' बन जाए,
संघर्ष को मुस्कान समझ, जी भरके खिलना है।
मुझे आगे बढ़ना है।

चाहे मेरी अनन्त खुशियां बनें-अनन्त बाधाएं,
चाहे जलकर राख बने 'ओ' अनन्त आशाएं,
चाहे पल न आराम करें सब अटूट क्रूरताएं,
गम को भी सावन समझ, जरुर मुझे झूलना है।
मुझे आगे बढ़ना हैं।

मिले लाभ न चाहे पर पाना कुल मुझे है,
तीखे-तीखे शूलों को भी कहना फूल मुझे है,
परार्थ ही हो अभीष्ट स्वार्थ, अनुकूल मुझे है,
कुर्बानी को खुशी समझ, सदा गले मिलना है।
मुझे आगे बढ़ना है।

कविरत्न—महेन्द्रसिंह 'उत्साही'

आचार-शास्त्र एक तुलनात्मक अध्ययन

—डॉ० जयदेव वेदालंकार
रीडर एवं अध्यक्ष दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

आचार शास्त्र के विषय में भारतीय मनीषियों एवं पाश्चात्य दार्शनिकों ने पर्याप्त अन्वेषण किया है। आचार शास्त्र दर्शनशास्त्र का प्रमुख अङ्ग माना जाता है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार आचार शास्त्र दर्शन का क्रियात्मक पहलू है। दर्शन शास्त्र हमें सैद्धान्तिक ज्ञान कराता है तो आचार शास्त्र शुभ और अशुभ का निर्णय करता है। आचार शास्त्र के अन्दर प्रमुखतः नैतिक निर्णयों का व्याख्यान होता है। हमने कोई कार्य किया तो लोग कहते हैं—उसने अच्छा किया। यह जो निर्णय है कि यह अच्छा किया–इसका निर्णय हम किसी की अपेक्षा से कहते हैं। कान्ट के अनुसार शुभ अपने में शुभ है। वह किसी की अपेक्षा नहीं रखता।[1] उसका कहना है कि एक भिखारी हमारे समक्ष भीख मांगने आता है, हम उसको टालने के लिये चवन्नी फॅक कर मारते हैं, वह होटल में जाकर उससे कुछ लेकर खा लेता है। कान्ट के अनुसार यह नैतिकता नहीं है। उसका कथन है कि डाक्टर आपरेशन करता है, उस आपरेशन करने से हमें उस समय दुःख होता है, परन्तु डाक्टर का उद्देश्य हमें दुःख पहुँचाना नहीं है। इसी प्रकार एक शेर किसी मनुष्य पर आक्रमण करता है, हम उस मनुष्य की रक्षा के लिए उस शेर पर गोली चलाते हैं परन्तु वह गोली शेर को न लगकर मनुष्य को लग जाती है। कान्ट का कहना है कि यद्यपि उस मनुष्य की मृत्यु हो गई परन्तु हमने यहां उस मनुष्य के उद्देश्य को देखना है जिससे उसने गोली चलाई। गोली चलाने का उद्देश्य उसका शुभ था अतः नैतिकता है अनैतिकता नहीं। कान्ट का कहना है कि उसी नियम का पालन करो जो सर्वव्यापक बन सके।[2]

आचार शास्त्र में कई प्रकार की मान्यता हैं उनमें से एक मान्यता है सुखवाद। यह सुखवाद दो प्रकार का होता है—(१) स्वार्थ सुखवाद (२) परार्थ सुखवाद।

---

1 Good will is the only good that is good without qualification.

2 Act that principle which.........be an universal law.

सुखवादी दार्शनिक मिल, बेन्थम, स्पेंशर आदि हैं। परन्तु ये नैतिक सुखवाद को मानते हैं। इनका कहना है कि—जैसे मैं सुखी होना चाहता हूँ, इसी प्रकार दूसरे प्राणी भी सुख चाहते हैं इसलिये मुझे भी और को दुःख नहीं देना चाहिये क्योंकि मैं भी दुःखी नहीं होना चाहता। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन में मनोविज्ञान नैतिक सुखवाद का प्रादुर्भाव होता है। इससे पूर्व तो स्वार्थ सुखवादी दार्शनिक दूसरों के सुख की उपेक्षा करते थे। उनका नीति सम्बन्धी सिद्धान्त चार्वाक के समान है। चार्वाक का कहना है कि विषयजन्य जो सुख हैं वही हमारा अन्तिम उद्देश्य है। वह कहता है कि जब तक जिओ सुख से जिओ चाहे ऋण भी क्यों न लेना पड़े।[1] यही विचारधारा स्वार्थ सुखवादी पाश्चात्य दार्शनिकों की थी इस प्रकार पाश्चात्य नीतिशास्त्र में प्रकृतिवाद अर्थात् व्यवहार वाद, अन्तःप्रज्ञावाद, सुखवाद, विकासवाद अर्थात् पूर्णतावाद आदि वादों का प्रचलन हुआ। विकास वाद के अनुसार सर्वाङ्गीण, विकास ही मनुष्य का उद्देश्य है। इसमें हेगल एलक्जेन्डर, स्पेंशर, हर्बर्ट, ग्रीन और डारविन आदि का नाम लिया जा सकता है। इनमें हेगल अध्यात्मवादी विकासवादी है। आगे चलकर अरविन्द पर इसका प्रभाव पड़ा।

नीतिशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बुद्धिवाद है। इस विषय में स्पिनोजा का कहना है कि नीतिशास्त्र एक सोद्देश्यपूर्ण शास्त्र है। अर्थात् मनुष्य का सम्बन्ध जहाँ प्रकृति के साथ है वहाँ समाज के साथ भी है। मनुष्य को अपना उद्देश्य बनाना चाहिये कि वह प्रकृति और समाज के साथ सन्तुलन बना सके। उसे चाहिये कि वह ज्ञानमार्ग की सीढ़ियों द्वारा और शरीर के सन्तुलन को मन के साथ रखता हुआ मौक्तिका ज्ञान को प्राप्त कर लेवे।

बटलर का कहना है कि हमें अन्तर्मुखी और बाह्य निरीक्षण द्वारा यह पता लगता है कि नैतिक ज्ञान सहज ज्ञान है। मनुष्य के अन्दर परोपकार, दया, सहानुभूति आदि जन्मजात हैं। वह कहता है कि हमारी अन्तर्बोध की शिक्षायें स्वयं भगवान् की शिक्षायें हैं इस अन्तर्बोध के सिद्धान्त को मानकार बटलर ने स्वार्थवाद का खण्डन किया है। इस प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक भौतिकवाद से चलकर अध्यात्मवाद की ओर प्रवेश करते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि नैतिकता के सिद्धान्त कैसे बनते हैं? उनका मापदण्ड क्या हो? कुछ लोग परम्परा, रीतिरिवाज को ही नैतिकता मानते हैं। जिसमें परोपकार की भावना से कृत कार्य नैतिक माना जाता है। कुछ अन्य दार्शनिक एक लक्ष्य को सामने रख कर नैतिकता का निर्णय देते हैं। जैसे सुखवादी चार्वाक आदि हैं। कुछ लोग निरपेक्ष सिद्धान्त के रूप में नैतिकता को मानते हैं, जैसे–कान्ट।

---

१ "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।"

महर्षि दयानन्द जी के नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व यह विचार करना होगा कि वे नैतिक सिद्धान्तों को किन बातों पर आधारित मानते हैं अर्थात् उनका नैतिकता का मापदण्ड क्या है ? क्योंकि कोई भी दार्शनिक कुछ स्वतःसिद्ध सिद्धान्तों को मानकर उनके अनुसार अपने माप-दण्ड बनाता है। ऋषि दयानन्द जी के नैतिक सिद्धान्त निम्नलिखित बातों पर आधारित हैं—

१. आत्मा अभौतिक है, असृष्ट है, तथा अमर है।

२. यह चेतन है इसमें ज्ञान, संवेदना और प्रयत्न होते हैं।

३. आत्मा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता इसकी मौलिक सम्पत्ति है। इसको स्वतन्त्रता किसी बाहरी तत्व से प्राप्त नहीं हैं, परन्तु स्वतः प्राप्त है। परन्तु यह स्वतन्त्रता कर्म करने में है, फल भोगने में नहीं।

४. आत्मा असीमित नहीं है। इसका ज्ञान,कार्य सब सीमित हैं। इसकी उन्नति और अवनति दोनों संभव हैं उन्नति के लिये प्रयास करना चाहिये।

५. मनुष्य को बहुत ऊंचे उद्देश्य तक जाना है। अतः उसके उत्तरदायित्व का क्षेत्र बहुत बड़ा है। अनेक विकल्पों में से किसी एक को चुनना है। उस चुनाव के लिये आचार शास्त्र सहायक होता है।

६. केवल मनुष्य ही नहीं अपितु प्राणीमात्र के पीछे एक उद्देश्य है।

७. आत्मा सक्रिय तथा विकासशील है। इसी प्रकार संसार भी विकासशील है। संसार की गति से साथ अपनी गति को मिलाना यही नैतिकता सिखाती है।

महर्षि दयानन्द जी इन सिद्धान्त को मानकर चलते हैं। नीतिवाद के सम्बन्ध में वे यंत्रवाद, यथा उद्देश्यवाद दोनों का खण्डन करते हैं। उद्देश्यवादी सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण संसार का केन्द्रबिन्दु है। वह अपने लिए संसार रचता है। इस उद्देश्यवाद के अनुसार आत्मा सर्वथा परतन्त्र हो जाता है अथवा बन्धन में रहता है। पूर्ण स्वतन्त्रतावाद भी ठीक नहीं है क्योंकि इसके अनुसार ईश्वर जीव की रचना करता है और कृपा करके जीवों को स्वतन्त्रता प्रदान करता है। प्रथम सिद्धान्त के अनुसार तो जीवात्मा को अपने पथ निर्वाचन करने की स्वतन्त्रता नहीं रहती। जब कभी जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं है तो उन कर्मों के फल के भोगने में बाध्य नहीं होने चाहियें क्योंकि जो जैसा करता है वैसा ही भोगता है यह एक स्वतन्त्र सर्वतन्त्र सिद्धान्त है।[1] अतः इस सिद्धान्त के अनुसार तो नैतिकता का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे मत के अनुसार ईश्वर स्वतन्त्रता प्रदान करता है, इससे स्वतन्त्रता का मूल्य नहीं रह जाता है।[2] स्वामी जी के सिद्धान्त दोनों ही मतों के बिरोधी हैं। ऐसे

---

१ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।

2 Brought freedom is not freedom.

ईश्वर का होना तो व्यर्थ ही है जो अपने स्वार्थ के लिए जीवों की सृष्टि करता है। जीव को खतरे में डाल देता है। यह मानना कि संसार एक जेलखाना है, ईश्वर इसका जेलर। यह भी मान्यता अनुचित है। ऐसा मानने पर तो नैतिकता का कोई स्थान ही नहीं रहता है। जो लोग ईश्वर और जीव की काल्पनिक सत्ता मानते हैं। उनका भी ऋषि खण्डन करते हैं। इस प्रकार दोनों प्रकार के मत, भौतिकवाद एवं परतन्त्रवाद जिसे अध्यात्मवाद भी कहा जाता है, दोनों का ही खण्ड़न करते हैं। स्वामी मध्यम मार्ग को अपनाते हैं। उनका सिद्धान्त है जैसा कि भारतीय दर्शन में माना गया है कि आत्मा अमर है। वह पुनः जन्म लेता है। जो भी अच्छे बुरे कर्मों को करता है, उस का फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। इन का कहना है कि जब मनुष्य अच्छे कर्मों को करता है तो उसे उत्साह, आनन्द आदि का अनुभव हृदय में होता है और बुरे कर्म करता है तो उसको अपने हृदय में भय, लज्जा, शंका आदि का अनुभव होता है। यहाँ पर वे एक प्रकार से अन्तरज्ञान[1] के सिद्धान्त को मानते हैं, जिसे बलटर भी मानता है। स्वामी दयानन्द जी के अनुमार मनुष्य नैतिक सिद्धान्तों का केन्द्रबिन्दु है। उनका कहना है कि व्यक्ति समाज के लिये और समाज व्यक्ति के लिए है। वे आर्य--समाज के दसवें नियम में लिखते हैं कि "सामाजिक,सर्वहितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें और प्रप्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र हैं। इससे स्पष्ट हो रहा है कि ऐसे नियम भी कुछ नहीं जो अधिक समाज का अहित करते हों और ऐसे नियम भी अनुचित हैं जिनमें व्यक्ति के पीछे समाज बलिदान हो जाता हो। यदि व्यक्ति न होंगे तो समाज भी नहीं होगा। इस प्रकार यदि व्यक्तियों का निर्माण हो जावेगा तो समाज का निर्माण भी अपने आप हो जायेगा। दूसरे दार्शनिक समाज का सुधार चाहते हैं। परन्तु महर्षि दयानन्द जी व्यक्ति और समाज दोनों का निर्माण करना चाहते हैं।

महर्षि दयानन्द जी हमें परिधियों में उस प्रकार नहीं बाँधना चाहते हैं जिस प्रकार समाज जाति, रंग और छोटी भावनाओं से बंधा हुआ है। यह मेरा, बह उसका यह भावना छोटे मनुष्यों की है। उदार मनुष्य विश्व को ही अपना परिवार समझते हैं।[2]

महर्षि दयानन्द जी का मन्तव्य है कि जब तक मनुष्य अपने-अपने धर्मों का पालन नहीं करते हैं तभी तक समाज में विशृंखलता आती है। धर्म से अभिप्राय किसी मत विशेष से नहीं। उन का कहना है कि ऐसा धर्म मनुष्यकृत नहीं अपितु ईश्वरकृत वैदिक परम्परायें हैं। जिन का उल्लेख वेदों में है। धर्म किसी वर्ग विशेष का नहीं अपितु सर्वमानवहितकारी होता है। जैसा कि मनु जी कहते हैं–

---

1 *INTUTION*

२ अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

धैर्य रखना, क्षमा करना, इन्द्रियों का दमन करना, मन वचन कर्म से चोरी न करना, आत्मा और मन को पवित्र रखना इन्द्रियों को विषयों में अत्यधिक लिप्त न करना, मनुष्यों का धीर होना, विद्या को प्राप्त करना, मन वचन और कर्म से सत्य का पालन करना और क्रोध कभी न करना ये धर्म के लक्षण हैं। अर्थात् इन के पालन का नाम धर्म है। यहाँ पर ये धर्म किसी वर्ग विशेष का धर्म नहीं हैं, अपितु इस धर्म का पालन संसार का प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है।

महर्षि दयानन्द जी यह मानते हैं कि मनुष्य का लक्ष्य अपने आप को जानना अथवा परमात्मा को प्राप्त करना है। इस आचार शास्त्र का अन्तिम उद्देश्य पूर्णता को प्राप्त करना अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करना है, परन्तु इस के साथ-साथ सामाजिक उन्नति भी करना है। जैसा कि वैशेषिक दर्शन में कहा है—धर्म वह है जिससे इस लोक की उन्नति और मुक्ति की प्राप्ति हो।[2] अतः अभ्युदय साधन है और निश्रेयस् साध्य है। धर्म दो प्रकार का है। पहला सामाजिक दूसरा व्यक्तिगत जैसे हिंसा न करना, चोरी न करना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और संग्रह अधिक न करना[3] ये पाँच यम कहलाते है, जो सामाजिक धर्म के अंग कहे जा सकते हैं। जिन का पालन अवश्यमेव करना चाहिये। इन को सार्वभौम महाव्रत कहा गया है। भारतीय आचार शास्त्र प्रणेताओं ने समस्त समाज को दो प्रकार से विभक्त किया है। प्रथम आश्रमों की दृष्टि से इस प्रकार है— (क्रमशः)

१ धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शोचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ मनु० ॥

२ यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धि स धर्मः। (वैशे० १-१)

३ तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ॥ (सत्यार्थप्रकाश समु० सात)।

फूलों की घाटी

—डॉ० काश्मीर सिंह भिण्डर
इतिहास विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

प्राचीन काल से ही पर्वतों का अपना अलग से आकर्षण रहा है, चाहे ग्रीष्म ऋतु हो, शरद हो या वर्षा ऋतु, हर मौसम में पर्वत आनन्ददायक होते हैं। शरद ऋतु के प्रारम्भ होते ही पर्वत अपनी शृंखलाओं पर हलकी जमती बर्फ की छटा से जहां मैदान में बैठे साधारण व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वहीं ग्रीष्म ऋतु के शुरु होते ही हिमालय का प्रत्येक आंचल अपने मदहोश जवानी से आकर्षित करता है। जिस समय सूर्यताप से पर्वतों की चोटियों का बर्फ पिघलने लगता है, उस समय का दृश्य अपना अलग ही स्थान रखता है। मनुष्य इस रोमांस से भरपूर आमन्त्रण को न कभी टाल पाया है और न कभी टाल पायेगा। हिमालय पर्वत की गोद ही ऐसी है जहां मानव की हर आवश्यकता पूरी हो सकती है, जैसे अध्यात्म का आकर्षण. प्राकृतिक सौन्दर्य देखने की लालसा, झर-झर करते झरनों का निनाद, आखेट के लिये घने जंगल, रोगियों के लिए ओषधि, भ्रमण के लिये रमणीक स्थल क्या कुछ नहीं है पर्वतों को गोद में। इसलिये रोनालड ने कहा था कि सही मायने में इन्सान को यदि सब कुछ कहीं मिल सकता हैं तो वह केवल हिमालय की गोद में। पर्वत सदैव से अपना सब कुछ लुटाकर दूसरों को प्रसन्न करने मात्र में ही खुश रहा है।

मनुष्य सदैव से रमणीय स्थलों की तलाश में इधर से उधर खोज करने में मग्न रहा, इसी तरह की एक खोज में लगा हुआ कामथ कमीशन के अधीन १९३५ में ब्रिटिश लोगों का एक काफिला मैदानों से चलता हुआ हिमालय के शिखर पर जा पहुँचा, जहां उसे फूलों की सुगन्ध ने मदहोश कर दिया। इस सुगन्धमय वातावरण की जगह का नाम है फूलों की घाटी। फूलों की घाटी आज एक विश्व प्रसिद्धि लिये हुए है क्योंकि एक ओर सिक्खों का एकमात्र धार्मिक स्थल हेमकुण्ड और दूसरा है फूलों की घाटी, जिनका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। फूलों की घाटी को जाने के लिये केवल मात्र गोविन्दघाट से ही रास्ता है। गोबिन्दघाट से यह घाटी १९ किलोमीटर की दूरी पर है जिसको पैदल चलकर या छोटे घोड़ों पर सवार होकर तय किया जा सकता है। गोविन्दघाट से फूलों की घाटी एवं हेमकुन्ड तक पगडन्डोनुमा रास्ता है जिसमें एक ओर विशाल पर्वत और दूसरी सिंहनाद करती हुई बाण गंगा, जो प्रत्येक दर्शनार्थियों को प्रेरणा देती है एवं इस दुर्गम रास्ते को तय करने के लिये साहस बढ़ाती है। इस रास्ते को तय करने में स्वस्थ आदमी तक हांफ जाता है। रास्ते की दूरी महसूस न हो इसलिये

प्रत्येक दो किलोमीटर पर चाय की दुकाने यात्रियों को सहारा देने के लिये अपने गन्तव्य पर पहुँचने में सहयोग देती हैं। गोविन्दघाट से घघरिया तक प्रकृति की छटा को देखने वाला तथा हेमकुण्ड की यात्रा को जाने वाला यात्री एक दूसरे का साहस बढ़ाता हुआ आगे चलता है और घघरिया पहुँचने पर अपनी-अपनी दिशा ले लेता है। घघरिया नामक स्थान से दायीं ओर हेमकुण्ड है और बायीं ओर फूलों की घाटी। गुरु गोबिन्द सिंह से देश व धर्म की रक्षा में दुनिया के समक्ष अपने पुत्रों का तथा अपना बलिदान देकर उदाहरण प्रस्तुत किया कि देश व धर्म की रक्षा ही मनुष्य का धर्म है।

इसी स्थान के पास महाकाल का ऐतिहासिक मन्दिर भी स्थित है। हेमकुण्ड का दर्शन करने वाला यात्री इस मन्दिर के दर्शन कर अपने को भाग्यशाली मानता है घघरिया से दर्शनार्थी चलता है तो तरह-तरह की फूलों की गन्ध तथा वातावरण की मादकता उसको छेड़ना शुरु कर देती है। कोई तो इस छेड़खानी से रास्ते में ही इतना मदहोश हो जाता है कि कोई पुष्प आकर अपना वह गीत सुनाये जिससे दोनों का भेद एवं अन्तर भी समाप्त हो जाय। यहां पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर दूध की भांति श्वेत झरने सौन्दर्य में और निखार ला देते हैं और इन्सान को आत्मविभोर कर देते हैं। फूलों की घाटी बारह हजार पांच सौ फिट की ऊंचाई पर स्थित है। मध्य हिमालय में नर-पर्वत और जंस्कार पर्वत से घिरी यह घाटी है, जहां पर विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे फूल यहां की शोभा बढ़ाते हैं, वहीं यहां चारों और दूर-दूर तक फैले देवदार के वृक्ष यहां के सौन्दर्य को श्रीवृद्धि करते हैं। वास्तव में यह स्थान भी इन्सान के लिये आश्चर्यजनक है। यहां ना तो फूलों को कोई रोपता है न ही उनकी किसी प्रकार देखभाल होती है। लाखों फूल जो सैकड़ों प्रकार के हैं, केवल प्रकृति ही उनकी देखभाल करती है। यही वह स्थान है जहां पाण्डु ने तप किया था, यही वह स्थान जहां पाण्डव घटोत्कच पर चढ़कर पहुँचे थे। यही वह स्थान है जहां पुष्पों की शोभा को देखकर द्रौपदी मन्त्रमुग्ध हो गयी थी। इस घाटी का वर्णन द्रोण–पर्व में भी आता है कि जिस समय राजा जयद्रथ ने अभिमन्यु को मार गिराया था उससे पाण्डव पक्ष में जहां अभिमन्यु का दुःख था वहीं दूसरी और अर्जुन की प्रतिज्ञा का भय, क्योंकि अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जयद्रथ का वध नहीं कर लूंगा तब तक अन्न ग्रहण नहीं करूंगा। महाभारत में इस स्थान का बहुत ही सुन्दर वर्णन है, जिसमें इस स्थान को देव व ऋषियों का स्थान कहा गया है—

अयं देव निवासो वै गन्तव्यो वो भविष्यति ।
ऋषिनां चैव दिव्यानां निवास पुण्यकर्मणा ॥

महाभारत में ही इस स्थान को सौगन्धिक वन कहा गया है—

एष पन्था कुरुश्रेष्ठ सौगन्धिक वनाव ते ॥

निरन्तर झरने वाले झरनों के जल उस पर्वत के कण्ठदेश में अवलम्बित मोतियों के हार से प्रतीत होते हैं। यहां छाया हुआ कोहरा, हल्की-हल्की बूंदों की बौछार, फूलों की कभी न समाप्त होने वाली खूशबू, रोम-रोम में रोमांस पैदा कर देती है। इतना सुन्दर दृश्य है यहाँ का कि जिसको शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। इस प्रकृति के दैवी बगीचे को देखने के लिये जहां प्रकृति प्रेमी आते हैं वहीं पर बोटनिस्ट यहां पर कैम्प डाले रखते हैं और यहां पर खिले हुए फूलों को एकत्रित कर अपने-अपने लेबोटरीज में ले जाकर टैस्ट करते हैं। लेकिन आज तक कोई वैज्ञानिक यहाँ के रहस्य को नहीं जान पाया है। फूलों की घाटी के सुन्दर दृश्य मानव को इतना अधिक प्रभावित कर देते हैं कि वह दैवीय बगीचे की प्रशंसा में कह उठता है—यही है—स्वर्गलोक और देवलोक।

स्वतन्त्रत देश में अवसान और अवसाद ऐसा

स्वतन्त्रत देश में अवसान और अवसाद ऐसा,
दरिद्रता और दैत्य का साम्राज्य जैसा।
सामाजिक हीनता और उदासीनता का अन्धकार ऐसा,
पराभव और पराधीनता का अभिशाप जैसा।
व्यथा और व्यग्रता का मेघ उमड़ता है ऐसा,
रौरव नरक की यातनाओं का सैलाब जैसा,
देश द्रोह का विटप पनपता है ऐसा,
अहिफण उठता है और झूमता है जैसा।
क्रूर उग्रता का कराल कुकृत्य है ऐसा,
निर्दोष मानवता का संहार जैसा।

केo लाल शर्मा

१९५, जी ब्लाक
श्री गंगानगर, राजस्थान

राष्ट्रोत्थान कौन कर सकता है?

—श्री सुरेशचन्द्र त्यागी
प्रिंसिपल—विज्ञान महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय

चरित्र के विकास के लिए इच्छा—शक्ति का होना बहुत आवश्यक है। जो व्यक्ति ढुल-मुल होता है, उसमें इच्छा—शक्ति का अभाव होता है। अतः वह दुर्बल—चरित्र होता है। जो एक निश्चय करके उस पर दृढ़ नहीं रह सकता, जो प्रत्येक नवीन मत को ग्रहण कर लेता है, जिसका कोई स्थाई सिद्धान्त नहीं, जिसकी अपनी रुचि नहीं, उसके पास चरित्र का अभाव ही समझना चाहिए। ऐसे पुरुष भले हो अथवा बुरे किसी भी प्रकार के बड़े कार्य करने में अक्षम होते हैं। उनसे समाज का हित तो क्या होगा, वे अपना ही कल्याण नहीं कर सकते। एक चरित्रवान् व्यक्ति के लिए दृढ़ इच्छा—शक्ति की सख्त जरूरत है।

बालकों को अपना निश्चय स्वयं करने देना चाहिए। जो लोग बालकों को आत्मनिर्णय का मौका नहीं देते, जरा सी भी कठिनाई आने पर उनकी सहायता करने को उतावले हो जाते हैं, वे उनके चरित्र—विकास में सबसे बड़े बाधक हैं।

हठधर्मी भी दृढ़ इच्छा का ही एक स्वरूप है; किन्तु हमारा उद्देश्य हठधर्मी को प्रोत्साहित करने का नहीं है। हमारा अभिप्राय उन हालात से है जहां पर या तो व्यक्ति कुछ निश्चय कर ही नहीं पाता या अपनी इच्छा की दुर्बलता के कारण, झूठे दबाव में पड़कर अपना इरादा बदल देता है। लज्जा के कारण अथवा हीनता की भावना से, जो अपने निश्चय पर स्थिर नहीं रह सकता उसका व्यक्तित्व तथा चरित्र व्यर्थ है। वह कल क्या करेगा, कोई नहीं कह सकता। उसके चरित्र में स्थायित्व नहीं, और स्थायित्व ही चरित्र की विशेषता है। जो चरित्रवान् होता है वह अपने उचित निर्णय पर डटना जानता है। इस डटे रहने में उसे इच्छा—शक्ति से ही सहायता मिलती है। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥

संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं—उत्तम, मध्यम और नीच। नीच व्यक्ति विघ्नों के भय से किसी कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते। मध्यम प्रकार के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ तो कर देते

हैं परन्तु विघ्न आने पर उस कार्य को बीच में ही छोड़ देते हैं। उत्तम श्रेणी के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ करके तब तक नहीं छोड़ते जब तक कार्य सिद्धि नहीं हो जाती।

उत्तम प्रकार के व्यक्तियों की इच्छा–शक्ति प्रबल होती है। इस इच्छा–शक्ति के आधार पर ही वे संसार में महान् कार्य कर जाते हैं और अमर हो जाते हैं।

इच्छा–शक्ति एक बहुत बड़ी ताकत है। एक कहावत प्रसिद्ध है—"जहां चाह होती है, वहां राह निकल ही आती है। जिस परिस्थिति में बहुत बड़ी शारीरिक शक्ति से सम्पन्न, किन्तु दुर्बल इच्छा के व्यक्ति घबरा जाते हैं वहां इच्छा–शक्ति के प्रभाव से ही शरीर से दुर्बल पुरुष स्थिर, अचल होकर खड़ा रहता है। महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष बाबू इच्छा–शक्ति के आधार पर महान् कार्य करके इतिहास में अपना नाम अमर कर गये हैं। बिना दवा के ही, केवल इच्छा के जोर से अनेक लोग कठिन रोगों तक से मुक्त होते देखे गये हैं।

यह इच्छा–शक्ति है क्या? यह मनुष्य की कोई मूल शक्ति है अथवा इसका जन्म अकस्मात् हो जाता है और प्रबल से प्रबल विपत्तियों मे टकराने की विलक्षण शक्ति इसमें कहां से आ जाती है?

जीवन के अनेक अवसर आते हैं जब हमारे सामने निर्णय लेना कठिन हो जाता है और हमें कोई एक मार्ग चुनना होता है। हम तब एक अनिश्चय की दशा में होते हैं। क्या करें, क्या न करें यह हमारी समझ में नहीं आता। हम सोचते विचारते हैं, सभी प्रकार की युक्तियों का सहारा लेते हैं और तब अन्तर्द्वन्द्व के पश्चात् किसी एक निर्णय पर पहुँचते हैं। यह निर्णय हमारी इच्छा–शक्ति करती है।

युद्ध के लिये तैयार अर्जुन के सम्मुख एक बार ऐसा ही संकट उपस्थित हुआ था। उसके सम्मुख प्रश्न था कि वह धर्म–युद्ध करके आत्मीयों की हत्या करे अथवा आत्मीयता के मोह में पड़कर अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाये। सोचा-समझा, पण्डित प्रवर भगवान् कृष्ण से उपदेश लिया और अन्त में अन्तर्द्वन्द्व के बाद यह निश्चय किया कि मैं युद्ध में भाग लेकर क्षात्र–धर्म का निर्वाह करुंगा। इस निर्णय में यह 'मैं' शब्द विशेष महत्त्व का है। इस निर्णय की प्रेरणा तथा उसको कार्यान्वित करने की प्रबल–शक्ति इस 'मैं' में ही छिपी हुई है, अर्जुन की इच्छा शक्ति का सम्पूर्ण रहस्य इस 'मैं' में ही निहित है।

"मैं" कौन? अर्जुन, क्षत्रिय शिरोमणि, जगत् विख्यात, क्षात्र-धर्म विवेक सम्पन्न, ज्ञानी अर्जुन यह महान् लज्जा की बात होगी कि साधारण मनुष्यों सी दुर्बलता अर्जुन के आचरण में भी प्रकट हो,

नहीं ऐसा कभो नहीं होगा। मैं क्षात्र-धर्म पालन अवश्य करूंगा, उसके लिये मुझे कुछ भो क्यों न बर्दाश्त करना पड़े। यह 'मैं' अर्जुन के समस्त व्यक्तित्व का, चरित्र का, द्योतक है। इसमें उसका आदर्श 'स्व' है जो अनिश्चय की दशा में भली-भांति स्पष्ट नहीं हो सका था। अतएव इच्छा-शक्ति, चरित्र का बल है और इसी से किसी का व्यक्तित्व निखरता है।

सुन्दर चरित्र के लिए इच्छा-शक्ति की बहुत जरुरत है। जो व्यक्ति दृढ़ निश्चय नहीं कर पाता, जो अपने किसी कार्य पर डट नहीं पाता, उसका व्यक्तित्व प्रभावहीन तथा चरित्र दुर्बल होता है। मनुष्य का विगत जीवन एवं भावी योजनाएं जिस "आदर्श स्व" को बनाती हैं, इच्छा-शक्ति उसी की प्रबल प्रेरणा को कहते हैं। शिक्षकों को चाहिए कि बालकों को आत्म-निर्णय का अवसर दें, जिससे उनकी इच्छा-शक्ति दृढ़ हो सके। वंशानुक्रम, प्रकृति, वातावरण सभी का हाथ चरित्र निर्माण में होता है और उन पर शिक्षकों का कोई नियंत्रण नहीं होता। किन्तु तब भी छात्रों की इच्छा-शक्ति को जगाने के लिए वे जो भी कुछ कर सकते हैं। उन्हें लगन तथा ईमानदारी से करना चाहिए। चरित्रवान् व्यक्तियों पर ही किसी देश का भविष्य निर्भर करता हैं और चरित्र का निर्माण बहुत कुछ शिक्षकों के हाथ में होता है।

आज देश के नवयुवक विज्ञान, इंजीनियरिंग, कृषि आदि क्षेत्रों में उन्नति कर रहे हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश चारों ओर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और बेईमानी का राज हैं। देश तेजी से पतन की ओर जा रहा है। उसका एकमात्र कारण यही है कि नवयुवकों के चरित्र निर्माण की ओर किसी का ध्यान नहीं। हम एक ऐसा देश बना रहे हैं जिसकी नीव रेत के ढेर पर खड़ी है और यह नींव कभी भी बुरी तरह ढह सकती है।

एक अंग्रेजी कहावत है कि "जब किसी का धन नष्ट हो जाये तो समझो कि कुछ नष्ट नहीं हुआ। जब स्वास्थ्य नष्ट हो जाये तो समझो कि कुछ हो गया और जब चरित्र नष्ट हो जाये तो समझो कि सब कुछ नष्ट हो गया। अतः आज देश के गिरते हुए नैतिक स्तर को उठाने के लिए बालकों का उच्च चरित्र बनना परमावश्यक है और यह तभी सम्भव है जबकि माता-पिता तथा प्रत्येक गुरु बालकों की इच्छा-शक्ति को दृढ़ करें, क्योंकि बिना दृढ़ इच्छा-शक्ति के उच्च चरित्र ही नहीं बन सकता।

□

विश्वविद्यालय के प्रांगन से-

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
उप-कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

पिछले दिनों विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की छठी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप देने के लिये गुरुकुल में आयी।

इस सन्दर्भ में जो प्रश्न उभर कर सामने आया वह यह था कि क्या गुरुकुल की कोई विशेषता है अथवा गुरुकुल भी अन्य विद्यालयों की तरह ही है जो बी० ए०, एम० ए० की परीक्षायें लेता है और डिग्रियां बांटता है? सौभाग्य से इस अवसर पर विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा महोदय डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार तथा गुरुकुल के पुराने स्नातक, धर्मयुग एवं नवनीत के भूतपूर्व सम्पादक और अब गुरुकुल के आचार्य प्रो० सत्यकाम विद्यालङ्कार भी उपस्थित थे।

कुलपति जी ने अपने स्वागत भाषण में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ८० वें दशक का कार्यक्रम उपस्थित करते हुए जोरदार शब्दों में कहा कि गुरुकुल सामान्य विश्वविद्यालयों की तरह नहीं है। गुरुकुल का एक विशेष लक्ष्य है। गुरुकुल के पास एक विशेष सन्देश है जो गुरुकुल ने न केवल राष्ट्र को अपितु सारे संसार को देना है। वह सन्देश है आध्यात्मिक मूल्यों का, विज्ञान का प्रसार और पाखण्ड का खण्डन अर्थात् श्रेयस् और प्रेयस् का संगम।

इसी उद्देश्य को लेकर सन् १९०० में स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल की स्थापना की थी।

महर्षि दयानन्द राष्ट्र को मजबूत बनाना चाहते थे। वह जानते थे कि देश तभी सशक्त होगा जब सभी देशवासी सशक्त, सबल, हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी-ओजस्वी होंगे। वह देश की निर्बल, असहाय असमर्थ जनता को बलवान् स्वावलम्बी, समर्थ बनाना चाहते थे। अतः जहां एक ओर उन्होंने समाज सुधार के कार्यक्रम पर बल दिया, वहां व्यक्तिगत सुधार पर भी उन्होंने यथेष्ट जोर दिया।

उन्होंने ब्रह्मचर्य की महिमा समझी और आजन्म ब्रह्मचर्य के कठिन व्रत का पालन किया। सिद्ध को प्रमाण क्या? तभी वह ब्रह्मचर्य पालन पर सदैव जोर दिया करते थे। आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करना सबके लिये सम्भव नहीं। इसलिये उन्होंने कहा पहले २५ वर्ष तक प्रत्येक युवक को और १६ वर्ष तक प्रत्येक कन्या को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। इस अवस्था के बाद ही शादी होनी चाहिये।

वह चारों ओर देख रहे थे, छोटी उमर की शादियों का अभिशाप, नर पंगुओं की संख्या में

वृद्धि, बच्चों के कच्चों की उत्पत्ति । इसका उन्होंने कड़ा विरोध किया ।

आज भी अभी बाल विवाह बन्द नहीं हुये । उनके शिष्य हरविलास शारदा ने कानून बनवाया कि लड़की की शादी १८ वर्ष से पहले और लड़कियों की १४ वर्ष से पहले नहीं होनी चाहिये । लेकिन जनमत ने इसे पूर्णत: स्वीकार नहीं किया । बाद में शादी की आयु पुरुषों के लिये २१ और लड़कियों के लिये १८ कर दी गई; किन्तु जनमत की तैयारी न होने के कारण यह अभी कोरे कागजी कानून ही हैं । हां, कानून का कुछ न कुछ असर तो होता ही है । लेकिन कानून को सफल करने हेतु भविष्यद्रष्टा, आदर्शवादी, अग्रगामी समुदाय को सचेष्ट होकर जनमत तैयार करना होता है ।

स्वामी दयानन्द ने अपने कार्यक्रम को बढ़ाने हेतु आर्यसमाज को एक सक्रिय संस्था के रूप में जन्म दिया था । आर्यसमाज ने शुरु-शुरु में दयानन्द के कार्यक्रम को तेजी से आगे बढ़ाया । इसी हेतु स्वामी श्रद्धानन्द ने आज से ८४ वर्ष पूर्व गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की ताकि यहां से निकले हुये ओजस्वी स्नातक अच्छे ब्राह्मण, अच्छे क्षत्रिय और अच्छे वैश्य बने तथा देश के उद्धार में अपना योगदान दें । लेकिन विहंगम दृष्टि से देखा जाय तो जिस पौराणिकता, पाखण्ड और पोपलीला के विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने युद्धभेरी बजाई थी वह अभी भी देश में प्रचुर मात्रा में व्याप्त है । अतः उनके कार्यक्रम को गतिमान करने हेतु और अन्धकार के इन गढ़ों को मिटाने हेतु कृत संकल्प नवयुवक समुदाय की दयानन्द के वीर सैनिकों को बहुत आवश्यकता है और उनको तैयार करने का कार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का है ।

एक अन्य बात जिस पर स्वामी जी ने जोर दिया था, वह थी स्त्री शिक्षा । आज भी देहात में चले जाइये या दलित वर्ग के लोगों को देखिये, स्त्री शिक्षा का कतई अभाव है । स्त्रियां सुशिक्षित होंगी तभी देश का उद्धार होगा । इसी हेतु १८९५ में जालन्धर में आर्य कन्या महाविद्यालय एवं १९२३ में देहरादून में कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना हुई थी ।

बाल विवाह बन्द हो, स्त्री शिक्षा भरपूर हो, तो राष्ट्र क्यों न मजबूत होगा ?

ब्रह्मचर्य के साथ ही ऋषि दयानन्द ने यम-नियम के पालन पर भी जोर दिया था । यम पाँच है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह । नियम भी पांच है—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश प्रणिधान ।

ठीक है इनको धारण करना आसान नहीं है । लेकिन लक्ष्य सुनिश्चित हो, ध्येय स्पष्ट हो तो साधक साधना और अभ्यास करते करते लक्ष्य की ओर अग्रसर होता ही है । इसमें तो दो राय हो नहीं सकतीं कि यही मार्ग सन्मार्ग है, सुपथ है, अन्य नहीं ।

यही है गुरुकुल कांगड़ी का सन्देश जिसके प्रचार की देश बिदेश में आवश्यकता है। इस सन्देश को देश विदेश में पहुँचाने हेतु हमें दुभाषिये ही नहीं त्रिभाषिये, चतुर्भाषिये कर्मठ विद्वानों की आवश्यकता है, जो देश की अन्य भाषाओं में, विदेशी भाषाओं में वेद के इस अमर सन्देश का प्रचार करें।

इसी सन्दर्भ में आचार्य सत्यकाम विद्यालङ्कार ने गुरुकुल को वैदिक संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने की योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी के सम्मुख रखी, जिसे उन्होंने बहुत पसन्द किया।

स्वामी दयानन्द ने १८७५ में उद्घोष किया था, सुराज्य कितना भी अच्छा क्यों न हो, स्वराज्य से अच्छा नहीं हो सकता। इसी उद्घोष को १८९६ में लोकमान्य तिलक ने दोहराया जब उन्होंने कहा, स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है—मैं इसे लेकर रहूँगा। बस इसके बाद ५० वर्ष तक भारत स्वतन्त्रता संग्राम में जूझ गया और इस महायुद्ध में हजारों वीरों ने अपना सर्वस्व बलिदान किया। उन्होंने खून दिया, स्वतन्त्रता देवी प्रसन्न हुई। १५ अगस्त १९४७ को देश में स्वराज्य स्थापित हुआ।

उसको मूर्त रूप देने हेतु भारत की जनता ने अपने लिये नया संविधान बनाया जिसके अधीन २६ जनवरी १९५० से भारत का प्रशासन कार्यरत है।

लेकिन यदि आज की पीढी के नवयुवकों से पूछा जाय कि स्वतन्त्रता प्राप्ति में उसके पूर्वजों ने क्या कुर्बानियाँ दीं क्या यातनायें भोगीं तो थोडे बहुत को छोड़कर बहुत से तो शायद १० अमर शहीदों के नाम भी नहीं बतला सकते। इसी तरह २६ जनवरी का क्या महत्त्व है, इस प्रश्न का उत्तर भी बहुत लोग नहीं दे सकते।

इस कमी को दूर करने हेतु तथा भारत की स्वतन्त्रता एवं पुनर्जागरण के इतिहास को रचने हेतु गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ने अपनी छठी योजना में लाजपत राय पीठ प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव उक्त समिति के समक्ष रखा। इस पर भी बह सहानुभूति से विचार करेंगे ऐसा प्रकट हुआ।

हम विजिटिंग कमेटी के सदस्यों के आभारी हैं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एवं विद्यालय की गतिविधियों का गहराई से अध्ययन किया तथा इन कमजोरियों एवं क्षमताओं का मूल्यांकन किया। उन्होंने हरिद्वार की शैक्षणिक आवश्यकताओं का भी जायजा लिया और आशा की जाती है कि उनकी सिफारिश गुरुकुल के विस्तार में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

१९ मार्च ८४ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गोवर्धन ज्योति का विमोचन करते हुए महात्मा

आर्य भिक्षु जी ने कहा कि आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालक में गुणों की समृद्धि करें तथा अवगुणों को दूर करें, यही आचार्य गोर्वधन जी के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी। ज्ञातव्य है कि यह प्रतियोगिता प्रतिवर्ष संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर की ओर से आयोजित की जाती है। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा द्वितीय स्थान कन्या गुरुकुल कनखल ने प्राप्त किया।

इन दिनों आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी ने भी अंगड़ाई ली है। संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट की आर्थिक सहायता से आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी ने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे, तीसरे एवं छठे समुल्लास के सरलीकृत एवं लघुकृत संस्करण प्रकाशित किये। इसी प्रकार उन्होंने व्यवहारभानु के सरलीकृत संस्करण का प्रकाशन किया। इसमें राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, तथा गुरु, शिष्य नागरिकों के परस्पर व्यवहार की मर्यादाओं का दिग्दर्शन किया है। इन तीनों पुस्तिकाओं का प्रकाशन इस आशा से किया गया है कि स्वामी जी के विचार हर घर तक पहुँचे। इसी ध्येय को लेकर स्वामी जी ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज गुरुकुल काँगड़ी का प्रयास प्रशंसनीय है और आशा है अब यह समाज नवचेतना की ओर अग्रसर होगा।

यह प्रसन्नता का विषय है कि पद्मश्री विनयचन्द्र मौद्गिल्य, प्राचार्य गन्धर्व महाविद्यालय नई दिल्ली जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल में ही हुई थी ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को संगीत शिक्षा की ओर प्रेरित करने हेतु अपनी अमूल्य सेवायें गुरुकुल को प्रदान की हैं, इस शृंखला में उन्होंने गत सप्ताह तीन दिन का गुरुकुल में प्रवास किया तथा गुरुकुल के चुने हुये ब्रह्मचारियों को सस्वर वेदमन्त्र एवं अन्य गीत सिखाये।

यह भी प्रसन्नता का विषय है कि आचार्य सत्यकाम जी जिन्होंने ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया है को गुरुकुल की कार्यपरिषद् ने मानद प्रोफेसर के रूप में कार्य करने हेतु आमन्त्रित किया है और आर्य विद्या सभा ने भी उन्हें गुरुकुल विद्यालय के आचार्य पद पर नियुक्त कर दिया है। उनके आगमन से ब्रह्मचारियों की शिक्षा दीक्षा के कार्यक्रम को यथेष्ट बल मिला है।

इस वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय ने उन्हें विद्यामार्तण्ड की मानद उपाधि से विभूषित किया है और संघड़ विद्या सभा जयपुर ने उन्हें आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार १९८४ से अलंकृत किया है।

राष्ट्रीय सेवा योजना वृत्तांत

(द्वितीय शिविर, १९८३-८४)

–डॉ० बी० डी० जोशी,
विभागाध्यक्ष, जन्तु विज्ञान
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

शिविर स्थल– पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम, जि० बिजनौर।

शिविर काल– दिनांक २२ दिसम्बर ८३ से ३१ दिसम्बर ८३ तक।

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी रा० से० यो० का विशेष वार्षिक शिविर पुण्य भूमि, कांगड़ी ग्राम में लगाना निश्चित हुआ था। वस्तुतः मातृ ग्राम कांगड़ी अब गुरुकुल विश्वविद्यालय की रा० से० यो० ईकाई द्वारा वार्षिक एवं सामान्य कार्य कलापों के लिए एक अंगीकृत ग्राम है। इस कैम्प में भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या निम्नवत् थी—

(१)	विज्ञान महाविद्यालक छात्र	सं०	४३
(२)	वेद तथा कला महावि०	,,	०४
(३)	स्थानीय युवक	,,	०६
(४)	अध्यापक गु० कां० विश्वविद्यालय		०१
		योग	५४

दिनांक २१-१२-८३ को डॉ० बी० डी० जोशी के नेतृत्व में रा० से० यो० के छात्रों का दल पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम पहुँचा इसी दिन सायंकाल प्रोग्राम को ओर्डीनेटर श्री वीरेन्द्र अरोड़ा जी भी व्यवस्था देखने हेतु वहां आए। २१ दिसम्बर ८३ को कैम्प स्थापित हुआ। २२-१२-८३ को छात्रों ने नियत कार्य–क्रमानुसार प्रातःकाल से ही अपना कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। छात्रों ने गंगा की धारा के ऊपर नदी के पत्थरों का अस्थायी मार्ग निर्माण किया और सायंकाल को छात्र जंगल में लकड़ी बिनने के लिये गये पर यहां पर पाया कि जंगल मुख्यतः खैर का है। अतः तब यह निश्चय किया गया कि लकड़ी लकड़हारों से ही खरीदी जाएगी। दिन भर छात्रों ने शिविर स्थल की सफाई अभियान सा चला दिया। सायंकाल को विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बी० के० हूजा, प्रो० एल० आर० शाह एवं श्री वीरेन्द्र अरोड़ा जी पधारे। श्री हूजा जी के सभापतित्व में ही एक छोटी सी गोष्ठी का आयोजन

गत दिनों पुण्य भूमि कांगड़ी ग्राम में आयोजित राष्ट्रीय सेवा योजना शिविर में लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ का आगमन हुआ-

बलराम जाखड कुलपति श्री हूजा जी से पुण्य भूमि कांगडी ग्राम विकास के विषय में जानकारी प्राप्त कर रहे हैं, साथ में डॉ० विजयशंकर, (अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग एव निदेशक, कांगड़ी ग्राम विकास योजना) तथा डॉ० बी० डी० जोशी (अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग)
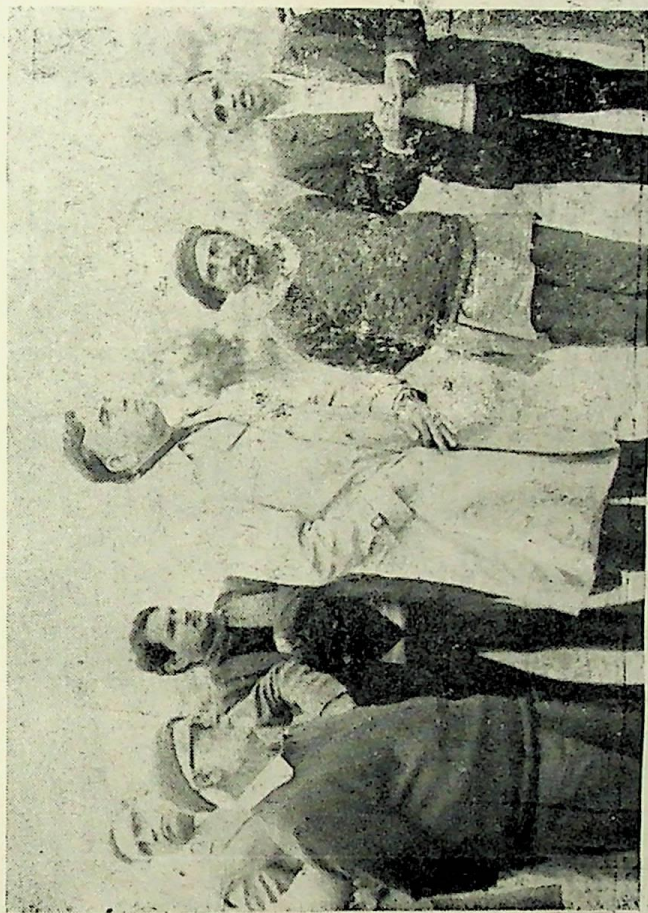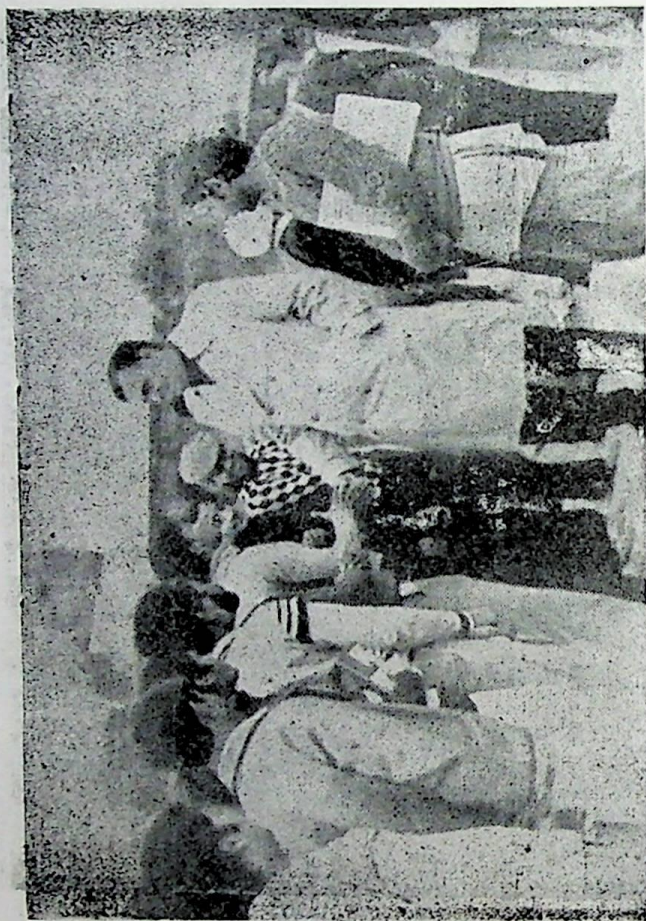
बलराम जाखड़ छात्रों से व्यक्तिगत परिचय करते हुए साथ में
डॉ० बी० डी० जोशी (प्रोग्राम ऑफिसर-राष्ट्रीय सेवा योजना)

किया गया। श्री वीरेन्द्र अरोड़ा ने प्रो० एल० आर० शाह भू० पू० निदेशक रा० से० यो०, भारत सरकार का छात्रों को परिचय दिया। गोष्ठी को प्रो० शाह एवं श्री हूजा जी ने भी सम्बोधित करते हुए छात्रों को कक्षाओं से बाहर की दुनियां विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में आकर कार्य करने की प्रेरणा दी। अन्त में डॉ० बी० डी० जोशी ने अतिथियों का धन्यवाद किया।

२३-१२-८३ को शिविर का औपचारिक उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ। प्रो० शाह मुख्य अतिथि ने समारोह का शुभारम्भ वैदिक हवन द्वारा किया। समारोह को प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा, डॉ० जबरसिंह सेंगर कुलसचिव, नजीबाबाद के बी० डी० ओ० श्री राव, डॉ० विजयशंकर अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान विभाग, छात्र प्रतिनिधि श्री मनोज कुमार, डॉ० बी० ड़ी० जोशी, कुलपति श्री हूजा जी, आयुर्वेद महावि० के प्राचार्य डॉ० सुरेशचन्द्र शास्त्री एवं मान्य मुख्य अतिथि प्रो० शाह द्वारा सम्बोधित किया गया। प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा ने गुरुकुल में रा० से० यो० को स्थापित कराने में कुलपति जी एवं प्रो० शाह द्वारा की गयी प्रेरणाओं का उल्लेख किया। डॉ० बी० डी० जोशी ने शिविर के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। डॉ० शास्त्री ने छात्रों को शिविर के अलावा भी कार्य करते रहने की प्रेरणा दी। प्रो० शाह ने छात्रों को ग्राम्य पर्यावरण, वन संरक्षण एवं समाज सेवा के प्रति विशेष रूप से जागरूक रहने के लिए कहा। कुलपति जी ने मान्य मुख्य अतिथि को धन्यवाद दिया। समारोह के समस्त कार्यों का संचालन प्रो० बी० डी० जोशी द्वारा ही किया गया।

समारोह में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्राध्यापकगण, छात्रों, कांगड़ी ग्रामवासियों एवं जिला बिजनौर के अनेक अधिकारियों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। समारोह का अन्त वैदिक शान्ति पाठ के मन्त्रों द्वारा हुआ। अन्त में सभी आमन्त्रित एवं सम्मिलित जनता को जलपान कराया गया। दि० २३-१२-८३ को माननीय कुलपति श्री हूजा जी ने रात्रि में शिविर स्थल में ही रहने का प्रोग्राम बनाया। रात को कुलपति जी ने छात्रों के साथ ही मिलकर भोजन किया और तब रात्रि को छात्रों एवं ग्रामवासियों द्वारा मिल-जुलकर मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

दि० २४-१२-८३ को प्रातः दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होने के बाद श्री कुलपति जी के निर्देशन में छात्रों ने ग्राम कांगड़ी में सेवा योजना का कार्य प्रारम्भ किया। गांव के कुएं (जो बन कर पिछले दो सालों से अपने चारों ओर मिट्टी भर जाने और चबूतरा बनने की प्रतीक्षा में आकाश ताक रहा था) के चारों ओर भरान का कार्य शुरु किया। कुलपति जी ने स्वयं पत्थर उठाकर खाली जगह भर कर कार्य का शुभारम्भ किया। छात्रों ने मिट्टी खोदकर बुग्गियों में मिट्टी ढो-ढो कर कुएं के चारो ओर गड्ढ को भरना आरम्भ किया। पूर्वाह्न में ही विश्वविद्यालय से डॉ० जबरसिंह सैंगर, प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा, श्री देशराज जी (स० मुख्याधिष्ठाता) भी कार्य स्थल आ पहुँचे। ग्राम विकास अधिकारी श्री

शराफत अली ने ग्रामवासियों का वांछित सहयोग लेने की पूर्ण सहायता की। मध्याह्न में भोजन के समय जिला बिजनौर के विकास अधिकारी एवं बी० डी० ओ० श्री राव भी आए। उनका भी भोजन द्वारा स्वागत किया गया। कैम्प में दिये जा रहे भोजन व्यवस्था आदि से सभी बड़े प्रभावित रहे। सायं को प्रो० वीरेन्द्र अरोडा शिविर में ही रात भर रुकने का प्रोग्राम बना चुके थे कि रात ८ बजे उनके घर से सन्देश आया कि उनकी पूज्य सास स्वर्ग–सिधार गयी हैं। अतः उन्हें तुरन्त वापस आना पड़ा। सायंकाल को कुलपति जी ने छात्रों के साथ बैठकर एक विचारगोष्ठी का आयोजन करवाया। छात्रों से अनेक विषयों पर सीधा विचार विमर्श किया गया और कुलपति जी ने स्व धर्म क्या है? हिन्दू धर्म क्या है? छात्रों के क्या-क्या कर्त्तव्य हैं, जैसे गम्भीर विषयों पर छात्रों को बड़े रोचक ढंग से और सरल भाषा में उद्‌बोधित किया। रात्रि भोजन के बाद ही वर्षा प्रारम्भ हो गई। मौसम अत्यन्त शीत और कठिन हो गया।

२५-१२-८३ को प्रातःकाल से ही वर्षा होती रही फिर भी छात्रों ने प्रातःकालीन व्यायाम आदि किया और फिर कुलपति जी के साथ बैठकर विचार गोष्ठी की। मध्याह्न में वर्षा में ही कुलपति जी गुरुकुल को प्रस्थान कर गये। अपराह्न में कुछ छात्रों ने ग्राम कांगड़ी में जाकर सामाजिक सर्वेक्षण का कार्य किया। श्री कुलपति जी ने उसी दिन विश्वविद्यालय के ही अन्य साथी प्रवक्ता श्री कौशल कुमार (रसायन शास्त्र) को भी शिविर स्थल आने की प्रेरणा दी और श्री कौशल जी वहां २५ एवं २६ दिसम्बर को रहे।

२६-१२-८३ का यह दिन बहुत महत्त्वपूर्ण था। दोपहर तक छात्रों ने गुरुकुल कांगड़ी में नियमित कार्य किया। मार्ग ठीक किये। गलियों में झाड़ू लगाया और कुएं पर भी कार्य किया। अपराह्न में ३-३० पर श्री बलराम जी जाखड़, अध्यक्ष लोकसभा, शिविर स्थल में आए। उनके साथ हरिद्वार एवं बिजनौर क्षेत्रों के अनेक जिला अधिकारी भी शिविर स्थल तक आए। श्री जाखड़ शिविर स्थल के चुनाव एवं वहां की सुन्दर व्यवस्था से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने छात्रों को विशेषतः शहरी छात्रों को ग्राम्याचलों में जाकर देश की समस्याओं को समझाने और सहयोग देने के लिये प्रेरणा दी। श्री जाखड़ की सहज मृदुलता से छात्र भी बहुत प्रभावित हुए। श्री जाखड़ ने प्रत्येक छात्रों का व्यक्तिगत परिचय लिया। श्री जाखड़ का पहले से ही ग्राम कांगड़ी में आने का कोई पूर्व निर्धारित कार्यक्रम नहीं था। हमारे कुलपति जी की ही उनको यह अत्यन्त शुभ प्रेरणा थी कि वह भी ऋषि श्रद्धानन्द जी की तपस्थली तक आए।

२७-१२-८३ को छात्रों ने तसलों और बुग्गियों मे रेत और मिट्टी ढोई और कुएं के चारों ओर भराई के कार्य को जारी रखा। सायंकाल को छात्रों ने ग्राम में घर-घर जाकर स्वास्थ्य एवं सामाजिक सर्वेक्षण का कार्यक्रम किया।

२८-१२-८३ शिविर एवं कांगड़ी ग्राम के इतिहास का एक विशेष दिन था। उ० प्र० सरकार के कृषि उत्पादन आयुक्त (ए० पी० सी०) श्री वेंकट नारायनन महोदय प्रातः ९-३० बजे शिविर स्थल में पधारे। कुलपति जी ने स्वयं घूम-घूम कर उन्हें शिविर स्थल का पूरा परिचय एवं इतिहास बताया। श्री नारायनन भी स्थल के चुनाव से बहुत प्रभावित हुए। उनके साथ बिजनौर जनपद के जिला अधिकारी, एस.डी.एम., बी.डीओ., विकास अधिकारी आदि अनेक प्रमुख अधिकारीगण भी पहुँचे थे। इसी दिन एक छोटी सी सभा का आयोजन किया गया। डॉ० जोशी ने रा० से० यो० द्वारा किये गये कार्यों पर प्रकाश डाला। इस दिन की व्यवस्था में डा० विजय शंकर जी एवं डॉ० कश्मीरसिंह भिण्डर का बड़ा योगदान रहा। डॉ० श्यामनारायणसिंह जी ने भी फोटोग्राफी आदि में अपना विशिष्ट योगदान दिया। सभी अतिथियों का सूक्ष्म जलपान से स्वागत किया गया। तत्पश्चात् छात्रों सहित सभी लोग ग्राम कांगड़ी के कार्य स्थलों तक गए। वहाँ ए. पी. सी. महोदय ने पूरे गाँव का भ्रमण किया और गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एवं रा०से०यो० के सहयोग से हो रहे कार्यों की सराहना की। गांव के प्राइमरी स्कूल के प्रांगण में एक सभा की गयी और डा० विजय शंकर जी ने सभा को संबोधित किया। इस कार्यक्रम के उपरान्त छात्रों ने गांव के अनेक कुओं के चारों ओर सफाई की। हौदियों को भी साफ किया और प्रयोग के योग्य बनाया। गांव में नालियों का भी निर्माण किया गया।

२९-१२-८३ को छात्रों का अधिकांश अवकाश रहा तथा छात्रों ने गांव में जाकर सामाजिक सर्वेक्षण कार्य किया।

३०-१२-८३ को छात्रों ने कुएं के चारों ओर की सफाई तथा अन्य कार्यों को अन्तिम रूप दिया और पूर्ण रूप से कुएं को भी प्रयोग योग्य बना दिया अब उसके ऊपर छत लगना और चबूतरे को पक्का करने का कार्य शेष रह गया है। ३०-१२-८३ को छात्रों ने लगभग २० बुग्गियां पत्थर नदी से ढोये और कुएं के चारों और भरे। उक्त तिथि को ही विज्ञान महाविद्यालय के दो प्राध्यापक प्रो० ग्रोवर एवं प्रो० गुलाटी जी भी दिन भर छात्रों के साथ रहें।

३१-१२-८३ को शिविर का अन्तिम दिन था। प्रातः १० वजे से ग्राम कांगडी की पाठशाला के प्रांगण में समापन समारोह प्रारम्भ हुआ। मुख्य अतिथि श्री दर्शनसिंह जी (आई० ए० एस०) बिजनौर के जिलाधीश महोदय थे। सभा का संचालन डा० विजय शंकर जी ने किया। समारोह का शुभारम्भ वैदिक हवन द्वारा हुआ। तत्पश्चात् माल्यार्पण द्वारा जिलाधीश महोदय का स्वागत किया। डा० जोशी ने शिविर में किए गए कार्यों का उल्लेख किया। नजीबाबाद के परगनाधिकारी श्री त्यागी, ग्राम सेवक प्रशिक्षण के प्राचार्य श्री श्रीवास्तव जीं, कुलपति जी, डा० काश्मीरसिंह जी, डा० सेंगर (कुलसचिव जी) ने सभा को सम्बोधित किया। जिलाधिकारी श्री सिंह ने कुलपति जी के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि देश को आज ऐसे ही कर्मठ और अत्यन्त

क्रियाशील बुजुर्गों को आवश्यकता है जिनके नेतृत्व में हम लोग बढ़े। उन्होंने छात्रों से कहा कि वह अपने बुजुर्गो एवं गुरुजनों का सम्मान करें। ग्रामवासियों को उन्होंने सजग होकर सहयोग देने को कहा। उन्होंने वायदा किया है कि वह कुलपति जी के आशीर्वाद को लेकर कांगड़ी ग्राम की हर योजना को अपनी पूरी–२ सहायता देगें। अन्त में डा० काश्मीरसिंह जी ने सभी के प्रति धन्यवाद किया। शान्ति पाठ और जलपान के बाद समारोह समाप्त हुआ। दोपहर का भोजन होते–२ दो बज चुके थे। तब छात्रों ने ट्रेक्टर ट्राली पर वापसी हेतु अपना सामान लादा और मातृ-भूमि कांगड़ी की पुण्य स्थली को नमन कर शिविर समाप्त कर लौट आये।

उपसंहार–

इस सत्र का यह शिविर अत्यन्त सफल रहा। शिविरार्थी छात्रों को राष्ट्र के अनेक उच्चतम एवं सफल प्रशसनिक एवं राजनैतिक व्यक्तियों को निकट से देखने सुनने का अवसर मिला। ग्राम की की समस्याओं को छात्रों ने करीब से समझा और अपने सहयोग से कुएं, चबूतरे, नालियों को अन्तिम रूप दिया। सफाई की गयी। सर्वेक्षण से ग्राम्य समस्याओं और ग्राम कांगड़ी की बढ़ती सम्पन्नता का सबको परिचय दिया। इस सबके प्रेरणा स्रोत निश्चय ही हमारे कुलपति श्री हूजा जी हैं।

आभार–

शिविर में जाना तो प्रोग्राम अधिकारी का कर्त्तव्य ही होता है पर शिविर को सफलता का श्रेय मेरा अपना नहीं अपितु मेरे शिविरार्थियों के उत्साह पूर्ण सहयोग एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्व–विद्यालय के प्रशासनिक अधिकारियों एवं अनेक सहयोगी प्राध्यापकों को जाता है। मुख्यत: मैं, कुलपति जी को, कुलसचिव जी, वित्ताधिकारी श्री बी० एम० थापर, विज्ञान म० वि० के प्राचार्य श्री सुरेशचन्द्र त्यागी उप–कुलसचिव श्री श्यामनारायणसिंह जी, क्रीड़ाध्यक्ष श्री ओ० पी० मिश्र, वनस्पति विज्ञान के विभागाध्यक्ष डा० विजय शंकर जी, कैप्टन की देशराज जी, डा० काश्मीरसिंह जी, प्रो० ग्रोवर जी, प्रो० गुलाटी जी, प्रो० कौशल कुमार जी एवं श्री करतारसिंह जी को अपने हार्दिक आभार प्रेषित करता हूं। इन सबके अमूल्य सहयोग के बिना मैं सफल न होता। अन्त में अपने प्रोग्राम को ओर्डीनेटर प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा के प्रति स्नेह आभार व्यक्त करता हूं जो हमेशा की तरह बराबर मेरा साथ देते रहे। हमें और हमारे सभी छात्रों एवं रा० से० यो० के शिविर से संबन्धित सभी अधिकारियों को दु:ख है कि उन्हें परिवार के संबन्धी की आकस्मिक निधन का शोक सहन करना पड़ा और फल स्वरूप वह शिविर के अंतिम दिनों में साथ न रह सके। रा० से० यो० के सदस्यों की हार्दिक संवेदना उनके साथ है।

ओ३म्—शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

गतांक से आगे

ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी

डॉ० रामेश्वर दयाल गुप्त

किसी ज्ञान के संचय को ईश्वरीय कहा जा सके उसके लिए उसमें निम्न विशेषताएँ होनी चाहियें—

१— सृष्टि के प्रारम्भ से ही वह ज्ञान होना चाहिये क्योंकि उसकी आवश्यकता हर समय है। मनुष्य जाति उसी से प्रेरणा लेती है।

२— उसमें इतिहास न हो अर्थात् किसी काल विशेष के सत्य को ही स्थान नहीं वरन् त्रिकाल व्यापी सत्य का स्थान हो।

३— किसी देश विशेष से लगाव या उसका वर्णन न हो।

४— उनकी भाषा प्राकृत हो बनावटी नहीं।

५— उसमें सच्चा साहित्य हो तथा पूर्ण ज्ञान हो और वह मनुष्य जाति का उन्नायक हो।

६— उसमें पूर्वापर विरोध न हो।

७— उसमें सृष्टिगुण के विरुद्ध असंगतियाँ न हों।

८— उसमें प्रक्षेप न हों।

९— उसमें पुनरुक्ति न हो।

१०— उसकी अन्तः साक्षी हो।

११— आप्त जनों ने उसे ऐसा माना हो।

चूंकि आदि मानव अमैथुनी सृष्टि से बना था उसमें संस्कार (अन्य ज्ञान) नहीं था, उसके पथ प्रदर्शन के लिए वह तभी से होना चाहिए जब से आदि मानव पृथ्वी तल पर अवतरित हुआ हो।

सृष्टि के साथ नियम शास्त्र की आवश्यकता—

जिस प्रकार भूगोल और भूमि का चित्र भूमि के प्रत्येक भाग को समझने के लिए आवश्यक है उसी प्रकार सृष्टि रूपी चित्र के साथ वेद रूपी सृष्टि नियम शास्त्र हैं। जगत् निवासियों के जीवनों को ऊंचा बनाने वाले नियम भी हों जिन से न केवल जगत् की जानकारी हो, अपितु जगत् को अच्छा और शान्तिप्रद बनाने की मर्यादाओं का भी ज्ञान हो।

सम्मति

पुस्तक का नाम :–गोवर्धन ज्योति चतुर्थ रश्मि (दयानन्द का राजनैतिक दर्शन)
प्रस्तुत कर्ता :–श्री बलभद्र कुमार हूजा
प्रकाशक का नाम :–आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, प्रधान आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार। मूल्य–श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय

इस पुस्तिका में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में राज–धर्म के बारे में महर्षि के उपदेश अथवा व्याख्यान को संक्षेप में संकलित किया गया है जिसका श्रेय गुरुकुल काँगड़ी के वर्तमान कुलपति और जयपुर की संस्था संघड़ विद्या सभा के अध्यक्ष श्री बलभद्र कुमार हूजा को है। जैसा कि सब जानते हैं कि राजस्थान की रंगीली वीरभूमि महर्षि दयानन्द के अन्तिम संघर्षमय जीवन की रंगभूमि रही थी। वो एक देशी राज्य से दूसरे देशी राज्य, एक घराने से दूसरे घराने, एक नगर से दूसरे नगर आते जाते रहे और अपने प्रवचनों तथा व्याख्यानों से उन्होंने सैंकड़ों–हजारों लोगों को अनुगृहीत किया। स्वाभाविक ही था कि राजा-महाराजाओं के सम्पर्क में आने के कारण और उस समय समस्त राजाओं के दरबार में, राजमहल में जो बातावरण उन्होंने देखा उसके बारे में वे अपनी अनुभूतियों को किसी न किसी प्रकार से अवश्य ही प्रकाश में लाते।

दयानन्द के बिचारों के स्रोत तो हमेशा ही रहे हैं इसलिए राज–धर्म की शिक्षा–दीक्षा देने के बारे में भी महर्षि दयानन्द ने वेदों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों की ही शरण ली और वहीं से ही प्रेरणा पाकर उन्होंने अपने उस समय के राजाओं के सामने उपदेश प्रस्तुत किये। इस प्रकार यदि हम देखें तो सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में संकलित वेद–वाणी तथा मनुस्मृति या अन्य ग्रन्थों की रचनाओं के द्वारा हमें प्राचीन युग के शासन की शैलियों, पद्धतियों और विचारधाराओं का परिचय तो मिलता ही है लेकिन साथ ही हमें ये अवसर भी मिलता है कि हम यह जानकारी प्राप्त कर सकें कि अपने जीवन काल में महर्षि दयानन्द ने समकालीन समाज और शासन में क्या कम–जोरियां अथवा बिसंगतियां देखीं जिन्हें सुधारने या दूर करने के लिए उन्होंने राजा– महाराजाओं को प्राचीन आर्य युग की परम्पराओं और शिक्षाओं की याद दिलाई।

दयानन्द ने राज–धर्म की व्याख्या करते हुए इस बात पर काफी जोर दिया कि राजा को उस समय की सभा अथवा प्रजा के आधीन रहना चाहिए और सभा और प्रजा की मनोतियों या मान्यताओं की

ओर पूरा ध्यान देना चाहिये । राजा अथवा शासन न्याय का पालन करे, प्रजा का रक्षक हो । धर्म और काम की सिद्धि को बढ़ाये, दुखी और आपत् ग्रस्त पुरुषों की सहायता करे इत्यादि । इन बातों की ओर जब महर्षि दयानन्द ने ध्यान दिलाया तो ऐसा लगता है कि शायद उन्हें अपने समकालीन समाज और शासन प्रणाली में अपने राज अथवा अच्छे शासन के उपरोक्त गुणों की कमियां अखरती थीं। शायद यही उनकी मान्यता भी थी इसलिए उन्होंने प्राचीन वेद ग्रन्थों इत्यादि से ये शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त की और राजा या शासक पक्ष को समझाने को कोशिश की । राजा के मन्त्री कैसे हों, इसके बारे में भी महर्षि ने काफी विस्तार से लिखा और मनु–स्मृति के कुछ अंशों का विश्लेषण किया ।

यदि हम महर्षि दयानन्द को केवल एक माध्यम के रूप में लें जिनके द्वारा प्राचीन आर्य काल के शासन के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों की गत शताब्दी के अन्तिम अर्द्ध में पुनरावृत्ति की गयी थी तो शायद हमें इस दिशा में उनको विशेष देन का अच्छा–खासा आभास मिल सकता है। दूसरे शब्दों में यद्यपि दयानन्द सरस्वती न तो राजनीतिज्ञ थे, न राजनीति के शास्त्री; लेकिन उनके मन में नवीन भारत और विशेष रूप से देशी राज्यों के विकास और भविष्य तथा लोक कल्याण पर आधारित शासन पद्धति की जो कुछ कल्पनाएं थीं वो इस समुल्लास में उभरकर सामने आती हैं। अनेक विषयों पर उनके उपदेश और शिक्षाप्रद मत आज भी अनमोल हैं और हमारे आज के शासकों का दिशा बोध करा सकते हैं । परोपकार, प्रजा की सेवा और रक्षा तथा प्रजा के प्रति उत्तरदायी होने के राजकीय कर्त्तव्यों की याद दिलाने के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द को इस बात का भी श्रेय मिलता है कि उन्होंने स्वदेश में "स्वराज्य" और "सुराज्य" दोनों ही के सिद्धान्तों का प्रतिपादन अथवा पुनः स्थापन सबसे पहले किया ।

आशा है यह प्रयास जनसाधारण को स्वामी दयानन्द के विचारों से अवगत करने में महत्त्व–पूर्ण योगदान देगा । कार्य महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय है इस प्रकार की छोटी–छोटी पुस्तिकाओं के माध्यम से स्वामी जी के विचारों को आज के समाज में प्रचार करने की महती आवश्यकता है ।

–भूपेन्द्र हूजा

पुस्तक के सम्बन्ध में

पुस्तक का नाम—वर्ड पर्सपेक्टिव ऑन स्वामी दयानन्द सरस्वती
लेखक का नाम—डॉ॰ गंगा राम गर्ग

सप्रेम नमस्ते।

प्रियवर, डॉ० गंगाराम जी !

आजकल मैं आपकी लिखी पुस्तक Wold Perspectiyes on Swami Dayananda Saraswati पढ़ रहा हूं। आपने जो अगाध परिश्रम किया है और न जाने कहां-कहां से संग्रह किया है, वह आर्य समाज की ही नहीं, ऋषि दयानन्द के समय के इतिहास की मूर्त झांकी है। आर्य समाजी अपने व्याख्यानों में जो सुने-सुनाये और रटे-रटाये उद्धरण दिया करते हैं, उन सबकी ही नहीं उससे अधिक की प्रामाणिकता आपके इस ग्रन्थ में मिल जाती है। ऐसा ग्रन्थ तैयार करने में आप सचमुच धन्यवाद के पात्र हैं।

आपका

सत्यव्रत

W–७७ A, ग्रेटर कैलाश (१)
नई दिल्ली—४८
२०–२–१९८४

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम—"वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त"
लेखक का नाम—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
प्रकाशक का नाम—मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
मूल्य —तीन खण्डों में पूरा सेट २४० रु०

वेद भारतीय धर्म एवं संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ हैं। सम्पूर्ण चिन्तन विशेष रूप से 'भारतीय चिन्तन' का आधार वेद ही रहे हैं। ज्ञान के आगार वेदों में मानव के लिए कल्याण प्रदान करने वाले आध्यात्मिक एवं भौतिक तत्त्वों का समावेश भी हुआ है। वस्तुतः वेद मात्र आध्यात्मिक ही संदेश नहीं देते अपितु सामाजिक विज्ञान के भौतिक तत्त्वों की ओर भी संकेत करते हैं। यद्यपि वेदों का विविध दृष्टि कोणों से भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अध्ययन एवं विश्लेषण हुआ है तथा हो रहा है तथापि आज के इस वैज्ञानिक युग में वेदों में सामाजिक विज्ञानों की दृष्टि से भी वेदों के अध्ययन की महती आवश्यकता है। राजनीति इस लोकतांत्रिक युग में मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति वेदों के उद्भट विद्वान् एवं मर्मज्ञ आचार्य प्रियव्रत जी ने 'वेदों में वर्णित राजनीतिक सिद्धान्त' नामक इस मौलिक ग्रन्थ का सृजन करके वैदिक अध्ययन की दिशा में एक नयी कड़ी को जोड़ा है। आचार्य जी ने इस ग्रन्थ में वेदों में वर्णित राजनीतिक सिद्धान्तों को मार्मिक एवं मौलिक रूप में पाठकों के सामने रखा है। प्रयास स्तुत्य एवं अनुकरणीय है।

इस ग्रन्थ को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है—प्रथम खण्ड–संविधान काण्ड, द्वितीय–अभ्युदय काण्ड, तृतीय–प्रतिरक्षा काण्ड। प्रथम खण्ड ७४४ पृष्ठों में लिखा गया है जिसमें २४ अध्याय हैं। तथा राज्य संस्था का विकास, मातृभूमि की भावना राजा का चुनाव, उसका राज्यकाल, राष्ट्रीयता, स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति मन्त्रिमण्डल, न्याय-विभाग, राज्याभिषेक आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर वेदों के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन किया है। संक्षेप में यह खण्ड मांडलिक राज्यों के निर्माण से लेकर चक्रवर्ती राज्य के निर्माण के विषय में वेद के विचारों का प्रतिपादन करता है। द्वितीय खण्ड लगभग ५०० पृष्ठों में विस्तार को प्राप्त हुआ है। इस खण्ड को २६ अध्यायों में विभक्त करके वेद विषयक कृषि, नहरें, गोपालन, पशुपालन, सड़कें, पुल, व्यापार, उद्योग-धन्धे, शिल्पकला, स्वास्थ्य, शिक्षा, विवाह आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार किया है। संक्षेप में इस खण्ड में प्रजा किस प्रकार

अपने जीवन को सुखी एवं समृद्धिशाली बनाये, इस विषय में वेद के विचारों को प्रतिपादित किया गया है। तृतीय खण्ड २५६ पृष्ठों में लिखा गया है। इस खण्ड में राज्य के महत्त्वपूर्ण अंग रक्षा विभाग–सेनाओं के संगठन, संचालन, शस्त्र-अस्त्र एवं युद्धनीति आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर २४ अध्यायों में वेद प्रतिपादित विचारों को प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य जी का यह प्रयास एक दो वर्ष का नहीं अपितु लगभग ४८ वर्षों के कठिन परिश्रम का फल है। वेदों में स्थान-स्थान पर सूत्र रूप में वर्णित राजनीति–विज्ञान के तत्त्वों का विश्लेषण करके इस मौलिक ग्रन्थ की रचना की गई है। यह ग्रन्थ वेदों के एवं राजनानि के प्रत्येक अध्येता के लिये संग्रहणीय है। कवर पृष्ठ, जिल्द तथा कागज भी अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है।

-राकेश शास्त्री

□

७५ वर्ष पूर्व गुरुकुल वृत्तांत—

स्वामी श्रद्धानन्द जी की लेखनी से

प्रस्तुतकर्ता—जगदीश प्रसाद विद्यालङ्कार

नये ब्रह्मचारियों के चुनाव के लिये निम्नलिखित नियम स्थिर कर दिये गये हैं जिन महाशयों के पास गुरुकुल कार्यालय से पत्र न भी पहुँचे और वे पहिले किसी बालक के प्रवेशार्थ प्रार्थना पत्र भेज चुके हों, तो उनको इन्हीं नियमों के अनुकूल कार्यवाही करनी चाहिये।

१. सब प्रार्थियों को अपने बालकों को साथ लेकर गुरुकुल भूमि में २४ से २७ दिसम्बर तक पहुँच जाना चाहिये। २४ दिसम्बर से प्रथम यहां उनके आराम का कोई प्रबन्ध न होगा और २७ दिसम्बर के पश्चात् आये हुये बालक का चुनाव में सम्मिलित होने का कोई अधिकार ही न होगा।

२. जिन बालकों को किसी शारीरिक तथा मानसिक त्रुटि के कारण अस्वीकार किया जावेगा उनको फिर कोई आशा न रखनी चाहिये, किन्तु जो बालक केवल मुकाबिले में अस्वीकार किये जावेंगे उनके लिये मुल्तान के शाखा गुरुकुल में लिये जाने की आशा हो सकती है शाखा गुरुकुल मुलतान का

निर्वाचन मास जनवरी के अंतिम सप्ताह में या उसके लगभग होगा। ३. २८ दिसम्बर से बालकों की परीक्षा निर्वाचन उपसभा आरम्भ करेगी और ३० दिसम्बर तक निर्वाचन समाप्त हो जायेगा। ४. जो बालक प्रवेशार्थ चुने जायेंगे, यदि उनकी पढाई के लिये १५०० नहीं दिया गया, उनके संरक्षकों को ४० रू० पेशगी तथा एक मास का शुल्क ३१ दिसम्बर तक देकर लौटने की आज्ञा होगी ५. जो संरक्षक १५०० रु० देने को उद्यत हों उनको रुपया अपने साथ लाना चाहिये। ६. प्रत्येक संरक्षक को एक दरी, दो श्वेत चादरें तथा ओढने की रजाई अपने बालक के लिये साथ लानी चाहियें अन्य नये वस्त्र सब यहां से दिये जायेगें। वेदारम्भ के समय ओढने-बिछाने के सब वस्त्र भी नए दिये जायेंगे। ७. इस वर्ष सभा ने निश्चय कर दिया है कि ३० से अधिक एक छात्र पन्द्रह सौ रूपये एकदम दाखिल होने पर ही लिये जायेगें आशा है कि सर्व महाशय इन नियमों को ध्यान में रखकर आने का विचार करेंगें।

गुरुकुल का सातवां वार्षिकोत्सवः—फाल्गुन शुक्ला एकादशी अर्थात् २ मार्च सं० १९०९ ई० से आरम्भ होकर ७ मार्च अर्थात् पूर्णिमा तक रहेगा २, ३. ४. मार्च को साहित्य परिषद् का वार्षिकोत्सव होगा जिसके साथ ही सरस्वती सम्मेलन का उत्सव मनाया जावेगा। इस वर्ष दो निबन्ध संस्कृत में तथा एक निबन्ध आर्य भाषा में पढ़े जायेंगे निबन्ध कर्ताओं के नाम तथा विषयों की सूचना भी ज्ञात होने पर पहिले से ही मुद्रित की जायगी। ५-६ मार्च को व्याख्यानादि होंगे और ७ मार्च को वेदारम्भ संस्कार की विधि की जायेगी। गुरुकुल की कार्यकारिणी सभा (पंजाब आर्य प्रतिनिधि की अंतरंग सभा) ने यदि इस वर्ष भी किराये की रियायत लेनी आवश्यक समझी और ले ली तो सर्व साधारण को उस समय समाचार पत्रों द्वारा सूचित किया जायेगा।

साहित्य परिषद् का ऊपर कथन आ चुका है इसलिये यहां यह बतलाने की आवश्यकता है कि इस परिषद् को २५ ज्येष्ठ १९६५ के दिन स्थापन किया गया था। इस का उद्देश्य "ब्रह्मचारियों की विविध विषयों पर निबन्ध लिखना सिखाना उनकी ग्रन्थावलोकन में विशेष प्रवृत्ति कराना। उनकी समालोचना शक्ति को उत्तेजित करना और अन्य विद्वानों के लिखे हुए निबन्धों से ब्रह्मचारियों तथा अन्य सभ्यों को लाभ पहुँचाया जाये" इस परिषद् का साधारण अधिवेशन हर पन्द्रहवें दिन होता है। आरम्भ में एक निबन्ध पढा जाता हैं। निबन्ध आर्य भाषा तथा संस्कृत दो में पढ़े जाते है। निबन्ध पढ़े जाने के पश्चात् उस पर वाद-विवाद के अनन्तर निबन्ध लेखक अपना प्रत्युत्तर देता है। अन्त में सभापति के वक्तव्य के साथ सभा समाप्त होती है। अधिवेशन में प्रत्येक महाशय उपस्थित हो सकते हैं, परन्तु परिषद् से सभासद बनने के लिये दो रुपये चन्दा निश्चित हुआ है। अब तक सभा के ३२ सभासद हुये हैं जिन में गुरुकुल के एतद् योग्य ब्रह्मचारी गुरुकुल से कई अध्यापक तथा अधिष्ठाता और कई अन्य बाहर के विद्वान् भी सम्मिलित हैं। अब तक इस परिषद् के अधिवेशनों में कई निबन्ध पढ़े जा चुके हैं। जिनके विषय तथा अध्येता निम्नलिखित हैं।

(सद्धर्म प्रचारक ४ मार्ग शीर्ष सं० १९६५ ता० १८ नवम्बर १९०८)

गुरुकुल-समाचार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव का संक्षिप्त विवरण

यजुर्वेद पारायण यज्ञ

१० अप्रैल १९८४ से यजुर्वेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार रहे। यज्ञ के संचालन का कार्य डॉ० जयदेव वेदालंकार (दर्शन विभाग) ने किया तथा ब्र० पीताम्बर दत्त शर्मा, ब्र० सूर्यप्रकाश पाठक, ब्र० पुण्य प्रसाद और ब्र० गुरु प्रसाद ने वेदपाठ किया।

ध्वजारोहण

१३ अप्रैल १९८४ को वार्षिकोत्सव का मुख्य कार्यक्रम मान्य कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी (अध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब) के ध्वजारोहण से प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर मान्य कुलाधिपति ने सम्बोधित करते हुए कहा कि हमें अपनी संस्कृति और वैदिक परम्परा तथा गुरुकुल के आदर्शों की रक्षा करने का व्रत लेना चाहिए।

वेद सम्मेलन

१३ अप्रैल को मध्याह्न ३-३० बजे डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा—गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय) जी की अध्यक्षता में वेदसम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन पूर्व कुलपति आचार्य प्रियव्रत 'वेदमार्तण्ड' ने किया। इसमें श्री वीरेन्द्र शास्त्री, डॉ० सत्यव्रत 'राजेश', पं० भगवतदत्त वेदालंकार, डॉ० रामनाथ वेदालंकार, सरदारी लाल वर्मा तथा ब्र० पीताम्बर आदि वक्ताओं ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण दिए। सम्मेलन का संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार ने किया और कहा कि वेद की उदात्त शिक्षाएं ही वर्तमान समय में मानव मात्र की रक्षा कर सकती हैं।

१३ अप्रैल की रात्रि के कार्यक्रम में प्रो० रत्नसिंह ने भारतीय संस्कृति पर सारगर्भित भाषण दिया तथा स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने वेद के अध्ययन पर बल दिया। इसका संयोजन डा० सत्यव्रत 'राजेश' (वेद विभाग) ने किया।

दीक्षान्त-समारोह

१४ अप्रैल १९८४ को प्रात: १० बजे कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में दीक्षान्त समारोह सम्पन्न हुआ। मान्य कुलपति ने अपने स्वागत भाषण में विश्वविद्यालय की प्रगति से परिचय

कराया तथा नव स्नातकों के लिए आशीः वचन कहे। इसके मुख्य अतिथि स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने नव स्नातकों को सम्बोधित करते हुए अपने दीक्षान्त भाषण में कहा कि आपकी शिक्षा-दीक्षा आर्य जगत् के सर्वश्रेष्ठ शिक्षा संस्थान में हुई है। इसलिए आप दयानन्द के सपनों को पूरा करें, राष्ट्र-वादी बनें तथा राष्ट्रीय संस्थानों में यशस्वी स्थान प्राप्त करें।

इसके अतिरिक्त स्वामी ओमानन्द सरस्वती, कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र, आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, पं० सत्यकाम विद्यालंकार आदि ने नव स्नातकों को आशीर्वाद दिया। इसका संयोजन डा० जबर सिंह सेंगर (कुल सचिव) तथा सह संयोजन डा० श्याम नारायण सिंह (उप कुल सचिव) ने किया।

राष्ट्रीय-सम्मेलन

१४ अप्रैल मध्याह्न ३-३० बजे मान्य कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकता सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन प्रो० रत्नसिंह ने किया इसमें डॉ० रामचन्द्र, हैदराबाद. डॉ० कृष्णदेव नेपाल, डॉ० सत्यव्रत 'राजेश' (वेद विभाग) तथा ब्र० पीताम्बर शर्मा आदि वक्ताओं ने अपने सारगर्भित भाषण किए।

अपने अध्यक्षीय भाषण में मान्य कुलाधिपति जी ने कहा कि राष्ट्रीय एकता इस समय देश की ज्वलन्त समस्या के रूप में हमारे सामने है। आपने पञ्जाब समस्या का विस्तृत विवरण देते हुए उसके समाधान में अपने अनेक सुझाव दिए और सरकार से मांग की कि पञ्जाब समस्या का तुरन्त समाधान किया जाए अन्यथा यह रोग सभी सीमा प्रान्तों में फैल जाएगा।

सम्मेलन के संयोजक डॉ० जयदेव वेदालकार ने प्रस्ताव रखा जिसमें सरकार से मांग की गई कि "पञ्जाब में हो रही हिंसा को तुरन्त रोका जाए तथा धार्मिक स्थलों से कातिलों को गिरफ्तार किया जाए।"

अन्त में मान्य कुलपति जी ने अध्यक्ष का धन्यवाद करते हुए कहा कि—'हम आपके आदेश की प्रतीक्षा में रहेंगे कि हम शान्ति सेना लेकर आएं ताकि पञ्जाब में राष्ट्रीय चेतना को उजागर किया जा सके और पञ्जाब की शान्ति स्थापना में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी उचित भूमिका अदा कर सके।'

सांस्कृतिक-सम्मेलन

१४ अप्रैल रात्रि ७-३० बजे गुरुकुल विद्यालय विभाग के छात्रों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया और अपने कार्यक्रम से सभी श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया। इसका संयोजन डॉ० दीनानाथ मुख्याध्यापक गुरुकुल विभाग ने किया।

यज्ञ की पूर्णाहुति

१५ अप्रैल प्रातः १० बजे यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार द्वारा सम्पन्न कराई गई तथा महात्मा आर्य भिक्षु और आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति ने आध्यात्मिक प्रवचन दिए।

आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार

हिन्दी जगत् के सुविख्यात लेखक, धर्मयुग तथा नवनीत के पूर्व यशस्वी सम्पादक पं० सत्यकाम विद्यालंकार को उनके वेद विषयक कार्य को देखते हुए संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर की ओर से उक्त पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया।

उक्त पुरस्कार आचार्य गोवर्धन जी की जन्मशती के शुभ अवसर पर १९८१ से प्रतिष्ठित किया गया। गत तीन वर्षों में क्रमशः आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (उप-कुलपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय), डॉ० भवानी लाल भारतीय (अध्यक्ष, दयानन्द पीठ पञ्जाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़) तथा पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, देहरादून को इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

८६ वर्षीय पं० सत्यकाम जी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित स्नातक हैं तथा गत ४५ वर्षों से साहित्य सेवा में जुटे हैं। आपने सम्पादन के अतिरिक्त ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद करके वेद का संदेश विदेशों में पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

संघड विद्या सभा ट्रस्ट की स्थापना मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा के पूज्य पिताश्री स्व० श्री गोवर्धन शास्त्री जी ने १९३० में पञ्जाब में की। विभाजन के बाद यह ट्रस्ट जयपुर में कार्य करने लगा। अभी कुछ दिन पूर्व कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने परिश्रम से अर्जित धन में से ५४ हजार रुपये ट्रस्ट को दान दिए। ट्रस्ट ने इस वर्ष ५४००/ रुपये गोवर्धन ज्योति की तृतीय चतुर्थ और पञ्चम रश्मि के प्रकाशन के लिए आर्यसमाज गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय को प्रदान किए।

विजिटिंग फेलोज़ का विश्वविद्यालय में आगमन

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अन्तर्गत अन्य विश्वविद्यालयों से दर्शन, हिन्दी तथा मनोविज्ञान विभाग में विजिटिंग फैलो के रूप में विद्वानों का आगमन हुआ। इन्होंने विभिन्न विषयों पर अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिये। जिससे विश्वविद्यालय के छात्रों तथा अध्यापकों को अत्यधिक लाभ हुआ। इन विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं:

(i) दर्शन-विभाग—डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, दर्शन विभाग रांची विश्वविद्यालय, बिहार।

(ii) हिन्दी-विभाग।—डॉ० विश्वनाथ मिश्र, पूर्व प्राचार्य, सनातन धर्म कॉलेज मुज़फ्फरनगर।

(iii) **मनोविज्ञान विभाग**—डॉ० एन० सी० गांगुली, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

मानद-उपाधि

इस वर्ष विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती तथा पं० सत्यकाम विद्यालंकार को "विद्यामार्तण्ड" की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

६ फरवरी, १९८४,—को हिन्दी विभाग के तत्त्वावधान में विजिटिंग फेलो डॉ० विश्वनाथ मिश्र, भू० पू० प्राचार्य सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर का 'साहित्य की अपेक्षा' विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। इसका संयोजन डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग ने किया।

११ फरवरी, १९८४,—को विश्वविद्यालय की सिंडीकेट की बैठक आर्य समाज हनुमान रोड, दिल्ली में सम्पन्न हुई।

१७–२० फरवरी, १९८४,—को मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा तथा डॉ० विजय शंकर अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान ने विज्ञान- भवन में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की 'फर्स्ट कॉनफ्रेंस ऑफ दॉ एशियन फोरम ऑफ पालियामेन्ट्स एटिक्स ऑन पॉपुलेशन एण्ड डवलपमेन्ट' में भाग लिया।

२२ फरवरी, १९८४,—को डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर और अध्यक्ष दर्शन विभाग, रांची वि. वि. बिहार का 'आधुनिक भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषताएँ' विषय पर दर्शन विभाग के तत्त्वावधान में विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। इसका संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार, अध्यक्ष दर्शन विभाग ने किया।

२९ फरवरी, १९८४,—को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय परिसर में 'ऋषिबोधोत्सव का पर्व धूमधाम से मनाया गया। इसमें मुख्य अतिथि पं० सत्यकाम विद्यालंकार रहे। इस अवसर पर विद्यालय के ब्रहमचारियों ने ऋषि दयानन्द के विषय में अपने संक्षिप्त भाषण दिए तथा डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष इतिहास विभाग, डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष दर्शन विभाग, रांची वि. वि. बिहार, ने स्वामी दयानन्द के जीवन पर प्रकाश डालते हुये उनके द्वारा दिखाये गए मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। अन्त में मुख्य अतिथि पं० सत्यकाम विद्यालंकार तथा कुलपति जी ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि–आज ऋषिके पावन पर्व पर हमें अपने कर्तव्य का बोध होना चाहिए।

८ मार्च, १९८४—को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में वि. वि. के शिक्षक कक्ष में एक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें उन्होंने यू० जी० सी० से आने वाली विजिटिंग कमेटी के विषय में अध्यापकों से विचार विमर्श किया और उनका मार्ग प्रदर्शन किया।

९ मार्च, १९८४—को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा भेजी गयी छठी पञ्चवर्षीय योजना के सम्बन्ध में निरीक्षण करने तथा विश्वविद्यालय की प्रगति की अन्य सम्भावनाओं का पता लगाने के

लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विजिटिंग कमेटी का गुरुकुल में आगमन हुआ।

इस समिति के अध्यक्ष प्रो० रमारंजन मुखर्जी, कुलपति वर्द्धमान विश्वविद्यालय (प० बं०) सदस्य प्रो० आर० सी० गौड, इतिहास विभाग, अलीगढ विश्वविद्यालय, प्रो० एम० एल० रैना, पंजाब विश्वविद्यालय तथा सचिव श्री बी० आर० क्वाटरा, उप-सचिव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग थे।

इस समिति ने गुरुकुल कांगड़ी के अध्यापकों, कर्मचारियों तथा विद्यार्थियों से उपयुक्त योजनाओं के विषय में बात की। तत्पश्चात् उन्होंने कन्या गुरुकुल देहरादून का भी निरीक्षण किया। उन्होंने कहा कि गुरुकुल अपनी मौलिक परम्पराओं को उजागर करे। गुरुकुल के अध्यापकगण वेदार्थ के लेखन में तथा प्रकाशन में संलग्न रह कर स्वामी श्रद्धानन्द जी के संकल्पों को पूरा करें तथा गुरुकुल के मिशन को अग्रसर करते हुए देश-विदेश में गुरुकुल की कीर्ति फैलाए।

१५ मार्च, १९८४—को वि० वि० के शिक्षक कक्ष में मनोविज्ञान विभाग के तत्त्वावधान में डॉ० एच० सी० गाँगुली. प्रो० तथा अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली का 'चेतना के परिवर्धित स्तर' विषय पर पं० सत्यकाम विद्यालंकार आचार्य गुरुकुल विभाग की अध्यक्षता में एक विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। इसके संयोजक प्रो० ओमप्रकाश मिश्र, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग रहे।

१६ मार्च, १९८४—प्रात: १० बजे दर्शन विभाग के तत्त्वावधान में डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव प्रो० रांची विश्वविद्यालय, का 'पूर्णयोग श्री अरविन्द के संदर्भ में' विषय पर सारगर्भित भाषण हुआ। इसका संयोजन डॉ० जयदेव वेदालंकार ने किया।

१६ मार्च, १९८४—अपराह्न ३ बजे संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर के सौजन्य से 'मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता' का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् 'महात्मा आर्य भिक्षु' ने की। इसी सभा में 'गोवर्धन ज्योति' पुस्तिका का भी विमोचन किया गया।

प्रतियोगिता में प्रथम स्थान गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा द्वितीय स्थान कन्या गुरुकुल कनखल ने प्राप्त किया। दोनों को चलविजयोपहार तथा विशिष्ट पुरस्कार प्रदान किए गए।

अन्त में विशिष्ट वक्ताओं डॉ० जयदेव वेदालंकार, श्री ईश्वर भारद्वाज तथा डॉ० जबरसिंह सैंगर ने अपने संक्षिप्त भाषण में आचार्य गोवर्धन शास्त्री जी के जीवन से शिक्षा लेने का संकल्प दोहराया।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए महात्मा आर्य भिक्षु ने कहा कि आचार्यों का परम कर्तव्य है कि वे बालकों में गुणों की वृद्धि तथा अवगुणों को दूर करने का तन-मन से प्रयास करें।

२२ मार्च, १९८४—को मनोविज्ञान विभाग के तत्त्वावधान में, मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में डॉ० एच० सी० गांगुली प्रोफेसर तथा अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय का 'मानसिक स्वास्थ्य' विषय पर विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। उन्होंने अपने शोधपूर्ण तथ्यों द्वारा मानसिक स्वास्थ्य के कारणों तथा उपायों पर प्रकाश डाला। इसका संयोजन प्रो० ओमप्रकाश मिश्र, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग ने किया।

२३ मार्च, १९८४—को पं० सत्यकाम विद्यालंकार जी की अध्यक्षता में डॉ० विश्वनाथ मिश्र, भू० पू० प्राचार्य सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर का 'महर्षि दयानन्द और हिन्दी साहित्य' विषय पर व्याख्यान हुआ। इसका संयोजन डॉ० बिष्णुदत्त 'राकेश' हिन्दी विभाग ने किया।

२३-२४ मार्च, १९८४—को प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र (उ० प्र० सरकार) गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में जिला स्तर के किसान मेला का आयोजन हुआ। जिसमें डॉ० विजय शंकर, अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान विभाग के निर्देशन में गंगा समन्वित योजना तथा वनस्पति विज्ञान बिभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण विषयों पर एक प्रदर्शनी लगाई गई जिसका उद्घाटन श्री शैलेन्द्र सागर ने किया। इस प्रदर्शनी को सर्वोत्तम घोषित किया गया। गंगा समन्वित योजना के जूनियर रिसर्च फेलोज तथा अन्य कर्मचारियों ने प्रदर्शनी के आयोजन में सराहनीय कार्य किया।

२४ मार्च, १९८४—को विश्वविद्यालय की कार्य परिषद् की बैठक आर्य समाज हनुमान रोड़ दिल्ली सम्पन्न हुई।

१ अप्रैल से ३ अप्रैल, १९८४—को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन स्टेडीज का १८ वाँ वार्षिक सम्मेलन हुआ। इसकी अध्यक्षता डॉ० भूपेन कानूनगो, प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी तथा संयोजन प्रो० सदाशिव भगत, अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग गु० कां० वि० वि० ने किया। प्रसिद्ध मनीषी डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने इसका उद्घाटन करते हुए कहा कि पूर्व और पश्चिम सदा जुड़े रहेंगे। मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने स्वागत भाषण में विदेशी विद्वानों को अपने देश में भारत का अध्ययन करने के लिए संगठन बनाने की प्रेरणा दी और कहा कि वे पूर्व और पश्चिम को एक दूसरे के समीप लाने का कार्य करें। इस सम्मेलन में देश विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से लगभग १०० विद्वानों ने भाग लिया।

८ अप्रैल, १९८४—को इतिहास-विभाग में श्री एम० के० नारद की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने "प्रतीहार वंश के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन" विषय पर शोध प्रबन्ध लिखा है।

९ अप्रैल १९८४—को डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार की अध्यक्षता में वि० वि० के शिक्षक कक्ष में एक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें मान्य कुलपति जी ने सभी अध्यापकों से विश्वविद्यालय की प्रगति के लिए एक जुट होकर उत्साहपूर्वक कार्य करने के लिए कहा तथा सभी विभागाध्यक्षों ने मान्य कुलपति तथा परिद्रष्टा महोदय को अपने-अपने विभाग की प्रगति से अवगत कराया।

१० से १५ अप्रैल १९८४—तक विश्वद्यालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर डॉ० जयदेव वेदालंकार के संयोजन में यजुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन हुआ। इसके ब्रह्मा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार अध्यक्ष वेद-विभाग रहे। इसका विस्तृत विवरण दिया जा चुका है।

११ अप्रैल, १९८४—को डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा, अध्यक्ष इतिहास विभाग की अध्यक्षता

में इतिहास विभाग की शोध समिति की बैठक सम्पन्न हुई।

११ अप्रैल, १९८४—को डॉ० एल० पी० पाण्डेय, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, हिमाचल विश्वविद्यालय, शिमला का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ तथा उन्होंने संग्रहालय आदि देखा और गुरुकुल की प्रगति की सराहना की।

१२ अप्रैल, १९८४—को सिंडीकेट की विशेष बैठक विश्वविद्यालय के पुस्तकालय भवन में सम्पन्न हुई।

१२ अप्रैल, १९८४— को इतिहास–विभाग में कु० ऊषा भसीन की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने "उत्तर भारत की शासन-संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया था।

१३ अप्रैल- १९८४—को विश्वविद्यालय की सीनेट की शिष्ट–परिषद् की बैठक पुस्तकालय–भवन में सम्पन्न हुई।

१३ अप्रैल, १९८४—को पुरातत्त्व संग्रहालय परिसर में विद्यालय-विभाग द्वारा एक विशेष प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। जिसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने किया। इस प्रदर्शनी का विशेष आकर्षण पं. सत्यकाम विद्यालंकार, आचार्य गुरुकुल विभाग द्वारा बनाये वैदिक मन्त्रों के भाव–चित्र थे। श्री अग्रवाल (वी० एच० ई० एल०) के सहयोग से संग्रहालय की ओर से सिक्कों का भी विशेष कक्ष लगाया गया।

१३ अप्रैल, १९८४—को डॉ० सिन्हा, कुलपति हिमाचल विश्वविद्यालय तथा डॉ० आराम कुलपति गांधी ग्राम रुरल इंस्टीट्यूट मदुराई का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ।

१४ अप्रैल से १६ अप्रैल १९८०—को डॉ० त्रिलोक चन्द्र, दर्शन विभाग (संयोजक प्रौढ़ शिक्षा) ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा सारनाथ में आयोजित अखिल भारतीय सामुदायिक शिक्षा सम्मेलन में भाग लिया और सामुदायिक शिक्षा पर अपना पत्र पढ़ा। वहाँ उन्हें श्री एम० एल० मेहता उपसचिव ने बताया कि गुरुकुल कांगड़ी को प्रौढ़ शिक्षा के ३० केन्द्र और दिए गये हैं। इस प्रकार गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में अब साठ केन्द्र हो गये हैं।

१६ अप्रैल, १९८४—से विज्ञान महाविद्यालय की परीक्षाएं डॉ० बी० डी० जोशी (परीक्षाध्यक्ष) तथा डॉ० टी० आर० सेठ एवं श्री एच० सी० ग्रोवर (सहायक परीक्षाध्यक्ष) के कुशल निर्देशन में शान्त एवं सुव्यवस्थित वातावरण में प्रारम्भ हुईं।

२६ अप्रैल, १९८४—सेकला महाविद्यालय एवं वेद महाविद्यालय की परीक्षाए प्रो० ओ० पी० मिश्र (परीक्षाध्यक्ष) तथा डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, डॉ० जयदेव वेदालंकार तथा काश्मीर सिंह भिण्डर (सहायक परीक्षाध्यक्ष) के कुशल निर्देशन में विश्वविद्यालय भवन में वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ प्रारम्भ हुईं।

प्रस्तुतकर्ता—राजेन्द्र शास्त्री □

पुस्तकालय की मेज से–

गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में वर्ष १९८३ में आयी नई पुस्तकें :—

वैदिक साहित्य

१ वीरेन्द्र कुमार वर्मा "ऋग्वेद प्रतिशाख्यम्"— काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
२ दैवरात "वेदार्थ कल्पलता" — ,, ,, ,,
३ रामनाथ दीक्षित "उह गानम् ऊहगानम" — ,, ,, ,,
४ हरिशंकर जोशी "वैदिक विश्वदर्शन" — ,, ,, ,,
५ वीरेन्द्र कुमार वर्मा 'ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्"— ,, ,, ,,
६ सूर्यकान्त "वैदिक कोश" — ,, ,, ,,
७ श्री नारायण शंकरानन्द "उपनिषद् समुच्चय"— ,, ,, ,,
८ डॉ० एस कुजूर "वैदिक एव धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी"— वाराणसी वि. वि. प्रकाशन
९ रंगनाथ "उपनिषदों की वाणी "— मीनाक्षी प्रकाशन
१० सत्यप्रकाश शास्त्री "ऋग्वेद संहिता" (अंग्रेजी अनुवाद) वेद प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
११ गया चरण त्रिपाठी "वैदिक देवता उद्भव और विकास" दिल्ली भारतीय विद्या प्रकाशन
१२ बद्रीप्रसाद पंचोली "ऋग्वेद में गोतत्त्व" अजमेर, अर्चना प्रकाशन
१३ दमोदर सातवेलेकर "अथर्ववेद का प्रबोध भाष्य" स्वाध्याय मण्डल
१४ दामोदर सातवलेकर ',ऋग्वेद का सुबोध भाष्य— स्वाध्यायमण्डल, पारडी
१५ दामोदर सातवलेकर "वेद का स्वयं शिक्षक" — ,, ,,
१६ दामोदर सातवलेकर "वैदिक व्याख्यान माला" ,, ,,
१७ हरिदत्त शास्त्री, कृष्ण कुमार "ऋक् सूक्त संग्रह"— साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ
१८ राजेन्द्र कुमार त्रिवेदी "उपनिषद् कालीन समाज एवं संस्कृति"— दिल्ली, परिमल पब्लिकेशन
१९ शर्मा उमाशंकर 'ऋषि' 'हरिश्चन्द्रोपाख्यानम्'— वाराणसी, चौखम्बा भवन
२० आचार्य प्रियव्रत "वैदिक राजनीति में राज्य की भूमिका"— मीनाक्षी प्रकाशन
२१ हेमलता सिंह "ऋग्वेद के अग्नि सूक्तों को उपमाओं का अध्ययन,,— अनुपम प्रकाशन
२२ योगेन्द्र पुरुषार्थी "वेदों में योग-विद्या,,— यौगिक शोध संस्थान (योगधाम)ज्वालापुर
२३ "सामवेद संहिता"— आर्ष कन्या गुरुकुल, नरेला
२४ डॉ० निगम शर्मा "ऋक्त् सूक्त मंजरी"— बरेली स्टूडेन्ट स्टोर। (क्रमशः)

प्रस्तुतकर्ता—जगदीश विद्यालङ्कार

रजिस्टर्ड सं० एल० १२७७

फार्म ४
(नियम ८ देखिये)

१—प्रकाशन स्थान—	गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
२—प्रकाशन अवधि—	मासिक
३—मुद्रक का नाम—	डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)
क्या भारत का नागरिक है ? (यदि विदेशी है तो मूल देश)	भारतीय
पता—	
४—प्रकाशन का नाम—	डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)
क्या भारत का नागरिक है ? (यदि विदेशी है तो मूल देश)	भारतीय
पता—	
५—सम्पादक का नाम—	रामप्रसाद वेदालङ्कार, आचार्य एवं उपकुलपति
क्या भारत का नागरिक है ? (यदि विदेशी है तो मूल देश)	भारतीय
पता—	गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
६—उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मैं डॉ० जबरसिंह सेंगर एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

प्रकाशक के हस्ताक्षर

डॉ० जबरसिंह सेंगर
(कुलसचिव)

दिनांक..................

प्रकाशक : कुलसचिव गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
मुद्रक : शर्मा प्रिण्टर्स, ज्वालापुर वार्षिक मूल्य १२ रु० मात्र

फार्म ४
(नियम ८ देखिये)

१—प्रकाशन स्थान— गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

२—प्रकाशन अवधि— मासिक

३—मुद्रक का नाम— डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)

क्या भारत का नागरिक है ? भारतीय

(यदि विदेशी है तो मूल देश)

पता—

४—प्रकाशक का नाम— डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव)

क्या भारत का नागरिक है ? भारतीय

(यदि विदेशी है तो मूल देश)

पता—

५—सम्पादक का नाम— रामप्रसाद वेदालङ्कार, आचार्य एवं उपकुलपति

क्या भारत का नागरिक है ? भारतीय

(यदि विदेशी है तो मूल देश)

पता— गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

६—उन व्यक्तियों के नाम व पते गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
जो समाचार पत्र के स्वामी हों
तथा जो समस्त पूंजी के एक
प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।

मैं डॉ० जबरसिंह सेंगर एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

प्रकाशक के हस्ताक्षर

डॉ० जबरसिंह सेंगर
(कुलसचिव)

दिनांक.................

प्रकाशक : कुलसचिव गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
मुद्रक : शर्मा प्रिण्टर्स, ज्वालापुर वार्षिक मूल्य १२ रु० मात्र

गुरुकुल-पत्रिका

ज्येष्ठ : २०४०
अंक : ५
मई : १९८४
वर्ष : ३६
पूर्णाङ्क : ३५६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक-पत्रिका

विषय-सूची

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य मासिक पत्रिका]

ज्येष्ठ : २०४० अंक : ५
मई : १९८४ वर्ष : ३६ पूर्णांक: ३५६

श्रुति-सुधा

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ।। साम० ५६९ ।।

अन्वय :—सखायः ! वः मदाय तं पुनानम् अभिगायत् । शिशुं न हव्यैः गूर्तिभिः स्वदयन्त ।

सं० अन्वयार्थ :—हे उपासक मित्रो ! तुम हर्ष आनन्द के लिये उस पवित्र करने वाले प्रभु को गाओ । शिशु के समान तुम हव्यों और स्तुतियों से उसे तृप्त करो ।

अन्वयार्थ :—(सखायः !) हे एक ही राह के राही उपासक मित्रो ! (वः मदाय तं पुनानम् अभिगायत) तुम आन्तरिक तृप्ति के लिये उस सब प्रकार से शुद्ध-पवित्र करने वाले प्यारे प्रभु का गुणगान करो । (शिशुं न) बालक को जैसे पुष्ट मिष्ट सुगन्धित और रोग विनाशक स्वादिष्ट हव्य द्रव्यों से तृप्त करते हैं-प्रसन्न करते हैं, वैसे ही तुम सब ([1]गूर्तिभिः स्वदयन्त) उस प्यारे शान्तस्वरूप प्रभु को अपनी स्तुतियों से वा साधना के क्षेत्र में किये गये महान् उद्यमों-परिश्रमों से परितृप्त करो । उस की तृप्ति में, फिर तो तुम्हारी तृप्ति ही तृप्ति है ।

उपासकों को चाहिये कि वे समान गुण कर्म स्वभाव वालों से मेल करें । अपनी आत्मा को निहाल करने के लिये-परितृप्त करने के लिये-अनुपम आनन्द की प्राप्ति के लिये वे सदा हृदय मन्दिर को शुद्ध पवित्र करने वाले प्रभु का गुणगान करें । शिशुओं को जैसे हव्य द्रव्य खिलाते हैं और उनके लिये नानाविध उद्यम कर उन्हें प्रसन्न करने का जैसे गृहस्थ लोग प्रयास करते हैं ऐसे ही उपासक हव्य अर्थात् पुष्ट-मिष्ट सुगन्धित और रोगविनाशक द्रव्यों का सेवन कर अपनी स्तुति-प्रार्थनाओं एवं शुभकर्मों वा साधना के क्षेत्र में किये गये अपने प्रयासों द्वारा किसी मानव को नहीं वरन् प्रभु को ही रिझाने का प्रयास करें ।

१ गूर्तिभिः—"गूरी उद्यमने" उच्चैः स्तुतिभिर्वा ।

महापुरुष-वचनम्

(i) उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ।। (मनु० २-१४५)

दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य का, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता का और सहस्र पिताओं की अपेक्षा माता का गौरव अधिक होता है ।

(ii) न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ।। (मनु० २-१५६)

सिर के बालों के सफेद हो जाने से कोई वृद्ध नहीं हो जाता । युवा होते हुए भी जो विद्वान् है, देवतागण अथवा विद्वान् लोग उसी को वृद्ध समझते हैं ।

(iii) नक्षत्रमति पृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ।। (अर्थ० ९-४)

जो मूर्ख (किसी काम को करने के लिए) नक्षत्र के विषय में अत्यधिक पूछताछ करता है उसका कार्य उसके हाथ से निकल जाता है । वास्तव में कर्तव्य अर्थ स्वयं अपना नक्षत्र होता है, उसी को देखना चाहिये । तारे क्या कर सकते हैं ? अर्थात् कुछ नहीं ।

(iv) अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् ।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ।। (वा० रा०, ४-३०-७१)

अपने पास आये हुए प्रार्थी लोगों की तथा पूर्व में अपना उपकार करने वालों की आशा को, उसकी पूर्ति का वचन देकर, जो मार देता है, वह संसार में सबसे नीच व्यक्ति है ।

(v) अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम् ।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना ।। (योगवाशिष्ठ २-१८-२)

सामान्य पुरुष द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि वह युक्तियुक्त बात को बतालता है तो ग्रहण करने योग्य है । इसके विरुद्ध जो शास्त्र है, वह ऋषि-प्रोक्त होने पर भी त्याज्य है । मनुष्य को न्याय्य बात को ही मानना चाहिए ।

महापुरुष–चरितम्

गुरुवर विरजानन्द–

(i) आर्षग्रन्थाध्ययनविलोपो जातो भारतवर्षे सर्वत्रैवानार्षपुस्तकाध्ययने जना निमग्नाः।
दृष्ट्वानिष्ठ खलु परिणामं बद्धपरिकरो धीरो वन्दनीयकमनीयपदोऽसौ, विरजानन्दमहात्मा ॥१८

भारत में आर्षग्रन्थों के अध्ययन का लोप हो गया, सर्वत्र लोग अनार्ष ग्रन्थों के अध्ययन में निमग्न हो गये, इसके अनिष्ट परिणाम को देखकर उसके निवारणार्थ कटिबद्ध धैर्यशाली महात्मा विरजानन्द जी अत्यन्त वन्दनीय है।

महर्षि दयानन्द–

(ii) अधिकतम उदारो धर्मसम्बोधकेषु श्रुतिविहितविचारो लोकसंरक्षकेषु ।
विदितनिगमसारो ब्रह्मचार्यग्रगण्यो, जयति स कमनीयो वन्दनीयो महर्षिः ॥ २७ ॥

धर्म का उपदेश करने वालों में जो सबसे अधिक उदार थे, लोक संरक्षकों में जो वैदिक विचारों के प्रचारक थे, ब्रह्मचारियों में अग्रणी वेदसार को जानने वाले उन वन्दनीय महर्षि दयानन्द की जय हो।

स्वामी श्रद्धानन्द–

(iii) येषां जीवितमेव सर्वमभवल्लोकोपकारेऽर्पितं,
दातुं वैदिकशिक्षणं गुरुकुलं, संस्थापितं यैः शुभम् ।
अस्पृश्यत्वनिवारणार्थमनिशं, यत्नः कृतो यैः सदा,
श्रद्धानन्दमहोदयान् गुरुवरान् वन्देऽति भक्त्या युतः ॥ ३६ ॥

जिनका समस्त जीवन लोकोपकार के लिये अर्पित था, वैदिक शिक्षा देने के लिये जिन्होंने गुरुकुल स्थापित किया, अस्पृश्यता दूर करने का जिन्होंने दिन-रात प्रबल प्रयत्न किया, ऐसे गुरुवर्य स्वामी श्रद्धानन्द जी को अतिभक्ति से मैं नमस्कार करता हूँ।

(महापुरुषकीर्तनम्—पं० धर्मदेव)

□□□

वित्तेनैव न कौलिन्यम्

—श्री वेदप्रकाश शास्त्री
संस्कृत-विभाग गु० कां० वि० वि०

नाना-प्रपञ्च-पुष्कले, बहुविधमानवमण्डलमण्डिते, विशाले संसारे समये समये मानवा आयान्ति यान्ति च। मननशीलो हि मनुष्यः सर्वं कर्मजातं स्वधिया परधिया वा विचार्य सम्पादयति। सर्वेषां जनानां स्वाभाविकः सुखाभिलाषः। अतएव प्रतिक्षणं सुखं यथाकामं कामयन्ते नराः। सुखोपकरणानि बहुविधानि सन्ति परं जनैस्तु सुखोपकरणशिरोमणित्वेन वित्तस्यैव वन्दनं विहितम्। अद्यतनीयाः सर्वेऽपि नरा यदि क्वचिद् गच्छन्ति तर्हि धनार्थमेव। यदि किमपि लिखन्ति वदन्ति वा सर्वं धनमभि-लक्ष्यैव। सर्वेषामपि मनुष्याणां जीवनं धनावृतमेव। केनचिद् विदुषा "अर्थकारी विद्या" इत्युदीर्य विद्याया विद्यात्वं धनापेक्षयैव साधितं न तु तन्निरपेक्षया। मानवानां सर्वविधाभ्युदयार्थं प्रभुप्रदत्तेषु वेदेषु धनस्य महीयान् महिमा वर्णितः परं तत्र धनं केवलं साधनमेवास्ति न तु साध्यम्। अद्यत्वे जनानां जीवने केवलं धनस्यैव कथा कथ्यते, तस्यैव कथा श्रूयते, तत्परम्पराप्रसृतिरेव प्रसूयते। अतएव सर्वेषां गीर्वाणवाक्-कोविदानां परं परिचितः कश्चिद् विद्वान् "यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः" इत्युदीर्य साटोपं वित्तवैशिष्ट्यं समुदाहरत। परं मन्ये उक्तिरियं कस्यचिद् लौकिकाभ्युदयाञ्चितचित्तस्य, याथार्थ्यजगतो विदूरङ्गतस्य, अपर्यालोचितशास्त्रस्य, अज्ञानवृत्तिविधूतेन्द्रियस्य मूढाधिपस्य चास्ति यो निकृष्टेन, मिथ्यासंसारप्रोद्भूतेन, सकलकलमषकारकेण, बन्धुताया अपहारकेण, प्रेमभाववारकेण, सदाचारसज्जसज्जनविगर्हिकेन वित्तेन युक्तं नरं कुलीनं मत्वा कामपि अक्षेमकरीं परिपाटीं प्रचारयन् अखिलमपि जगदतिसंधत्ते। केवलं वित्तेश्वर एव कुलीनो भवति वागियं महतीं विडम्बनामावहति। संसारेऽस्मिन् यैर्गुणैर्भूषितः पुरुषः कुलीनो भवति तेषु गुणेषु वित्तस्य क्वचिद् गणनापि न कृता। देवकल्पा ऋषयो मुनयश्च मानवजीवनमुन्नेतुं काले-काले मधुराणि सारगर्भाणि सरसानि गद्यपद्यमयानि गीतान्युज्जगुः। परं न तैः क्वचिदपि वित्तप्रशंसनं कृतम्। श्वेताश्वतरोपनिषदि गुणाष्टकप्रसङ्गे अष्टावात्मगुणाः परिगणिताः तत्र क्षान्तिर्दयानसूया शौचमनायसमाङ्गल्यमकार्पण्यमस्पृहाख्येषु गुणेषु वित्तस्य नास्ति गन्धोऽपि किमुत् महत्त्वम्। वित्तार्जनार्पितजीवनानां वित्ताधिपानां जीवनं सर्वविदितमेव। प्रतिदिनं वयं धनिकानां कुकृत्यानि विलोकयामः, समाचारपत्रेषु पठामः परस्परम् आलोचयामश्च। प्रायशः संसारे सर्वत्रैव विलोक्यते यदेको मानवः सुतरां नास्ति धनिको नापि च तदन्तिके मुद्रायोगः परं तथाप्यसौ निर्मुद्रः सन्नपि सज्जनः स्वजीवने चरित्रशुद्धिमातनोति, उदात्त-भावानभिरक्षति, प्रेमलतामभिसिञ्चति, सौमनस्यमावर्धनाति, अन्योन्यं संगठनग्रन्थिं दृढयति च।

परं यो हि वित्तमधिगत्य धनाधिपसंज्ञावेद्यो भवति स तु धनमदिरां पायं पायं उन्मत्तः सन् दुष्टो वारण इव बान्धववृक्षानुत्पाट्य प्रक्षिपति, राहुरिव चरित्रचन्द्रं ग्रसति, सर्प इव दुग्ध दातॄन् दशति, सिंह इव औदार्यमृगं परिभूय पीडयति, श्वा इव जघन्यकर्मरतः साधून् क्लेपयति, उलूक इव असत्कर्मतमसि दूरं विलोकयति, तस्कर इव स्वापरजनानां धनमपहरति, पिशाच इव क्रूरक्रियासङ्गेन दीनानाथानां सुखामिषं समाच्छिद्य साट्टहास हसननुदिनमत्ति च । अहो, यस्य पुरुषस्य विषये महतां हृदये भावनेयमाविर्भवति यदसौ मनुष्यः संसारे देवकल्पः, ऋषितुल्यः, भगवद्भक्तः, योगिसमः, मुनिरूपो वा भूत्वा स्वात्मवैशिष्ट्यमाप्नुयात् स एव पुरुष क्षणनश्वरं वित्त प्राप्य महतां तपस्विनां. धर्मविदां, यशस्विनां, वेदविदाञ्च विनिन्द्यो भवति । तथापि यदि केषाञ्चित् मतमिदं प्रस्फुटति यत् सकलदोषयोनि धनमवाप्य पुमान् प्रशस्यो भवति तर्हि मानवजातेर्मनस्वितायाश्चेतोऽधिकं किन्नाम् दुर्भगत्वम् । मानवानामभ्युदयार्थं विरचितेषु वेदेषु, उपनिषत्सु ब्राह्मणग्रन्थेषु, स्मृतिशास्त्रेषु. धर्मशास्त्रेषु, पुराणादिग्रन्थेषु च क्वचिदपि धनस्य नैतावन्माहात्म्यं स्वीकृतं येन जनाः पूज्याः सभजनीया वा स्युः। सत्साहित्ये सर्वत्र धर्मधनानां, कर्मकाण्डपराणां, सत्यान्वेषणक्षपितक्षणानां, नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित्तोपासनादिकर्मनिरतचित्तानां, वेदानुद्धर्तुं मापीतकालकूटाना, परोपकारव्यापृतानां च पुरुषाणां समर्चनं दृश्यते न तु कथञ्चित् कदाचित् कुतश्चित्कतिपयार्जितवित्तकणानां, पापिष्टजनोचिताचाराणां धनिकानाम् । अत एव महाभारते द्वैपायनो हस्तमुद्यम्य चत्वरमञ्चमार्गस्थान् सर्वान् मानवानुद्बोधयन् प्राह ।

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नैव कश्चिच्छृणोति माम् ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किन्न सेव्यते ।।

एतेनैव प्रतीयते यद् जीवनतत्त्वविदा महर्षिणा व्यासेन मूलभूततत्त्वरूपेण धर्म एव प्रख्यापितो नार्थः । याज्ञवल्क्यं याज्ञिकं को न वेत्ति येन धनलोलुपा, सांसारिकसुखविमुग्धहृदया कात्यायनी नामधेया पत्नी तपस्तप्तुं स्वसार्धं न नीता, अपितु परित्यक्तधना ,प्रभूतदाक्षिण्या, भक्तिरस सरस सहृदया मैत्रेयी स्वहृदयेप्रतिष्ठापदवीमारोपिता । अद्यत्वेऽपि कोऽपि जनो न केवलेन वित्तेन पूज्योऽपितु गुणगणेन कुलीनो भवति गणनीयो मान्यश्च भवति ।

महाकविना बाणभट्टेन कादम्बर्याख्ये गद्यग्रन्थे चन्द्रापीडस्य राज्याभिषेकावसरे शुकनासमुखेन लक्ष्म्या विषये योऽनुपम उपदेशः प्रदत्तः स सर्वेषां संस्कृताज्ञानां केवलं नापितु साहित्याधिगमाहितरुचीनां सर्वेषामेव सुविदितः तस्योपदेशस्य कतिपयानि सुतरां रम्याणि पदजातानि प्रस्तूयन्ते :— "इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्पल-वन-विभ्रमभ्रमरीलक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्

इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम् इत्यैतानि सहवासपरिचयवशाद् विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता । "इयं लक्ष्मी: पालितापि प्रपलायते, न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते, नापि च कुलक्रममनुवर्तते ।" एवं प्रकारेण बाणेन लक्ष्म्या सर्वोऽपि दोषनिचयः समुद्घाटितस्तथा पुरुषाणां कृते कोऽपि जीवनोल्लासकर उपदेशो दत्तः ।

मुद्राराक्षसाभिधे नाटके महाकविना विशाखदत्तेनैकमेव पद्यमुपन्यस्य इयं लक्ष्मीरित्थं गर्हिता :—

तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न संतिष्ठते,
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्त विद्वत्स्वपि ।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्त भीरुनहो,
श्रीर्लब्ध प्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम् ।।

एवं सुपर्यालोचितशास्त्राणां, तत्त्वविदां महतां विदुषां प्रकाशकरं वाक्यजातं स्मारं स्मारं लौकिकैः सर्वैरेव जनैः स्वजीवन यात्रा विधेया नान्यथा ।

□□□

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रञ्जयति ।। (नीतिशतक)

अज्ञानी को सरलता से सन्तुष्ट किया जा सकता है। विशेषज्ञ को और भी अधिक सरलता-पूर्वक समझाया जा सकता है; किन्तु जो ज्ञान के अंशमात्र को प्राप्त करके अपने को पण्डित समझता है, ऐसे मनुष्य का सन्तोष या रंजन तो ब्रह्मा भी नहीं कर सकता ।

ऋग्वेद में 'हिन' निपात

--डॉ० राकेश शास्त्री

ऋग्वेद में 'हिन' निपात का प्रयोग 'निश्चय' अर्थ में हुआ है। सम्पूर्ण ऋग्वेद में इस निपात की एक बार आवृत्ति हुई है।[1] वहां यह निपात अन्तोदात्त स्वर से युक्त प्रयुक्त हुआ है।[2] मन्त्र के प्रथम चरण में प्रयुक्त इस निपात का सर्वनाम 'सः' के तुरन्त पश्चात् प्रयोग मिलता है।[3] संहितोत्तरकालीन ऋग्वैदिकसाहित्य ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों में इस निपात का अभाव ही है।[4] लौकिक संस्कृत साहित्य में भी इसका प्रयोग नहीं मिलता। अधिकांश लौकिक संस्कृत कोशों में भी इसका उल्लेख नहीं किया गया है।[5] मोनियर विलियम्स ने इस निपात का 'फॉर और 'बीकॉज' अर्थ किया है तथा उदाहरण के रूप में ऋग्वेद के प्रस्तुत स्थल का ही निर्देश किया है।[6]

अब देखना यह है कि ऋग्वेद में एक बार प्रयुक्त इस निपात की वस्तुतः क्या स्थिति है एवं यह निपात वहां वस्तुतः किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि जिस मन्त्र में यह निपात प्रयुक्त हुआ है उसकी व्याख्या में ऋग्वेद के सभी भाष्यकार एक मत नहीं हैं।

'हिन' की निपात रूप में स्थिति--

'हिन' निपात के सम्बन्ध में प्रथम तो यह विचारणीय है कि इसकी स्वतन्त्र निपात के रूप में क्या स्थिति है, क्योंकि आचार्य सायण के मत में यह दो निपातों 'हि' एवं 'न' का समुदाय है।[7] परन्तु विचार करने पर आचार्य सायण का यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यदि हम इस निपात को 'हि' तथा 'न' निपातों का समुदाय मानते हैं तो शङ्का होती है कि मन्त्र की व्याख्या में 'न' निपात को किस अर्थ में प्रयुक्त माना जाए। 'न' निपात ऋग्वेद में लगभग दो सहस्र बार प्रयुक्त हुआ है,[8] साथ ही इस निपात के विविध अर्थ हैं,[9] तथापि यह निपात अन्य अर्थों की अपेक्षा 'उपमा' एवं 'निषेध' अर्थों में

१ ऋ०-६-४८-२। २ ऋग्वेद संहिता, मोक्षमूलर, चौखम्बा प्रकाशन, १९६५, भाग १।
३ ऋ० ६-४८-२ : उर्जः नपात सः हिन............।
४ वैदिक-पदानुक्रम-कोश-सम्पादक विश्वबन्धु।
५ अमरकोश, शब्दकल्पद्रुम, शब्दस्तोम महानिधि, वाचस्पत्यम्, हलायुध कोश, युगल कोश, वैजयन्ती कोश, मेदिनी कोश में इस निपात का उल्लेख नहीं किया गया है।
६ मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंग्लिश-डिक्सनरी, १९७६।
७ सा. भा., ऋ० ६-४८-२ : 'हिन' इति निपातद्वयसमुदायः............।
८ विश्वबन्धुः वैदिक पदानुक्रम कोश।
९ 'उपमा' 'निषेध', 'समुच्चय', 'अपि' एवं 'एव' अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

अधिक प्रयुक्त हुआ है। किन्तु प्रस्तुत स्थल पर 'न' के किसी भी अर्थ का औचित्य संगत प्रतीत नहीं होता। अतः यहां 'हिन' निपात को दो निपातों 'हि'तथा 'न' का समुदाय न मानकर एक निपात के रूप में स्वीकार करना ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

स्कन्दस्वामी के मत में भी प्रस्तुत स्थल पर 'हिन' निपात एक उदात्त स्वरयुक्त होने के कारण दो निपातों का समुदाय न होकर एक निपात ही है।[1] वस्तुतः स्कन्द स्वामी द्वारा इस निपात को एक निपात मानना ही समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि ऋग्वेद में 'हि' निपात का छः सौ बासठ बार प्रयोग हुआ है[2] एवं सर्वत्र यह निपात उदात्त स्वरयुक्त ही प्रयुक्त हुआ है।[3] जबकि 'हिन' निपात अन्तोदात्त स्वरयुक्त है। यदि यह निपात दो निपातों का समुदाय होता तो एक उदात्त स्वर से युक्त प्रयुक्त न होता क्योंकि 'हि' और 'न' दोनों ही उदात्त स्वर वाले निपात हैं।

इसके अतिरिक्त वेंकट माधव ने भी इस निपात को एक निपात मानकर ही मन्त्र की व्याख्या की है।[4] स्वामी दयानन्द सरस्वती भी इसे एक निपात ही स्वीकार करते हैं।[5] मोनियर विलियम्स के मत में भी यह एक ही निपात है। यद्यपि उन्होंने इसका 'फॉर' एवं 'बिकॉज़' अर्थ किया है तथापि एक निपात होने के विषय में उनकी सम्मति में कुछ भी संदेह नहीं है[6], क्योंकि उन्होंने 'हिन' निपात का विवरण देते हुए उदाहरण के रूप में ऋग्वेद के प्रस्तुत स्थल को ही उद्धृत किया है।[7]

अतः हमारी सम्मति में आचार्य सायण द्वारा प्रस्तुत स्थल पर 'हिन' निपात को दो निपातों 'हि' तथा 'न' का समुदाय मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उक्त विवेचन के आधार पर प्रस्तुत मन्त्र में एक निपात के रूप में इसकी स्थिति स्पष्ट है। अतः 'हि न' को स्वतन्त्र निपात ही मानना चाहिए।

'हिन' निपात का 'निश्चय' अर्थ में प्रयोग–

'हिन' की स्वतन्त्र निपात के रूप में स्थिति स्पष्ट करने के पश्चात् ऋग्वेद के प्रस्तुत स्थल पर यह निपात किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यह विचारणीय है। ऋग्वेद का यह विवेच्य स्थल छठे मण्डल का है—

---

१ स्क. भा, ऋ० ६-४८-२: एकोदात्तत्वात् एक निपातोऽयम्।
२ ऋग्वेद संहिता-(सूची खण्ड) पंचमो भागः, वै. रि. इन्सटी. पूना, शक १८६८। ३ वही।
४ व. भा., ऋ० ६-४८ २ : हिनेति इति निपातो हि पर्यायः।
५ द. भा. वही: पदार्थः—(हिन) खलु।
६ मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंग्लिश डिक्सनरी, १९५६, पृ. १२९७। ७ वही।

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्ययुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्ववितां भुवद्वृध उत त्राता तनूनां ॥ (ऋ० ६-४८-२)

प्रस्तुत मन्त्र में 'हिन' निपात का प्रथम चरण में प्रयोग हुआ है। मन्त्र में इन्द्र की स्तुति की गयी है। आचार्य सायण ने इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए 'हिन' को 'हि' तथा 'न' निपातों का समुदाय मानकर 'हि' अर्थ वाला स्वीकार किया है।[1] किन्तु स्कन्दस्वामी ने प्रस्तुत स्थल पर 'हिन' निपात को 'यस्मात्' अर्थ वाला माना है। उनकी व्याख्या में इसे 'हि' का समानार्थक स्वीकार किया गया है।[2] 'हि' निपात की व्याख्या करते हुए सायण ने अधिकांश स्थलों पर उसका यस्मादर्थ ही किया है।[3] ग्रिफिथ भी प्रस्तुत स्थल पर उसे हेत्वर्थक स्वीकार करते हैं।[4] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसका 'खलु' अर्थ किया है।[5] उनकी व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक संगत प्रतीत होती है। वेंकटमाधव भी इस निपात को 'हि' का पर्याय मानते हुए 'खलु' अर्थ करते हैं।[6] क्योंकि मन्त्र में अग्नि देवता से देवताओं के लिये हवि ले जाने की कामना की गयी है।[7] इसलिये मन्त्रार्थ में निश्चयात्मकता की प्रतीति ही उचित प्रतीत होती है।

अतः मन्त्रार्थ के औचित्य की दृष्टि से प्रस्तुत स्थल पर 'हिन' निपात का 'निश्चय' अर्थ ही समीचीन प्रतीत होता है।

उक्त विवेचन से एक तथ्य सामने आता है कि ऋग्वेद में 'हिन' निपात की स्वतन्त्र निपात के रूप में स्थिति मिलती है तथा उस स्थल पर यह 'निश्चय' अर्थ का द्योतक है, क्योंकि उसका भाष्यकारों की सम्मति में प्रकरण के आधार पर 'खलु' अर्थ ही युक्तियुक्त सिद्ध होता है।

अतः 'हिन' निपात को निश्चयार्थक निपातों की श्रेणी में रखने में तनिक भी अनौचित्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि 'हि' निपात की गणना निश्चयार्थक निपातों में सर्वसम्मत है और 'हिन' को ग्रिफिथ एवं स्वामी दयानन्द के अतिरिक्त प्रायः सभी भाष्यकार 'हि' का पर्याय स्वीकार करते हैं। □

---

१ सा० भा०, ऋग्वेद ६-४८-२ : ऊर्जः अन्नस्य बलस्य वा नपातं पुत्रं प्रशंसिषमित्यनुषङ्गात् हिन इति निपातद्वयसमुदायो हीत्यस्यार्थे।

२ स्क० भा०, वही : एक निपातोऽयम् हिशब्देन समानार्थः यस्मादर्थे वर्तते।

३ लेखककृत शोध प्रबन्ध, ऋग्वेद के निपात (निश्चयार्थक) : एक अध्ययन।

४ ग्रि० भाष्य, ऋ० ६-४८-२ : The Son of Strength; for is he not our gracious Lord?

५ दया० भा०, वही: ऊर्जः (पराक्रमस्य) नपातं (अपातयिता) सः हिन (खलु) अयम् अस्मयुः (अस्मान् कामयमानः) दाशेम (दद्याम)

६ वे० भा०, वही: हिनेति इति निपातो हि पर्यायः ऊर्जः पुत्रं प्राशंसिषम्। सः अयम् खलु अस्मत्कामः। तस्मै देवानां हविषां दात्रे हविः दाशेम। ७ वही।

गतांक से आगे–

आचारशास्त्र : एक तुलनात्मक अध्ययन

–डॉ० जयदेव वेदालंकार
अध्यक्ष, दर्शन विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

प्रथम–ब्रह्मचर्याश्रम–इस आश्रम के अपने धर्म हैं, अथवा कर्तव्य हैं। इस आश्रम में ब्रह्मचारी को गुरुओं की आज्ञापालन और विद्योपार्जन करना होता है। महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचर्याश्रम के कर्तव्यों का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में इस प्रकार किया है। जैसे विद्वान् सारथी घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा, खोटे कामों में खींचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करें।1

जीवात्मा इन्द्रियों के बस में होके बड़े-बड़े दोषों को प्राप्त होता है इसमें कोई संशय नहीं है। जब इन्द्रियों को वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है2।

विद्वान् और विद्यार्थियों को योग्य है कि वे वैरबुद्धि छोड़कर सब मनुष्यों को कल्याण मार्ग का उपदेश करें और उपदेश में सदा मधुर सुशीलतायुक्त वाणी बोलें। जो धर्म की उन्नति चाहें वह सदा सत्य का उपदेश करें। जिस मनुष्य के वाणी तथा मन सदा शुद्ध तथा सुरक्षित रहते हैं वही सब वेदान्त अर्थात् सब वेदों के सिद्धान्त रूप फल को प्राप्त होता है।3 (सत्यार्थ० ३ समु०)

इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी के लिए महर्षि दयानन्द ने उसके नैतिक नियमों का उल्लेख किया है।

दूसरा आश्रम–गृहस्थाश्रम है। गृहस्थाश्रम में मनुष्य विवाह करा के प्रतिदिन पंच महायज्ञों का पालन करता है। गृहस्थ पुरुष शेष तीनों आश्रमों का पालन पोषण करता है। इसलिए गृहस्थाश्रम और भी उत्तरदायित्व पूर्ण आश्रम है।

महर्षि दयानन्द का कथन है कि गृहस्थ रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे आवश्यक कार्य कर धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करें। कभी भी अधर्म का आचरण न करें।4

गृहस्थ को चाहिए कि अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और गोत्र के तथा अन्य भद्र पुरुष वा जो वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर स्थान आदि देकर अच्छे प्रकार

---

१ इन्द्रियाणाँ विचरताँ विषयेष्वपहारिषु। संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥ मनु० २.८८॥
२ इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयं, सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥
३ अहिंस्यैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनं, वाक् चैव मधुराश्लक्षणा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।
यस्य वाङ्मनसो शुद्धे सम्यक् गुप्ते च सर्वदा, स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्॥ मनु० २.१५६
४ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत। कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वदेत्तवार्थमेव च। मनु० ४ ९२॥

अर्थात् जिस जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और स्वस्थ रहे उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करना श्रद्धा और तर्पन कहाता है (सत्यार्थ प्रकाश ४ समु०)। इसी प्रकार गृहस्थ अपने कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ अपने विकास और राष्ट्र की उन्नति में सदा लगा रहे।

तीसरा आश्रम–वानप्रस्थाश्रम है। इस आश्रम में मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि गृहस्थाश्रम को पूर्ण करके शहर से बाहर अथवा एकान्त स्थान में जाकर तपस्या आदि का आचरण करता हुआ जिस विद्या की न्यूनता गृहस्थ में रहते हुए हो गई थी उसको पुनः प्राप्त करके पढ़ने-पढ़ाने का कार्य करें।

चौथा आश्रम–सन्यास आश्रम है। इस आश्रम में संसार के सभी राग द्वेषों से ऊपर जाकर तत्त्व–ज्ञान को प्राप्त करके निष्पक्ष भाव से सर्वत्र सत्य का उपदेश करें। महर्षि दयानन्द ने पंचम समुल्लास में लिखा है कि सन्यासी, बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोक कर उनको ज्ञान और आत्मा में लगावें उस ज्ञान स्वात्मा को परमात्मा में लगावें और उस विज्ञान को शान्त स्वरूप आत्मा में स्थिर करें। (पंचम समुल्लास)। सब भूतों में इन्द्रियों के विषयों का त्याग वेदोक्त कर्म और अत्यु-ग्रतपश्चरण से इस संसार में मोक्ष पद को पूर्वोक्त सन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं, अन्य नहीं।

(सत्यार्थ प्रकाश पंचम समुल्लास)।

यह समाज का प्रथम सामाजिक विभाजन है। दूसरा इस प्रकार है समाज के चार वर्ग किये गये हैं १. ब्राह्मण, २. क्षत्रिय, ३. वैश्य, ४. शूद्र।

महर्षि दयानन्द इन चारों वर्णों को जन्म से न मानकर कर्म से मानते हैं। उनका कथन है कि जन्म से सब शूद्र हैं उनका वर्ण निर्वाचन कर्म से होता है [1]। इनमें ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है अध्ययन अध्यापन, यज्ञ करना तथा कराना, दान लेना एवं देना[2]। मन से बुरे कर्मों की कभी भी इच्छा न करें और कभी भी अधर्म में प्रवृत्त न होवें। इन्द्रियों को विषयों से रोकें और जितेन्द्रिय होकर सदैव धर्म का अनुष्ठान करें। ये भी ब्राह्मण के कर्तव्य हैं।[3]

क्षत्रियों के कर्त्तव्य इस प्रकार हैं। जनता की रक्षा करना, परन्तु दुष्टों को दण्ड देना। दान देना परन्तु सुपात्रों को और वेदादि शास्त्रों को अध्ययन करना। विषयों में कभी भी आसक्त न होना ये क्षत्रियों के कर्त्तव्य हैं।[4]

वैश्यों के कर्त्तव्य—पशुओं का पालन एवं संवर्धन करना, विद्या आदि की वृद्धि के लिये दान

---

१ जन्मना जायते शूद्रः, कर्मणा द्विज उच्यते।
२ अध्ययनं अध्यापनं यजनं याजनं तथा दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्रह्मणानामकल्पयत्॥
३ शमो दमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।
४ प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

देना, और सत्य शास्त्रों का पढ़ना सब प्रकार के व्यापार करना, अनधिकार ब्याज न लेना और कृषि करना बतलाये गये हैं ।[1]

शूद्रों के कर्तव्य इस प्रकार हैं—अभिमान आदि दोषों को छोड़ कर शेष तीनों वर्णों की सेवा करना ।

ये चारों वर्णों के संक्षेप में कर्तव्य हैं। ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हो उस-उस वर्ण का अधिकार देना ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोष—युक्त होगें तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल—चलन और विद्या—युक्त न होगें तो हमें शूद्र होना पड़ेगा, और नीच वर्णों का उत्तम वर्णस्थ होने के लिये उतसाह बढ़ेगा।" (सत्यार्थ० ४ समु०)

महर्षि के उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि चारों वर्ण अपने-अपने स्थानों पर श्रेष्ठ हैं हां, शूद्र के विषय में उन के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि शूद्र उसी को कहेंगे जो विद्या आदि को प्रयास करने पर भी प्राप्त न कर सकें। अर्थात् जो केवल सेवा आदि ही कर सकें। यह किसी जाति विशेष का नाम नहीं है, अपितु जो इस योग्य होगा वह शूद्र कहलायेगा चाहे वह ब्राह्मण की ही सन्तान क्यों न हो।

अतः भारतीय मनीषियों ने समाज का वर्गीकरण इस प्रकार किया है कि सभी व्यक्तियों को उन्नति करने का अवसर प्राप्त हो। महर्षि दयानन्द का कहना है कि समाज का वातावरण इस प्रकार का हो कि हम सदैव सत्य का आचरण कर सकें इसलिये आर्यसमाज के छठे नियम में उन्होंने कहा है कि **सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये**। जब इस प्रकार का वातावरण बन जावेगा तो मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा। इस के लिये उन के अनुसार वेद में बतलाया मार्ग अपनाना पड़ेगा क्योंकि मनुष्य का ज्ञान संशयात्मक हो सकता है परन्तु वेद का ज्ञान निर्भ्रान्त है। वेद में सामाजिक संगठन के लिये बहुत सुन्दर उपदेश है—हे मनुष्यों! साथ मिलकर चलो, सम्यक् प्रकार से बोलो और अपने मन को समान बनाओ।[2] इसी प्रकार कहा है—संसार में जो कुछ भी है, उसमें परमात्मा व्याप्त है। यह संसार जो भोगस्वरूप प्राप्त हुआ है इसका उपयोग त्यागपूर्वक करो, लोभ मत करो। यह धन किसो

---

१ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।

२ संगच्छध्वं संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम् (ऋग्वेद १०.१०१)

का भी नहीं हुआ और न होगा।[1] बस्तुतः यह वेद का मार्ग सर्वोत्तम सुनहरी मार्ग है।

व्यक्तिगत कर्त्तव्य यह है कि हम स्वच्छ रहें, जो पुरुषार्थ के पश्चात् प्राप्त हो उसमें सन्तुष्ट रहें। सुख दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करें, ईश्वर को सर्वव्यापक जानते हुए उस का स्मरण करें[2] आदि नियम कहलाते हैं। ये व्यक्तिगत धर्म हैं इस का पालन करना चाहिये।

महर्षि जी के नीति सम्बन्धी विचारों का विवेचन करने से हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि मनुष्य एक इकाई है, वह नैतिक सिद्धान्तों का प्रारम्भ है अर्थात् समाज के लिये व्यक्ति और व्यक्ति के लिये समाज है। जबकि हेगल कहता है समाज के लिये व्यक्ति है। परन्तु ऋषि जी के विचारानुसार दोनों में किसी एक का महत्त्व न्यून नहीं समझा जा सकता है। काण्ट का जो यह कहना है शुभ ऐसा हो जो अपने में शुभ हो अर्थात् संक्षेप शुभ, शुभ नहीं है। परन्तु वह शुभ क्या-क्या हो ? इस को काण्ट गिना नहीं पाये। अतएव ऋषि जी का नीति शास्त्र व्यावहारिक है। उसे व्यवहार के धरातल की कसौटी पर कस कर देखा जा सकता है। वे कहते हैं कि दुष्टता को सहन करने वाला दुष्ट मनुष्य से भी बुरा है। अहिंसा कहां पर हिंसा, और हिंसा कहां पर अहिसा बन जाती है इस का सुन्दर विवेचन ऋषि जी ने सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास के राजनीति प्रकरण में किया है जबकि काण्ट इस से भिन्न मानता है।

ऋषि दयानन्द जहां यह बतलाते हैं कि इन नैतिक सिद्धान्तों का उपयोग हमें बुद्धिमानी से करना होगा वहां वे यह भी नहीं मानते है कि आचार अपने-अपने देश की मान्यता है, क्योंकि अहिंसा आदि शाश्वत नियमों को स्वीकार करते हैं। पूर्व अफ्रीका के किसी स्थान पर चतुर चोरों को पारितोषिक दिया जाता है। अतः उनका यही नैतिक सिद्धान्त हुआ। उत्तर–नैतिक सिद्धान्तों को परिवर्तनशील नहीं माना जा सकता है। चोरी करना सब स्थानों पर बुरा है। नैतिकता के कुछ शाश्वत सिद्धान्तों को सार्वभौम मानना ही होगा। हां यदि कभी आपत्ति काल में किसी राष्ट्र के रक्षक राष्ट्र की रक्षा के लिये ऐसा करते हैं तो ये एक अपवाद माना जा सकता है, क्योंकि उन की भावना नैतिक है। अपने स्वार्थ के लिये चोरी आदि कभी भी, कहीं भी नैतिक नहीं है।

□

---

१ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेनभुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।। यजु० ४०-१।

२ शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।। (योग०, सत्यार्थ तृ० समु०)

स्वामी दयानन्द के विवाह विषयक विचार

—रवीन्द्र कुमार, रिसर्चस्कॉलर

भारतीय दर्शन के महान् आधुनिक चिन्तक तथा समाज सुधारक स्वामी दयानन्द 'सरस्वती' ने अल्प आयु में मानव विवाह को एक राष्ट्रीय क्षति के रूप में स्वीकार करने के उपरान्त उन्होंने इसको पूर्णतया समाप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया है। चिरकाल से व्याप्त इस सामाजिक बुराई की जो अज्ञानता पूर्ण स्थिति की द्योतक है तथा भावी पीढी के लिए एक अभिशाप है, को इस राष्ट्र के प्रति चिन्तित व्यक्तित्व ने मानवता हेतु अभिशाप की संज्ञा दी है।

शताब्दियों पूर्व यूनान के दार्शनिक प्लेटो ने जनसंख्या की वृद्धि तथा अज्ञानता की स्थिति में विवाह के प्रति मानव विश्व को सचेत किया था।[1] परन्तु प्लेटो का दृष्टिकोण अति अव्यवहारिक तथा संकुचित था जिस कारण वह कार्यान्वित नहीं हो सका तथा उसमें जो अच्छाई भी थी, वह भी आलोचना की शिकार हो गई। महर्षि दयानन्द ने इसी दृष्टिकोण को प्रदान कर मानव विश्व को देन के रूप में प्रदान किया तथा इसकी मुख्य विशेषतायें ये हैं—

१—श्रेष्ठ व्यवहारिकता-युक्त २—आधुनिकता से युक्त तथा ३—वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त

यदि एक सौ वर्ष पूर्व भी महर्षि के गम्भीर संकेत को पूर्णता से ग्रहण कर लिया जाता तो कम से कम भारत की जनसंख्या विषयक दयनीय दशा आज नहीं होती, क्योंकि बाल विवाह की इस कुरीति ने जनसंख्या वृद्धि में उच्च भूमिका निर्वाह की है।

बाल विवाह निषेध चिन्तन, महर्षि दयानन्द द्वारा प्रदत्त वह अमूल्य देन है जो उसको एक समाज-वैज्ञानिक ठहराती है। उनके द्वारा इस संदर्भ में दिया गया प्रत्येक तथ्य अटल सत्य पर आधारित तथा वैज्ञानिक है। जितना महत्त्व इसके लिये उनके विचारों का तब था, उससे भी अधिक आज है क्योंकि यह समस्या विभिन्न रूपों में आज भी विद्यमान है। न केवल भारतवर्ष ही अपितु समस्त विश्व के लिये उनके विचार इस हेतु महत्त्वपूर्ण भी हैं।

बाल-विवाह : एक सामाजिक कुरीति—

भारत में बाल विवाह एक सामाजिक कुरीति है जो विभिन्न रूपों में विद्यमान रही है तथा यह हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि इस कुप्रथा को दर्शन या धर्मग्रन्थों से त्रुटिपूर्ण रूप में जोड़ने का

---

१ राजनीति दर्शन का इतिहास : जार्ज एच० सेबाइन, पृष्ठ ५५/५६।

प्रयास किया गया। शास्त्रों के ठेकेदारों द्वारा इस सम्बन्ध में अपूर्ण व असत्य अर्थ निकाल कर यह प्रमाणित करने का प्रयास जारी रहा कि छोटी आयु में विवाह शास्त्र-सम्मत है। महर्षि दयानन्द ने इस त्रुटिपूर्ण व पाखण्ड पूर्ण अर्थों को ललकारा तथा उचित व सत्य व्याख्याएँ करके जनमानस को सचेत किया।

"पाराशरी" व "शीघ्रबोध" में उल्लिखित इस तथ्य को कि ८ वर्ष में ही कन्या का विवाह कर देना चाहिये क्योंकि इसके उपरान्त "रजस्वला कन्या" को देखकर माता पिता व उसका बड़ा भाई नरक के भागी होते हैं[1] को महर्षि ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि इस सन्दर्भ में हमें सत्य शास्त्रों को स्वीकार करना चाहिये तथा मिथ्यापूर्ण शास्त्रों को त्याग कर देना चाहिये। "मनुस्मृति" का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि उसमें लिखा है—

"त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥[2]

अर्थात्—"कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे" तो जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तीन वर्षों में ३६ बार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।[3]

महर्षि दयानन्द ने विवाह के इस प्रसंग में वेदों में लिखित यथ्यों को पूर्णता से ग्रहण करने का आह्वान भी किया। समाज में फैली इस कुरीति तथा उस पर त्रुटिपूर्ण ढंग से मिथ्या शास्त्रों के उदाहरणों का खण्डन कर महर्षि ने विवाह विषयक बैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। १६ बर्ष से कम आयु की कन्या तथा २५ वर्ष से कम आयु के वर विवाह को महर्षि ने आज्ञा प्रदान नहीं की। कन्या का विवाह १६ बर्ष से लेकर २५ वें वर्ष तक तथा वर का २५ वर्ष से ४८ बर्ष तक उचित ठहराते हैं।

बाल-विवाह के घातक परिणाम—

अपरिपक्वता की उस स्थिति, जिसने एक रोग के रूप में जन्म लेकर समाज को क्षतिग्रस्त व रोगी बना दिया, को महर्षि ने एक योग चिकित्सक के रूप में पकड़ा। उसके विभिन्न परिणामों से अवगत होकर पश्चात् चिन्तन करने की अचूक ओषधी प्रदान की। मुख्य रूप से महर्षि ने जो घातक परिणाम इस हेतु प्रदर्शित किये वे निम्नलिखित हैं—

---

१ "सत्यार्थ प्रकाश," चतुर्थ समुल्लास—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, प्रथम संस्करण—२०३८, पृ० ५५।
२ वही पृ० ५७। ३ वही।

अपरिपक्वता की स्थिति–

जिससे शारीरिक व मानसिक दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है तथा ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं हो पाती है। ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थिति शारीरिक क्षमता को सुदृढ़ करने एवम् विद्याध्ययन द्वारा मानसिक परिपक्वता की होती है। अत: इस अवस्था में विवाह अत्यन्त ही हानिकारक है। यह प्रश्न भी देश के भाग्य से जुड़ा है कि वह पीढी जो कि देश की भावी कर्णधार है मानसिक व शारीरिक स्थिति से दुर्बल होने पर देश को कैसे श्रेष्ठ नेतृत्व दे सकेगी ? अत: उनका कथन अटल सत्य है कि—

जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण रहित, बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्यां के ग्रहण पूर्वक विवाह के सुधार से ही सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ हो जाता है।[1]

जीवन साथियों में एक दूसरे के प्रति समझ, अल्पायु विवाह में संभव नहीं—

चूंकि अल्पावस्था के विवाहों में, संरक्षकों की प्रधानता होती है अत: अज्ञानतावश वर तथा वधू एक दूसरे के विचारों को जान नहीं पाते, परिणाम स्वरूप कालान्तर में मानसिक असन्तुलन, विचार भिन्नता उत्पन्न होती है। गृह–क्लेश बढ़ता है जो कि समाज तथा देश दोनों के लिये अत्यन्त हानिकारक है। पूर्वकाल से ही इस बात की चेतावनी मनु जी द्वारा भी दी गई—

कामममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यार्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥[2]

चाहे कन्या ऋतुवाली होकर मरने तक घर में बैठी रहे परन्तु गुणहीन के लिये इसका कभी दान न करें।[3]

जन्मने वाली पीढ़ी के लिये अत्यन्त हानिकारक–

बाल्यावस्था में विवाह का यह भी एक महत्त्वपूर्ण परिणाम है कि जन्म लेने वाली पीढी शारीरिक एवम् मानसिक दोनों रूपों में शक्तिहीन होती है। महर्षि का कथन अटल सत्य है कि वर

---

१ सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, चतुर्थ समुल्लास–पृ० ५५।
२ मनुस्मृति–पृष्ठ ३७५।
३ सत्यार्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ ८।

की दुर्बल इन्द्रियां तथा वधू का अविकसित गर्भाशय पूर्ण शिशु निर्माण करने में सक्षम नहीं होवे। साथ ही अल्पायु में यौन सम्बन्धों को स्थापित करने में दोनों वर-वधू सक्षम नहीं होवे। यह प्रसूति विज्ञान का भी कहना है यदि अल्पायु में सन्तानोत्पत्ति होती भी है तो निःसन्देह शिशु शारीरिक रूप से तथा मानसिक रूप से दुर्बल होंगे। विभिन्न रूपों में दुर्बलताओं का प्रभाव बुरे रूप से जीवन पर पड़ता है।1

इस प्रकार उपरोक्त कारण जो कि बाल विवाह के परिणाम स्वरूप सम्मुख आते हैं तथा जिनका प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव राष्ट्र पर पड़ता है जिनके प्रति महर्षि ने वैज्ञानिक रूप से सचेत किया है। महर्षि ने एक शताब्दी पूर्व इस दोषपूर्ण कुरीति से अलग हटने का आह्वान किया था। एक शताब्दी में टुकडे करने पर २५ वर्षों के चार बराबर भाग होंगे तथा सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री माल्थस का यह नियम है कि "यदि परिस्थितियां अनुकूल रहें तो २५ वर्षों में जनसख्या दो गुणी हो जाती है अविकसित मस्तिष्क व अल्पायु विवाह के कारण जनसंख्या में वृद्धि बड़े पैमाने पर हुई जिससे सभी परिचित हैं। इस कुप्रथा का यदि तभी पूर्ण निषेध हो गया होता तो जनसंख्या की गम्भीर समस्या इस रूप में न दीखती ।

हमें आज भी समाज के उस क्रान्तिकारी वैज्ञानिक की इस बात पर पूर्णता से देखकर इस कुप्रथा को समाप्त करने की नितान्त आवश्यकता है। यदि जीवन को सुखी, समाज को श्रेष्ठ तथा राष्ट्र को उन्नतिशील बनाना है तो उस महर्षि के मार्ग को अपनाना ही होगा तथा मानवता को कुप्रथाओं से पृथक् करना ही होगा।

□

---

१ ऊन षोडश वर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्। यद्याधते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थ : स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः। तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥
सुश्रुत–धनवन्तरि।

स्फोटवाद

—डॉ विजयपालशास्त्री
प्रवक्ता—दर्शन-विभाग

स्फोटवाद वैयाकरणों का प्रधान सिद्धांत है किन्तु पातञ्जल योगसूत्र में भी स्फोटवाद का सिद्धान्त छिपा हुआ है। महर्षि पतञ्जलि ने योग शास्त्र का अनुशासन करते हुए तृतीय पाद में संयम जन्य सिद्धियों के प्रकरण में इस सिद्धान्त की ओर संकेत किया है। "शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात संकरस्तत्प्रविभाग संयमात् सर्वभूतरुत ज्ञानम्"1 इस सूत्र में निगूढ स्फोटवाद के सिद्धान्त को भाष्यकार व्यासदेव ने प्रकाशित किया तथा आचार्य विज्ञानभिक्षु, वाचस्पतिमिश्र, हरिहरानन्द–आरण्यक और नागेश भट्ट आदि व्याख्याकारों ने सरलीकरण की प्रक्रिया द्वारा उसे सुवेद्य बनाया।

योग सम्मत स्फोटवाद के विवेचन से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि इस सिद्धान्त की उत्पत्ति में क्या हेतु है? किन-किन दार्शनिकों ने इसे मान्यता दी है और कौन-कौन इसके विरोधी हैं?

स्फोट की आवश्यकता—

अपना अभिप्राय दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाषा या बोली ही एक माध्यम है और भाषा के द्वारा ही एक प्राणी दूसरे का तात्पर्य स्वयं समझता है। किन्तु प्रश्न यह है कि किसी पद या वाक्य का अर्थ सभी व्यक्ति एकसा क्यों ग्रहण करते हैं? स्थूल रूप से इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा सकता है कि श्रवण से गृहीत होने वाले शब्दों में किसी अर्थ-विशेष को बतलाने का सामर्थ्य अवश्य रहता है जिससे सभी व्यक्ति उच्चरित पद का एक सा अर्थ ग्रहण करते हैं। दर्शन की भाषा में इसका उत्तर इस प्रकार है—घट पट आदि पद वर्ण रूप हैं। अनेक वर्णों के संयोग से एक पद बनता है और उस पद से अर्थज्ञान होता है। उत्पन्न होकर नष्ट होना वर्णों का स्वभाव है, अर्थात पहले क्षण में वर्ण उत्पन्न होता है, दूसरे क्षण में स्थिति धारण करता है और तृतीय क्षण में नष्ट हो जाता है। अनेक वर्णों का एक साथ उच्चरित होना सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वर्ण पृथक् पृथक् समय में उच्चरित होता है। जैसे गो शब्द के ग् वर्ण के उच्चारण के समय 'ओ' और विसर्ग की उत्पत्ति नहीं होती तथा विसर्ग के उच्चारण काल में ग' वर्ण नहीं रहता है। इस प्रकार जब उत्पत्ति विनाशशील वर्णों का सहभाव ही नहीं बनता तब वे भिन्न-भिन्न क्षणवर्ती वर्ण संयोग के अभाव में पद का निर्माण किस प्रकार कर सकते हैं जिससे अर्थ ज्ञान हो सके? प्रत्येक असंयुक्त वर्ण में अर्थ-प्रत्यायन की शक्ति स्वीकार नहीं की गई है। अतः भिन्न-भिन्न काल में उच्चरित वर्णों से विशेष प्रक्रिया द्वारा होने वाले अर्थ बोध के लिए स्फोट सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

१. योग सूत्र ३/१७

वैयाकरणों का कथन है कि वाणी से घ्, अ, ट्, अ—वर्णात्मक तथाकथितप पद एक विशेष क्रम से उत्पन्न होकर श्रोत्रेन्द्रिय से गृहीत होता है। अर्थात् उक्त वर्णों के उत्पन्न होने पर तत् तत् वर्ण विषयक एक श्रावण-प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है। तदनन्तर तत् तत् श्रावण प्रत्यक्ष से तत् तत् वर्ण विषयक एक-एक संस्कार बनता है। उस उस संस्कार के साथ अन्तिम वर्ण के प्रत्यक्ष से अखण्ड घटात्मक पद स्फोट की अभिव्यक्ति होती है। उस अभिव्यक्त पदस्फोट से घट पदार्थ की स्मृति होती है। इसी प्रकार वाक्यार्थ बोध के लिए वाक्य स्फोट स्वीकार किया गया है।

वैयाकरणों ने स्फोट शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से स्वीकार की है। १—स्फुटति=व्यक्ती भवति अर्थोऽस्मादिति स्फोट:— अर्थात् जिससे अर्थ स्फुटित हो वह स्फोट है। वर्णों से स्फोटात्मक पद की अभिव्यक्ति होती है इसलिए वैयाकरणों ने स्फोट की दूसरी व्युत्पत्ति यह की है-२-स्फुट्यते=अभिव्यज्यते वर्णैरिति स्फोट:=अर्थात् जो वर्णों से स्फुटित होता है वह स्फोट कहलाता है। इन दोनों व्युत्पत्तियों के आधार पर स्फोट का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—"वर्णाभिव्यङ्ग्यत्वे सति अर्थ-प्रतीति-जनकत्वं स्फोटत्वम्" अर्थात् जो वर्णों से अभिव्यक्त होकर अर्थ प्रतीति का जनक हो उसे स्फोट कहते हैं।

वैयाकरणों के मत में शब्द ब्रह्मरूप है.1 अत: स्फोट ब्रह्मतत्त्व का दूसरा नाम है। लौकिक वर्णात्मक शब्द के लिए स्फोट शब्द का व्यवहार वे उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार लोक में चित्र को देखकर 'यह मनुष्य है' यह व्यवहार प्रचलित है।

वैयाकरणों के अनुसार शब्द चार प्रकार के हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। इन चारों शब्दों में परा वाक् आत्मस्वरूप है। परा वाक् अत्यन्त सूक्ष्म है अत: सर्वजनवेद्य नहीं। इसे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। निर्विकल्पक समाधि में स्थित योगी ही इसका साक्षात्कार कर सकते हैं। परा वाणी जब पश्यन्ती अवस्था को प्राप्त होती है तब भी वह साधारण पुरुषों के व्यवहार योग्य नहीं होती। वह भी योगियों के द्वारा ही वेद्य है। परा और पश्यन्ती में शब्द और अर्थ इतने मिले होते हैं कि उनमें थोड़ा सा भी पृथक्ता का बोध नहीं होता। जब वाणी मध्यमा अवस्था को प्राप्त होती है तभी शब्द और अर्थ में पार्थक्य का बोध होता है यद्यपि मध्यमा में शब्द और अर्थ में तादात्म्य रहता है फिर भी सर्वसाधारण को उनका पृथक् पृथक् बोध होने लगता है। किन्तु मध्यमा वाणी का स्वयं अनुभव किया जा सकता है, उसको दूसरे लोग सुन नहीं सकते। इसलिये उसे सूक्ष्म कहा गया है। इस प्रकार परा, पश्यन्ती, मध्यमा ये तीनों वाणी क्रम से सूक्ष्मतम, सूक्ष्मतर और सूक्ष्म कही गयी हैं। इसके पश्चात वैखरी वाणी ही वक्ता के मुख से उच्चरित होकर श्रोत्रेन्द्रिय का विषय

१—अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।। वाक्य पदीय १/१

बनती है। किन्तु इतने पर भी अर्थ बोध नहीं होता। जब वैखरी वाणी से हृदय देश में स्थित वाणी में संक्षौभ उत्पन्न होता है तब मध्यमा में अवस्थित अर्थवाचक स्फोट की अभिव्यक्ति होती है तभी अर्थ बोध होता है। भर्तृहरि ने मध्यमा में ही अर्थबोधकता मानी है।

वैखर्या हि कृतो नादः परश्रवणगोचरः ।
मध्यमया कृतो नादः स्फोटव्यञ्जक उच्यते ।।

साँख्य, मीमांसा, वेदान्त और न्याय के दार्शनिक स्फोट को मान्यता नहीं देते। उनके मतानुसार वर्णों में ही वाचकत्व शक्ति है। अर्थ-ज्ञान के लिए स्वीकृत स्फोटवाद में गौरवदोष की उद्भावना कर ये लोग उसे अनावश्यक मानते हैं।

योगाभिमत स्फोटवाद का प्रतिपादन

योग के व्याख्याकारों ने शब्द को वाचक सिद्ध करने के लिए उसका तीन प्रकार से विभाजन किया है। आचार्य विज्ञानभिक्षु के अनुसार शब्द तीन प्रकार का होता है—वर्णभिन्न, वर्णात्मक और स्फोटात्मक। शंखादि अथवा वागिन्द्रिय के साथ जब उदान वायु का अभिघात होता है तब ध्वनि की उत्पत्ति होती है। वीची-तरंग न्याय से वह ध्वनि दूसरी ध्वनि को उत्पन्न करता है। इस परम्परा से ध्वनि श्रोत्र देश से सम्बद्ध होता है। श्रोत्र देश से सम्बद्ध उक्त ध्वनि का परिणाम विशेष नाद कहलाता है। वीची तरंग न्याय से उक्त ध्वनि का परिणाम विशेष नाद प्रथम क्षण में अस्पष्ट होने के कारण वर्णभिन्न कहलाता है। इसी प्रकार वागिन्द्रिय के साथ उदानवायु के अभिघाताख्य संयोग के आधार पर उक्त वीची-तरंग न्याय से ध्वनि का परिणाम विशेष नाद द्वितीय क्षण में स्पष्ट होकर वर्ण कहलाता है। अर्थात् उक्त प्रकार से नाद ही वर्णभिन्न शब्द है और नाद ही वर्णात्मक शब्द है। तीसरे प्रकार का शब्द स्फोटात्मक होता है।

वर्णभिन्न और वर्णात्मक दोनों प्रकार के शब्द वाचक नहीं होते। क्योंकि वाचक होने के लिए वर्णों की सहस्थिति या एकत्रीभाव अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु आशु विनाशशील वर्णों का सहावस्थान किसी प्रकार सम्भव नहीं। यथा गौः शब्द के अन्तिम वर्ण विसर्जनीय के उत्पत्ति काल में गकार नष्ट हो जाता है। इस प्रकार गकार के साथ विसर्गों की स्थिति नहीं हो सकती। अतः जिस प्रकार वर्ण भिन्न शब्द वाचक नहीं है उसी प्रकार सहभाव के अभाव में वर्णात्मक शब्द भी वाचक नहीं हो सकता।

(क्रमशः)

□

वैदिक साहित्य में उपनिषदों का स्थान

—आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
उपकुलपति गु० कां० वि० वि०

वैदिक साहित्य में चार मूल संहिताओं एवं तत्सम्बन्धी साहित्य का ग्रहण किया जाता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—१ संहिता भाग २—ब्राह्मण भाग ३—आरण्यक तथा उपनिषद् भाग ४—सूत्र भाग। मूल संहिताएं चार हैं जो ऋग्, यजु, साम, तथा अथर्व नाम से विख्यात हैं। इनमें से प्रत्येक की कई-कई शाखाएं भी है। ब्राह्मण भाग में वेद की कर्म-काण्ड परक व्याख्या है। नाना प्रकार के यज्ञ—भागों के विधि विधानों का यहां उल्लेख मिलता है। कुछ रहस्यात्मक कर्मकाण्ड की भी चर्चा उपलब्ध होती है। आरण्यक तथा उपनिषद् भाग कहीं-कहीं तो ब्राह्मण ग्रन्थों का अंश हैं और कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूप से निबद्ध हैं। जैसे बृहदारण्यकोपनिषद् शतपथ ब्राह्मण का अंश है जबकि ऐतरेयारण्यक और ऐतरेयोपनिषद्, ऐतरेय ब्राह्मण से स्वतन्त्र हैं। आरण्यकों में वानप्रस्थ मुनियों के आध्यात्मिक चिन्तन एवं दार्शनिक विचारों का संग्रह है। इनमें यज्ञ के आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन किया गया है। अरण्य में या एकान्तवास में इनका स्वाध्याय, मनन, चिन्तन एवं निदिध्यासन आदि करने के कारण इनका नाम आरण्यक पड़ा। उपनिषद् रोचक शैली से ब्रह्मविद्या का उपदेश करती हैं। चौथे सूत्र भाग का यद्यपि वेदांगों में कल्प शीर्षक के अन्तर्गत परिगणन किया गया है तो भी इसका स्वतन्त्र महत्त्व होने से यहां पृथक् ग्रहण किया गया है।

सूत्र ग्रन्थों में तीन प्रकार के सूत्रों का समावेश होता है, श्रौत-सूत्र, गृह्य-सूत्र तथा धर्म-सूत्र। श्रौत-सूत्रों में कुछ दिन मास या वर्ष अनवरत चलने वाले महासत्रों की विधि का उल्लेख हुआ है, जिनमें अनेक अग्नियों तथा अनेक ऋत्विक् आदि का विधान होता था। गृह्य-सूत्रों में साधारण गृहस्थ के दैनिक यज्ञों तथा षोडश संस्कारों से सम्बद्ध निर्देश सङ्कलित हैं। धर्मसूत्रों में प्रमुख वर्णाश्रम धर्म एवं राजधर्मों का वर्णन है।

इस समग्र वैदिक साहित्य में उपनिषदों का प्रमुख स्थान है। यद्यपि आध्यात्मिक चिन्तन उपनिषत काल के पूर्व वैदिक काल में भी विद्यमान था तथापि जितना और जैसा स्पष्ट चिन्तन और विवेचन उपनिषदों में पाया जाता है उतना एवं वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उपनिषद् ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य भौतिक जगत् से परे उसके मूल सूत्र ब्रह्म और आत्मा तथा मूल प्रकृति का निरूपण करना है। वेद की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य एवं अभिप्राय उपनिषदों में उपलब्ध होने के कारण वैदिक साहित्य में इन का विशेष स्थान है। ब्राह्मण ग्रन्थों का कर्मकाण्ड भी वस्तुतः उपनिषदों के अध्यात्म ज्ञान की ही

तैयारी है। जीवन के चरमोद्देश्य के प्रति अग्रसर करने में और उस पथ में आती हुई नाना प्रकार की बाधाओं का समाधान करने में जैसी सफलता उपनिषदों को मिली है कदाचित् ही इन आध्यातिमक ग्रन्थियों के उद्घाटन में अन्य किसी साहित्य को मिली हो। उपनिषदें अपने अध्येता के चित्त पर एक अमिट छाप छोड़ जाती हैं। ये दिव्य आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं जो अपनी समुन्नत विचार-धारा, उदात्त-चिन्तन और अध्यात्मिक जगत् की रहस्यमयी अभिव्यक्तियों से देश-बिदेश के सभो व्यक्तियों को समान रुप से अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।

डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार—"उपनिषदों ने उन प्रश्नों को लिया है। जो मनुष्य के मन में उस समय उठते हैं जब वह गम्भीरता से चिन्तन करने लगता है और वे उनके ऐसे उत्तर देती हैं जिन्हें हमारा मन आज भी स्वीकार करना चाहता है।………जो भिन्नता दिखाई देती है वह केवल उनके प्रति हमारी पहुँच की और उन पर दिये जाने वाले जोर की ओर है।

उपनिषदों को जो भी मूल संस्कृत में पढता है, वह मानव आत्मा और परम सत्य के गुह्य और पवित्र सम्बन्धों को उजागर करने वाले उनके बहुत से उद्‌गारों के उत्कर्ष, काव्य और प्रबल सम्मोहन से मुग्ध हो जाता है और उसमें बहने लगता है। हम जब उन्हें पढ़ते हैं तो इन चरम प्रश्नों से जूझने वाले व्यक्तियों के मन की क्षमता, तत्परता और परिपक्वता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। इन समस्याओं को सुलझाने वाली आत्माओं का सभ्यता के सर्वोच्च आदर्शों से आज भी तात्त्विक तालमेल है और सदा रहेगा।

उपनिषदें अपनी स्थापनाओं को आध्यात्मिक अनुभूति पर आधारित करती हैं, इसलिये वे हमारे लिये अमूल्य हैं। उनके अध्ययन से धर्म उन मूल तत्त्वों को, जिनके बिना धर्म का कोई अर्थ नहीं रहता, सत्य के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने में सहायता मिलती है।"1

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के अनुसार —"प्राचीन भारत के नभोमण्डल में जाज्वल्यमान तारकावली में उपनिषद् वे सितारे हैं जिनका प्रकाश जीवन-यात्रा की घटाटोप अन्धकारपूर्ण रात्रि में हजारों सालों से बटोही का मार्ग-प्रदर्शन करता रहा है।"2

उपनिषदों का अध्यात्मवादी दृष्टिकोण जहां हमें परम सत्य का साक्षात्कार कराकर आनन्द विभोर कर निःश्रेयस् तक पहुँचाने का साधन है वहां वह हमें संसार में अभ्युदय से भी वञ्चित नहीं

---

१ दॉ प्रिंसिपल्स उपनिषदाज. अनु० रमानाथ शास्त्री, भूमिका पृ० ७।

२ एकादशोपनिषद् – भूमिका - पृष्ठ ९।

रखता।[1] जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस् की सिद्धि हो वही धर्म है और यही वेदों का लक्ष्य है। जहां वेद प्रतिपादित धर्म का लक्ष्य अभ्युदय एवं निःश्रेयस् है वहां निःश्रेयस् ही मुख्य है। वैसे ही उपनिषद् का मुख्य उद्देश्य निःश्रेयस् होते हुए मानव को सांसारिक दृष्टि से ऊँचा उठाना भी है। तो फिर उपनिषदों का वैदिक साहित्य में विशेष स्थान स्वाभाविक ही है। उस उपनिषद् साहित्य की अपनी विशेषता यह है कि इतने गूढ़तम रहस्य को इतने सुगम एवं रुचिकर प्रकार से उदाहरणों द्वारा ऐसा बोधगम्य बनाने का प्रयास किया गया है कि अध्येता को हृदयंगम करने में कठिनाई नहीं होती।

उपनिषदों के वैदिक साहित्य में स्थान के विषय में हम संक्षेप में यदि कहना चाहे तो कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य से इस अध्यात्मवादी दृष्टिकोण को निकाल देने पर उसका मूल्य उतना ही रह जायेगा जितना धान में से चावल निकाल देने पर तुस का रह जाता है। अतः यह ज्ञान हमारे संस्कृति रूपी शरीर की रीड़ की हड्डी है।

वाचस्पति गैरोला लिखते हैं—भारतीय विचारधारा में उपनिषदों के द्वारा एक नए युग का सूत्रपात हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर उपनिषद् ग्रन्थों तक सम्पूर्ण वाङ्मय मन्त्र संहिताओं का ही व्याख्यान रूप है फिर भी उनकी व्याख्या पद्धति कुछ भिन्न है। उदाहरण के लिये एक ही स्रोत से उत्पन्न ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों की विचारधारा में पर्याप्त असमानता है। कुछ दृष्टियों से यदि उपनिषदों को ब्राह्मण ग्रन्थों का आलोचना-ग्रन्थ कहा जाय तो अनुचित न होगा। उपनिषदों में वैदिक कवियों के तत्त्वान्वेषी विचारों का दर्शन होता है। वेदों में कर्म और ज्ञान दोनों धाराओं का समन्वय है। वेदों की कर्म-भावना को लेकर ब्राह्मणों की रचना हुई और ज्ञान-भाव को लेकर उपनिषदों की। उपनिषदों से चिन्तन एवं अन्वेषण के नये युग का सूत्रपात हुआ है। धर्म की व्यापक एवं उदात्त भावना संहिताओं में देखने को मिलती है। कर्मकाण्ड प्रधान ब्राह्मण ग्रन्थों ने धर्म के स्थूल रूप का प्रतिपादन किया। इसके विपरीत ज्ञान-काण्ड प्रधान उपनिषदों में धर्म के सूक्ष्म रूप का निरूपण किया गया।

यद्यपि संहिताएं ही उपनिषदों का स्रोत रही हैं, फिर भी जीवन की शाश्वत मान्यताओं के प्रति दोनों में भिन्न-२ रूप से विचार किया गया है। इस प्रकार उपनिषदों का वैदिक मान्यताओं को अपने अध्येता के हृदयों में बिठा सकने में अधिक सफल रहने के कारण वैदिक साहित्य में विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व है।

□

१ यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक १–१–३।
२ वैदिक साहित्य और संस्कृति – पृ० ११४।

प्राचीन भारत में वर्ण-व्यवस्था का फौजदारी कानून पर प्रभाव

—डॉ० राजपालसिंह

सृष्टि के आरम्भ में मानव एकाकी था, शनैः शनैः उसने समूह और समूह से समाज का पाथेय निर्मित किया आदि सृष्टि के विस्तृत क्षितिज पर वह बर्बरता एवं असभ्यता का जीवन व्यतीत करता था। मानव की खोज-प्रवृत्ति में उसे सामाजिक तथा आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर किया। सामाजिक प्राणी होने के परिणाम स्वरूप झगड़े और उपद्रव होने अवश्यम्भावी थे। ऐसी परिस्थितियों ने हा कानून को जन्म दिया। मनुष्य की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का अटूट सम्बन्ध फौजदारी कानून के साथ रहा है।

अधिकांशत: अपराधों की पृष्ठभूमि में सामाजिक तथा आर्थिक कारण रहें है, क्योंकि मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकतायें मूलत: इन्हीं दो कारणों से सम्बद्ध रही हैं। इस सन्दर्भ में राजनैतिक कारणों की भी अवहेलना नहीं की जा सकती किन्तु; व्यापक अर्थों में उनका समावेश सामाजिक कारणों में किया जा सकता है। मार्क्सवादी विचारक तो इतिहास की समस्त घटनाओं की व्याख्या आर्थिक दृष्टि से ही करते हैं। इस कथन में सत्यता का अंश तो स्वीकार किया जा सकता है; किन्तु यह पूर्णत: सत्य नहीं है।

यदि हम प्राचीन भारतीय इतिहास का अवलोकन करें तो हमें विदित होता है कि समाज में वर्ण-व्यवस्था का विशेष महत्त्व रहा है। सामाजिक संगठन की पीठिका पर वर्णव्यवस्था दीर्घकाल से सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करती आ रही है। आधुनिक युग में भी वर्ण-व्यवस्था अपने परिवर्तित रूप में क्रियाशील है। प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था का फौजदारी कानून पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक व्यवस्था की एक प्रमुख इकाई होने के कारण समाज और फौजदारी कानून पर ही नहीं वरन् न्याय के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभाव दिखाई देता है।

प्राचीन युग में वर्ण-व्यवस्था एक संगठित रूप ले चुकी थी मुख्यत: इसमें चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। ब्राह्मण जिनका समाज में उच्च स्थान था, का वर्णन ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर किया गया है! यही नहीं, ब्राह्मणों का सर्वाधिक महत्त्व दर्शाने के लिये एक स्थान पर कहा गया है कि देश का जो राजा ब्राह्मणों का आदर करेगा वही सुख-शान्ति को प्राप्त होगा। तैत्तिरीय-संहिता में ब्राह्मण को देवता से भी ऊंचो महत्ता दी गई है और उसे समाज में सर्वोच्च स्थान

दिया गया है। वर्ण व्यवस्क्षा का मूल आधार जन्मगत था। जन्म के अनुसार ही वर्ग-विभाजन होता था केवल ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण ही मनुष्य ब्राह्मण कहलाता था। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में लिखा है कि दस वर्षीय ब्राह्मण सौ वर्षीय क्षत्रिय से श्रेष्ठ है।

सामाजिक उच्चता की दृष्टि से प्रथम सोपान पर द्विज प्रतिष्ठित थे। द्वितीय सोपान क्षत्रिय का था। मनु का कथन है कि जन्म से ही ब्राह्मण क्षत्रिय की अपेक्षा श्रेष्ठ है, परन्तु गौतम ने अनेक स्थानों पर ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की श्रेष्ठता का निराकरण करते हुए दोनों को ही सामाजिक उत्थान के लिए समान रूप से महत्त्व दिया है। एक स्थान पर उनका कथन है कि राजा और विद्वान् ब्राह्मण दोनों ही लोक-धर्म की रक्षा करते हैं।

इस सामाजिक संगठन में तृतीय स्थान वैश्यों का आता था। ऋग्वेद के 'पुरुष-सूक्त' के अनुसार आद्य पुरुष के मुख, बाहु, जांघों तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति हुई।

वर्ण व्यवस्था की अन्तिम कड़ी शूद्रों की थी। शूद्रों की अवस्था समाज में अन्य की तुलना में सर्वाधिक निम्न, हीन और दयनीय थी। उन्हें अपनी जीविका उपार्जन हेतु अन्य वर्णों पर निर्भर रहना पड़ता था। उनका प्रमुख धर्म उनकी सेवा करना था। समाज में उनकी निम्नावस्था का पता इसी बात से चलता है कि बौधायन ने शूद्र की हत्या करने वाले के लिए इसी दण्ड को निर्धारित किया है जो किसी कौवे. उल्लू तथा कुत्ते के हत्यारे को मिलता था सारांशगत शूद्र पद दलित थे।

इस व्यवस्था में चारों वर्णों के कार्य भी जन्मगत निर्धारित किए गए थे। ब्राह्मण समाज की सर्वोच्च इकाई थे, पूज्य थे, अतः उन्हें पठन-पाठन का अधिकार था। क्षत्रियों का कार्य अन्य वर्णों की रक्षा करना था अर्थात् उनका कार्य युद्ध का था। वैश्य व्यापारिक कार्यों के निर्धारक थे। अन्तिम वर्ण शूद्र पर इन तीनों वर्णों की सेवा का उत्तरदायित्व था।

प्रागैतिहासिक काल में फौजदारी कानून की क्या स्थिति थी, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह अनुमान तो लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज में अपराध तो अवश्य ही होते होगें, और दण्ड की व्यवस्था होगी। प्रत्येक समाज में अपराधों के अनुसार दण्ड की व्यवस्था की जाती है। मनुष्य तो संवेदनशील एवं प्रबुद्ध प्राणी है, पशु-वर्ग में भी दण्ड की व्यवस्था देखी जाती है। विद्वान् सर हेनरी मैन ने अपराध-संहिता के सम्बन्ध में यह मत प्रतिपादित किया है। कि प्राचीन समाज में इसका अस्तित्व नहीं था। उस समय अपराध के स्थान पर पाप एवं च्युति हो सकते थे, क्योंकि उनमें प्रतिफल की व्यवस्था थी। विद्वान् मैन के अनुसार राज्य एवं समग्र समुदाय के विपरीत किये गये अपराध का उदय उत्तरवर्ती है। उस समय विधि के उल्लंघन में क्षति की व्यवस्था थी, अपराध संहिता

की नहीं। विद्वान् हेनरी मेन का यह निष्कर्ष है कि १२७ ई० पू० वर्ष पहले से अपराध विधि का उदय नहीं हो पाया था। मैन के उपरोक्त विचार तर्कसंगत नहीं हैं अनेक विद्वानों ने उनकी कटु आलोचना की है व्यक्तिगत रूप से हमें भी मैन के विचार को ग्रहण करने में कठिनाई प्रतीत होती है। यह हो सकता है कि उनके विचार यूरोप में कुछ सीमा तक लागू होते हों; किन्तु आज के लिये सर्वथा अग्राह्य है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व तो आचार्य कौटिलय हैं, जिन्होंने अपने 'अर्थशास्त्र' में अपराध और उसके लिये निर्धारित दण्ड का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है।

वास्तव में भारतीय विचार को समझने में विद्वानों ने बड़ी भूल की है। वे यूनान को विश्व सभ्यता का जनक मानकर भारत की ओर देखते रहे हैं और उनका यह पूर्वाग्रह था कि कोई भी भारतीय विचार यूनानी विचार से पूर्ववर्ती नहीं हो सकता। उनके ग्रन्थ का यही मूल है। मैगस्थनीज यह मानता है कि उसके समय में भारत में लिखित विधि थी ही नहीं किन्तु लिखने की कला से अनभिज्ञ लोग स्मरण से ही काम चलाते थे। इस प्रकार स्वयं ही वह अपनी आपत्ति समाप्त कर लेता है।

मानव–जीवन का लक्ष्य सुख और शान्ति रहा है; किन्तु उसी के साथ-साथ कुछ मनुष्यों में अपराध करने की भी स्वाभाविक प्रवृत्ति बन गयी थी। ऐसी स्थिति में समाज को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये दण्ड देना आवश्यक समझा गया। इसीलिये भारत में फौजदारी कानून का विकास हुआ।

प्राचीन भारतीय दण्ड व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक क्षेत्र में वर्ण व्यवस्था का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सर्वप्रथम हम न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न को ही लेते हैं। न्यायाधीश का ब्राह्मण होना आवश्यक था, किन्तु ब्राह्मण की अनुपस्थिति में क्षत्रिय तथा अन्य वर्ण की नियुक्ति हो सकती थी। जबकि शूद्र की नियुक्ति किसी भी अवस्था में नहीं हो सकती थी। मनु का तो यह कथन है कि मूर्ख ब्राह्मण न्यायाधीश के पद पर तो नियुक्त किया जा सकता है, पर विद्वान् शूद्र नहीं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न वर्णों के लिये दण्ड–विधान में भी अन्तर था। यदि एक उच्च वर्ण के व्यक्ति किसी निम्न वर्ण के व्यक्ति को घायल करता था तो इस अपराध में उसे कम दण्ड दिया जाता था; परन्तु यदि निम्न वर्ण का व्यक्ति किसी उच्च वर्ण के व्यक्ति को घायल करता था तो उस अपराध में उसे अधिक दण्ड दिया जाता था। यह स्थिति न्याय के प्रत्येक क्षेत्र में थी। यहां तक कि विभिन्न वर्णों के लिये दिव्य साक्ष्य भी अलग-अलग प्रकार के थे। फौजदारी कानून के अन्तर्गत ब्राह्मणों को विशेष सुविधाएं प्राप्त थीं। ब्राह्मणों को इस कानून के अन्तर्गत कम दण्ड दिया जाता था, शूद्रों की स्थिति करुणाजनक थी। शूद्र और कुत्ते को मारने पर एक समान दण्ड था।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र द्वारा किसी ब्राह्मण का अपमान या अपशब्द कहने पर क्रमशः १०० पण, २५० पण का दण्ड दिया जाता था; परन्तु यदि ब्राह्मण तीनों वर्णों के साथ यह अपराध करता

था तो क्रमशः ५०, २५, १२ पण दण्ड दिया जाता था। गौतम के अनुसार शूद्र का अपमान करने पर या अपशब्द कहने पर ब्राह्मण को दण्ड नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकार एक क्षत्रिय की हत्या पर एक हजार गाय और एक बैल दण्ड स्वरूप अपराधी को देना पड़ता था, वैश्य की हत्या करने पर सौ गाय और एक बैल और शूद्र की हत्या करने पर १० गाय और एक बैल का दण्ड दिया जाता था। इसी प्रकार एक ही अपराध में भिन्न-भिन्न वर्णों के लिये दण्ड थे।

ब्राह्मणों को दण्ड—

ब्राह्मणों की स्थिति जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं अति सुविधाजनक थी कानून ब्राह्मणों के पक्ष में था। फौजदारी कानून के अन्तर्गत ब्राह्मणों को मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। उन्हें मृत्युदण्ड के स्थान पर देश निष्कासन का दण्ड दिया जाता था। बृहस्पति के अनुसार किसी भी अपराध में ब्राह्मण को मृत्यु-दण्ड या शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाना चाहिये। यदि हिंसा अथवा गम्भीर अपराध करें तो उसे देश निष्कासन या उसके सिर को मुंडवा देना चाहिये या उसके मस्तक पर उसके द्वारा किये गये अपराध का चिन्ह अंकित कर गधे पर बैठाकर नगर में घुमाना चाहिये। किन्तु इन सबका अर्थ यह नहीं है कि ब्राह्मणों को केवल देश निष्कासन या अपराध का चिन्ह अंकित कर मुक्त कर दिया जाता था। गौतम के अनुसार प्रथम बार अपराध करने पर ब्राह्मण को विशेष सुविधायें प्राप्त थीं।

अपराध की पुनरावृत्ति करने पर ब्राह्मण को सामान्य नागरिक की तरह दण्डित किया जाता था।

ब्राह्मणों को भी मृत्यु-दण्ड दिया जा सकता है। गर्भपात, ब्राह्मण पर शस्त्र उठाना एवं राज विद्रोह के अपराध में ब्राह्मण को भी मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। परन्तु ब्राह्मणों को मृत्यु-दण्ड कदाचित् किसी अपराध में ही दिया जाता था। सामान्य रूप से उन्हें देश निष्कासन का दण्ड ही दिया जाता था। देश निष्कासन का दण्ड ब्राह्मणों के लिये मृत्यु-दण्ड से भी अधिक कष्टदायी था, क्योंकि केश मुण्डित मस्तक पर चिन्ह अंकित करने व देश से निष्कासित करने से ब्राह्मण की सामाजिक मृत्यु ही हो जाती थी। वह धर्म से बहिष्कृत हो जाता था। इस प्रकार मृत्यु दण्ड की अपेक्षा यह स्थिति ब्राह्मण के लिये अधिक लज्जाजनक थी। ब्रह्म-हत्या महान् अपराध था। इसके लिये मृत्यु-दण्ड निश्चित था। परन्तु अत्याचारी ब्राह्मण के वध में कोई दोष नहीं माना जाता था, भले ही वह गुरु ही क्यों न हों।

इस प्रकार स्थिति का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि कानून के अन्तर्गत ब्राह्मणों को विशेष सुविधायें प्राप्त थीं अतः वर्ण व्यवस्था का फौजदारी कानून पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। परन्तु उक्त सब बातों से यह भी स्पष्ट होता है कि विधि से परे कोई नहीं था। □

उपन्यासकार प्रेमचन्द्र–एक समीक्षा

--ज्ञानचन्द शास्त्री
हिन्दी विभाग, गुरुकुल कागड़ी, विश्वविद्यालय

हिन्दी जगत् के उपन्यास सम्राट एवं मूर्धन्य कहानीकार प्रेमचन्द एक उच्चकोटि के साहित्यकार थे। इनकी तुलना यूरोपीय उपन्यासकार टालस्टाल गोर्की जैसे विश्वविख्यात उपन्यासकारों में की जाती है। प्रेमचन्द की विशेषता रही है, युग चेतना के साथ प्रगतिवादिता, पीड़ित मानवता के पक्के पक्षपाती रहे हैं।

प्रेमचन्द के प्रायः समस्त उपन्यास सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं को लेकर लिखे गये हैं। जहां प्रेमचन्द के उपन्यासों में तत्कालीन मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय समाज में प्रचलित कुरीतियों एवं कृषक वर्ग की समस्याओं का वास्तविक चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द ने अपने जीवन का अधिकाश भाग ग्राम में व्ययतीत कर ग्रामीण लोगों की आर्थिक दुरव्यवस्था एवं मनोदशा को समस्या के रूप में व्यक्त किया है। वस्तुतः व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव भी उनकी समस्याओं को यथार्थ रूप प्रदान करने में सहायक हुआ है। इस सम्बन्ध में एक स्थान पर डॉ० गुलाब राय ने लिखा है "हिन्दी साहित्य के इतिहास में जन-साहित्य के युग प्रवर्तक प्रेमचन्द हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सबसे बडी विशेषता है उनकी आदर्शवादिता। चरित्र की दृष्टि से वे निर्देशन करने में तथा घटना का निर्माण तथा उपसंहार करने में वे आदर्श का सदा ध्यान रखते हैं। दूसरी विशेषता है लक्ष्य की उन्मक्तता। उन्होंने प्रत्येक उपन्यास में सामाजिक और राजनैतिक प्रश्न उठाने हैं। उनका निर्णय भी हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है, निर्णय विवेचन करने के कारण प्रेमचन्द लक्ष्यवादी है और चरित्र तथा कथा के स्वरूप निर्माण में वे आदर्शवादी है।

प्रेमचन्द की रचना शिल्प के बारे में डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है "कबीर के बाद प्रेमचन्द ही एक ऐसे लेखक हैं। जिन्होंने जो कुछ देखा उसी को कहा और जो कहा उसे स्वयं आचरण में रखकर दिखाया।"

प्रेमचन्द युग में देश की सामाजिक जागृति एवं राजनैतिक चेतना के कारण स्थिति ऐसी बन गई थी कि उस समय हमें अपने वास्तविक रूप में अवगत कराने वाले, आन्तरिक शक्तियों का आभास देने वाले साहित्य की आवश्यकता थी। ठीक इन्हीं अपेक्षाओं की पूर्ति करते हुए अवतरित हुए।

प्रेमचन्द ने उपन्यास को नवीन दिशा की ओर अग्रसर किया और उसे यथार्थवादिता के कठोर धरातल पर ला खड़ा किया। जिससे उपन्यास मानव जीवन की वास्तविक झांकी को बिम्बित करने में समर्थ हो सका। प्रेमचन्द ने यथार्थ का सम्बन्ध आदर्श से स्थापित करना अभीष्ट समझा उनका समस्त साहित्य इसी भावना से अनुप्राणित है। गोदान, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन आदि समस्त उपन्यासों में पहले उन्होंने जीवन का लक्ष्य, समाज की विषमताओं और समस्याओं का मार्मिक अंकन किया है। उन्होंने सद्वृत्तियों वाले पात्रों के माध्यम से एक आदर्श की स्थापना की है जिसका अनुशीलन कर व्यक्ति अपना जीवन उन्नत बना सकता है। समाज की भीषण–समस्याओं को उन्होंने आदर्शवादी ढंग से सुलझाने का प्रयास किया है। जैसे 'सेवा सदन' में सुमन के चरित्र का सुधार कर प्रेमचन्द एक आश्रम की प्रतिष्ठा करते और उसके जीवन का एक उज्ज्वल अध्ययन आरम्भ करते हैं।

वास्तव में प्रेमचन्द का साहित्य बीसवीं सदी के भारत का सच्चा इतिहास और उसकी सच्ची झलक है। उनके साहित्य में सच्चे भारत के दर्शन होते हैं। वैसे प्रेमचन्द युग में भारत वर्ष में पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों का संघर्ष चल रहा था, इस संघर्ष में हम पश्चिमी सभ्यता की ओर लालायित होकर बढ़ते गये। परन्तु उनकी अनुपयुक्तता और खोखलापन देखकर संकुचित हो जाते हैं। 'गोदान' में मेहता कहते हैं—"मुझे खेद है हमारी बहिनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहां नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गयी है। पश्चिम की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है, इसलिये कि वह अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा।

प्रेमचन्द के उपन्यासों का मूल प्रेरणा-स्रोत एवं आधारभूमि समाज ही है। इनके कथानकों में मानव के सामाजिक जीवन का प्रमुखतः चित्रण मिलता है। वैयक्तिक जीवन का भी अंशतः उल्लेख हो गया है। व्यक्ति ही सामूहिक रूप से समाज का रूप धारण कर लेता है और उसकी समस्याएं ही सामाजिक समस्याएं बन जाती हैं। अपने समय की समस्याओं का चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। विधवा की समस्या उस समाज की प्रमुख समस्या थी, जिसका वर्णन उस युग के प्रायः सभी उपन्यासकारों ने किया था और उसके समाधान की चेष्टा भी की थी। प्रेमचन्द के हृदय में विधवाओं के प्रति सहानुभूति थी, उन्होंने प्रतिज्ञा, वरदान, प्रेमाश्रम, गबन, निर्मला उपन्यासों में विधवाओं के जीवन पर सूक्ष्मता से प्रकाश डाला है। 'वरदान' की ब्रजरानी 'प्रेमाश्रम' की गायत्री, प्रतिज्ञा की पूर्णा, 'गबन' की रतन को वैधव्य जीवन का दुःख भोगना पड़ा। अतः विधवा समस्या का स्थायी समाधान विधवा-विवाह ही है। स्वयं प्रेमचन्द ने विधवा शिवरानी देवी से विवाह करके विधवा समस्या का स्थायी समाधान प्रस्तुत किया है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में अमृतराय विधवाओं के लिये वनिता आश्रम की स्थापना करता है। यह समाधान आदर्शवादी है और परिस्थितियों के अनुरूप है क्योंकि उस युग में

विधवा का विवाह समाज में क्रान्ति उपस्थित करने वाला था और प्रेमचन्द क्रान्तिकारी न होकर आदर्शवादी हैं। आश्रम की स्थापना द्वारा उन्होंने आदर्श की रक्षा की है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में युग के शोषित, दलित एवं पीड़ित व्यक्तियों के साथ भावात्मक सम्बन्ध स्थापित कर उनके जीवन की समस्याओं को रखा है और पीड़ा के परिहार के लिये यथासम्भव सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं। नारी किसान, मजदूर तथा समाज के अन्य अभावग्रस्त व्यक्तियों को उन्होंने अपने उपन्यासों का आधार स्तम्भ बनाया है। रंगभूमि उपन्यास में सूरदास नामक अन्धा पात्र भारतीय ग्रामीण जीवन का प्रतीक है तथा गांधीवादिता में पगा हुआ है। वह अन्धा निर्बल होने पर भी निष्ठावान् है। वह परतन्त्र किन्तु स्वाधीनता कामी भारतीय जीवन का प्रतिनिधि है। भारतीय निर्बलता और साधनहीनता के साथ ही गांधी जी द्वारा प्रतिष्ठित आशावादिता और अजेयता भी 'सूरदास' के जीवन में सन्निहित है। इस तरह उसके जीवन में विरोधी भावों और गुणों का मिश्रण है। सूरदास प्रेमचन्द की एक श्रेष्ठ चरित्र सृष्टि है।

रंगभूमि गांधीवादी उपन्यास इसलिये कहा जाता है कि यह गांधी जी की राजनैतिक चेतना से अनुप्राणित है। रंगभूमि प्रेमचन्द की उपन्यास कला का विकसित सोपान है। गांधीवाद का प्रभाव साहित्य व जीवन पर जैसा भी कुछ पड़ा वह रंगभूमि में दिखाई पडता है। चरित्रों की विविधता, बहुलता और भारतीय जीवन की व्यापकता का चित्रण रंगभूमि की अपनी विशेषता है। प्रेमचन्द ने पूंजीवादी समाज व्यवस्था का भी विरोध किया है, पूंजीवादी प्रथा का खण्डन करते हुए समाजवाद की स्थापना का समर्थन किया है। प्रेमचन्द का मूल-उद्देश्य समाज का कल्याण और मानवता की रक्षा है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने अपने कथानकों का निर्माण किया है। समष्टि के मंगल का उत्सर्ग करके व्यक्ति की अनुभूतियों का तरंगाभिधान उनके लिये असत्य है। वे मानव की उन वृत्तियों को जागृत करना चाहते हैं जो सामाजिक भावना को आघात पहुँचाने वाली नहीं हैं। उन्होंने प्रायः अपने पात्रों में उन गुणों को प्रस्फुटित किया है जिनकी समाज को समष्टि रूप में मानव-हित के निमित्त आवश्यकता थी। प्रेमचन्द ने सदैव मानव-कल्याण तथा मानव-मंगल के पक्ष का मंडन किया है। जो वस्तुतः उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिफल है, उन्होंने अपने उपन्यासों में आदर्श व्यक्तियों के जीवन में मानव सुलभ दुर्बलताओं का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द ने उनकी सद्वृत्तियों को प्रस्फुटित कर मानव के प्रति अपनी अडिग आस्था का प्रमाण दिया है। प्रेमचन्द का विश्लेषण मानवतावादी और नैतिक है।

इनमें नैतिक मूल्यों, भारतीय संस्कृति और स्थायी मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। गोदान की मालती के विलासमय जीवन का परिष्कार सामाजिक क्षेत्र में कार्य करके त्याग वृत्ति के द्वारा ही होता है। अपने स्वार्थों के संकुचित घेरे से बाहर निकलकर जब हम लोकोपकारी कार्यों में जुड़ जाते

हैं, तब हममें आत्मनिषेध, निराभिमानवता, आत्मोत्सर्ग, की भावना उत्पन्न होने लगती है। जिससे मन पवित्र होने और चित्तवृत्तियां सुसंस्कृत होने लगती हैं।

प्रेमचन्द के कृतित्व का समय सन् १९०१ से १९३६ तक है। प्रेमचन्द भारतीय जनता के जागरण काल के लेखक थे। उन्होंने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन, स्वतन्त्रता संग्राम तथा सामाजिक कुरीतियों और विभीषिकाओं से प्रभावित होकर लिखा था।

अतः अन्त में हम यह स्वीकार करेंगे कि गहरी एवं व्यापक अन्तर्दृष्टि जीवन्त एवं सहज कलाकारिता तथा अमोघ भाषा शक्ति आदि से सम्पन्न प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य केवल हिन्दी की ही नहीं अपितु समूचे भारत की सम्पत्ति है। साथ ही भारतीय जनता की सहृदयता, सहनशीलता, बेबसी, प्रेमचन्द के साहित्य में मुखरित हुई है।

□

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम	"वेदमञ्जरी"
लेखक	डॉ० रामनाथ वेदालंकार
प्रकाशक	समर्पण शोध-संस्थान
	आर्यसमाज, करोलबाग, नई-दिल्ली-५
मूल्य	४० रुपये

इस वेदमञ्जरी में डॉ० रामनाथ जी ने चारों वेदों से ३६५ मन्त्रों का संग्रह किया है। वर्ष में ३६५ दिन होते हैं। एक-एक मन्त्र का एक-एक दिन में चिन्तन मनन करते हुए स्वाध्याय किया जाय तो एक वर्ष पर्यन्त यह क्रम चलता रह सकता है। वैसे, यह आवश्यक नहीं है कि ग्रन्थ में निर्दिष्ट क्रम से एक दिन में एक ही मंत्र पर विचार किया जाय। यह बात पाठक की रुचि पर अधिक निर्भर करती है कि वेदों की ३६५ मञ्जरियों में से किस मञ्जरी की सुगन्ध उसे अधिक आकृष्ट करती है। अपनी इच्छानुसार कहीं से भी वह किसी भी मंत्र को लेकर उसके सम्यक् परिशीलन से आनन्द प्राप्त कर सकता है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही डॉ० रामनाथ जी ने मंत्रों की व्याख्या के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि को स्पष्ट कर दिया है। निघण्टु की व्याख्या करते हुए आचार्य यास्क ने अपने निरुक्त में पदों का निर्वचन करते समय जिस पद्धति का आश्रय लिया है, डॉ० रामनाथ जी ने भी इसको आधार बनाया है 'धातवः अनेकार्थाः' इसको वे गांठ बांधकर चले हैं। "वैदिक भाषा का एक-एक शब्द अपने अन्दर अर्थ वैपुल्य का अगाध भण्डार भरे हुए है। अर्थ-वैपुल्य में संसार भर की अन्य कोई भाषा इस भाषा की तुलना नहीं कर सकती है। वैदिक शब्दों में से एक के बाद दूसरा अर्थ निकलता चलता है और व्यक्ति अपने-अपने स्तर के अनुसार स्थूल, सूक्ष्म, साधारण, गम्भीर, गम्भीरतर या गम्भीरतम अपेक्षित अर्थ को ग्रहण कर लेता है।" उनके इस कथन की सत्यता किसी भी मंत्र की व्याख्या पढ़कर समझी जा सकती है। उनकी यह व्याख्या उन्हीं के शब्दों में 'भावभीनी' है अतः सर्वत्र ही भाषा का प्रवाह अबाध गति से बहता चलता है। उस प्रवाह के लिये मूल मंत्र के प्रति शब्द का अन्वर्थ अनुसरण सर्वथा अपेक्षित नहीं समझा गया है। भाषा अति प्राञ्जल है और उस पर सर्वत्र ही भावना की मधुरिमा की 'कोट' चढ़ी हुई है। पाठक मूल को भूलकर व्याख्या के मधुर प्रवाह में बहता चला जाता है। व्याख्या में अभिधा की अपेक्षा व्यञ्जना का प्रयोग अधिक हुआ है।

यूं तो इस वेद मञ्जरी से पूर्व भी बहुत से मंत्र-संग्रह अर्थ सहित, अनेक स्थानों से निकलते रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी के पूर्व आचार्य पं० अभयदेव जी की भी वैदिक विनय को पर्याप्त ख्याति मिली थी। परन्तु यह "मञ्जरी" सबसे विशिष्ट है। इसमें यथासम्भव, सर्वथा नवीन ग्रन्थों का ही चयन किया गया है जो प्रायः अन्य प्रचलित संग्रहों में सम्मिलित नहीं किये गये हैं और यदि कुछ मन्त्र आ भी गये तो उनकी व्याख्या में यहां विशेषता है। इसमें २७५ मंत्र ऋग्वेद के, ४६ मंत्र यजुर्वेद के, २० मंत्र सामवेद के तथा ८४ मंत्र अथर्ववेद के हैं। प्रत्येक मंत्र के साथ उसके ऋषि, देवता और छन्द का भी उल्लेख कर दिया गया है। यदि मंत्र का पदपाठ और अन्वय भी साथ में दे दिया जाता तो मूल मंत्र का अर्थ समझने में अधिक सरलता हो सकती थी।

इस सर्वाङ्ग सुन्दर संग्रह के लिये वस्तुतः डॉ० रामनाथ जी साधुवाद के पात्र हैं।

—धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री

३/६ भगवाननगर, देहरादून

गुरुकुल–समाचार

प्रस्तुतकर्ता–डॉ० राकेश शास्त्री

३ मई, १९८४ को इतिहास विभाग में आई० गुस्तीपुत्तू फाल गुनेदी की पी-एच. डो. की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने "दि एबोलेशन ऑफ इण्डियन कल्चर इन बाली" विषय पर डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा प्रो० एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग के निर्देशन मे शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया था ।

७ मई ८४ को इतिहास विभाग में राकेश कुमार शर्मा की मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा अध्यक्ष, इतिहास विभाग के निर्देशन में "प्राचीन भारत में सम्प्रभुता का विकास (वैदिक काल से गुप्तकाल तक)" विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया था ।

१५ मई ८४ को प्रो० ओ० पी० मिश्र (परीक्षाध्यक्ष) तथा डॉ० विनोद चन्द्र सिन्हा, डॉ० जयदेव वेदालङ्कार, डॉ० काश्मीर सिंह भिण्डर (सहायक–परीक्षाध्यक्ष) के कुशल निर्देशन में परीक्षाएं शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुईं ।

१७ मई ८४ से १६ जुलाई ८४ तक ग्रीष्मावकाश की घोषणा की गई ।

३० मई, ८४ को श्री शेरबहादुर चौकीदार का देहावसान के कारण सम्पूर्ण गुरुकुल परिवार शोक निमग्न हो गया तथा एक शोक-संदेश में उनके शोक सन्तप्त परिवार के लिये संवेदना व्यक्त की गई और उसकी आत्मा की शान्ति के लिये प्रार्थना की गई।

३१ मई, ८४ अपराह्न को कार्यवाहक कुलसचिव डॉ० जबरसिंह सेंगर के स्थान पर प्रो० वीरेन्द्र अरोड़ा, गणित विभाग की कुलसचिव पद पर विधिवत् नियुक्ति की गई। उन्होंने ३१ मई अपराह्न में अपना कार्यभार ग्रहण कर लिया तथा डॉ० जबरसिंह सेंगर ने अपने पूर्व पद प्रवक्ता, इतिहास बिभाग का ३१ मई से ही कार्यभार संभाल लिया ।

□

विषय-सूची

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचारों के लिए स्वयं लेखक ही पूर्णतः उत्तरदायी हैं।

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालयस्य मासिकी पत्रिका]

ज्येष्ठ—आश्विन, २०४१ | अंक : ६-१०
जून —अक्तूबर, १९८४ | वर्ष : ३६ | पूर्णांक : ३५७-६१

श्रुति-सुधा

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

(शुक्ल—यजुर्वेद ४०।१)

अर्थ : इस जगती अर्थात् विश्व में जो कुछ भी विद्यमान है वह सभी कुछ अन्तर्यामी रूप में सबका ईशन करने वाले परमेश्वर का वास्य है। वही समस्त स्थावरजङ्गमात्मक जगत् में आत्मरूप में विद्यमान होकर उसे आच्छादित करता है। जगती उससे परिपूर्ण है; इसका कोई भी अंश उससे रहित नहीं है। अतः जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ उस ईश्वर ही के हैं; हमारा उन पर कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सभी योग्य पदार्थों को परमेश्वर ही का समझते हुए ममत्व तथा आसक्ति का त्याग कर केवल कर्त्तव्य पालन के निमित्त उनका यथाविधि उपभोग करे; विषयों में अपने मन को न फँसने दे। उसे किसी के भी धन की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि धन किसी का नहीं होता।

वाल्मीकिकालिदासयोः प्रावृड्वर्णनम्

—वेदप्रकाश शास्त्री

घर्मांशुतापपरितप्ते जगन्मण्डले समग्रामुर्वीं शीतलयितुं समायाति जलदागमोऽयं सर्वचित्तानुरञ्जकः। सर्वैरेव संस्कृतकवीश्वरैः कवित्वप्रतिभासाम्यमावहद्भिर्जलदागमोऽयं सुतरां वर्णितः। इदं प्रावृड्वर्णनं वाल्मीकिकालिदासाभ्यां नैपुण्येन कृतमतस्तयोरेव वर्णनं यथायथमालोचनपदवीमुपनीयते। सर्वप्रथमं वर्षर्तो कलात्मकं वर्णनं वाल्मीकिरामायण एव दृश्यते। रामायणानन्तरं पश्चाद्वर्तिनिकाव्यकल्पे प्रावृड्वर्णनं नितरां द्रष्टुं शक्यते। रामायणस्य किष्किन्धाकाण्डे रामः समागतं वर्षाकालं वीक्ष्य तदागमनविषये स्वानुजं लक्ष्मणं प्रोवाच--

अयं स कालः सम्प्राप्तः समयोऽद्य जलागमः।
संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः॥

(वा०रा०कि० २८।२)

हे सुमित्रानन्दन! जलदायकोऽयं प्रसिद्धः प्रावृट्कालः सम्प्राप्तः कालेऽस्मिन् गिरिसदृशैः पयोधरपटलैः सम्पूर्णं व्योममण्डलं प्रावृतम्। यथा वाल्मीकिना वर्षाकालागमनसूचनोपमालंकारसौष्ठवेन प्रदत्ता तथैव कालिदासोऽपि प्रावृट्कालं सूचयति परं तद्वर्णनं कामपि वैदग्धीमावहति। यथा क्वचिद् प्रमोदावसरे कश्चिद्राजा सपताकं मदवर्षिणं गजमारुह्य वाद्यवादकैः सह सर्वानानन्दयन् समायाति तथैव जलबिन्दुपरितं मेघकुञ्जरमारुह्य विद्युत्केतुमुत्तोलयन् सोल्लासं घनागमोऽयं समायातः यथा—

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जर—
स्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्दलः।
समागतो राजवदुद्धतद्युति—
र्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये॥

(ऋतु० २।१)

महाकविना वाल्मीकिना क्वचिदेकस्मिन् स्थले प्रतीयमानोत्प्रेक्षालंकारेण विच्छित्ति-पूर्वकं वर्षाकालस्य वर्णनं कृतम् । जलवर्षणमालोक्य कविः कथयति यत् भास्करस्य किरणैः समुद्राणां जलं पीत्वा नवमासपर्यन्तं धृतं गर्भमेव द्यौरियमिदानीं जलरुपेण मुञ्चति । यथा—

नवमास धृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥

(वा०रा०कि० २८।३)

अत्र कवीश्वरेण गर्भप्रक्रियां वर्णयता वृष्टिविज्ञानविषये किमपि संदिष्टमेव । वैज्ञानिकमतानुसारं व्योम्नि पूर्वं जलानां गर्भमयी प्रक्रिया सम्पद्यते तदनन्तरमेव पृथिव्यां जलवर्षणं भवति । महाकविना कालिदासेन अमुमेव श्लोकमधिगत्य स्वकीये रघुवंशमहाकाव्ये दिलीपगुणवर्णने स्वप्रतिभोन्मेषः कृतः । यथा—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥

(रघु० १।१८)

वाल्मीकिना क्वचिदाकाशस्य मानवीकरणरुपेण वर्णनं कृतम् । यथा लोके व्रणितः पुरुषः श्वेतवस्त्रखण्डैर्व्रणभागं बध्नाति तदा तस्य व्रणभागस्तु रक्तिमः शेष-भागश्च शुभ्र एव भाति तथैव कविरत्र प्रावृड्वर्णने व्योमविषये कामपि नवीना-मुत्प्रेक्षां परिकल्प्य रसं परिपुष्णाति । यथा—

संध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वापि च पाण्डुभिः ।
स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ॥

(वा०रा०कि० २८।५)

अपरस्मिन् श्लोके वाल्मीकिना पुनरपि व्योम्नः मानवीकरणं कृतम् । लोके यथा कश्चित् कामातुरः पुमान् मन्दं मन्दं निःश्वसिति चन्दनचर्चितकायो भवति, पाण्डुवर्णाभश्च जायते तथैव मन्दं मन्दं पवनं निःश्वासरुपेण सन्ध्यां चन्दनरुपेण पाण्डुरं जलदञ्च पीतकपोलरुपेण धारयन् असावाकाशः कामातुर जन इवाभाति । यथा—

मन्दमारुतिनिःश्वासं ।
संध्याचन्दनरञ्जितम् ।
आपाण्डुजलदं भाति ।
कामातुरमिवाम्बरम् ॥

(वा०रा०कि० २८।६)

वर्षाकाले सूर्यातपतप्ता पृथिवी बाष्पं मुञ्चति, वाल्मीकिना पृथिव्याः समुत्थितं बाष्पं वीक्ष्याभिनवा कल्पना कृता। इय पृथिवी घर्मतप्ता नवेन जलेन परिप्लुता शोकसंतप्ता सीतेवाश्रुजलं विमुञ्चति। अत्राचेतन भूतायाः पृथिव्याश्चेतनवद्-वर्णनं कृत्वा कविना सहृदयानां हृदयानि सरसानि कृतानि। यथा—

एषा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥

(वा०रा०कि० २८।७)

महाकवेः कालिदासस्य रघुवंशेऽयमेव श्लोकः प्रकारान्तरेण समुपलभ्यते। तत्र रामः सीतां कथयति—

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षणोद्यत्रविभिन्नकोशैः ।
बिडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ॥

(रघु० १३।२९)

वर्षाकाले व्योम्नि मेघाः समन्तात् प्रादुर्भवन्ति कालिदासेन तत्र मेघानां त्रिता निगदिता। आकाशमण्डले क्वचिद् नीलोत्पलकान्तिसंनिभा मेघा विभान्ति, क्वचित् भिन्नाञ्जनसमूहसदृशाः शोभन्ते, क्वचिच्च गर्भिण्याः स्तनकान्तिसमाः सन्ति। यद्यपि वर्णिताः सर्वेऽपि मेघाः श्यामवर्णा एव तथापि कालिदास ईषद्भेदकल्पनया त्रिधा बिम्बनिर्मिति विधाय कामप्यभिनवां हृदयहारिणीं प्रावृट्शोभां वणयामास। यथा—

नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः क्वचित्प्रभिन्नाञ्जनराशिसंनिभैः ।
क्वचित् सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योमघनैः समन्ततः ॥

(ऋतु० २।८)

कालिदासेन क्वचित् बलाहकानां वीररुपेण वर्णनं कृतम्। यथा लोके कश्चिद् वीरो युद्धभुवमवतीर्य सिंहगर्जनां विधाय समौर्वीकं कोदण्डमाकर्णान्तिमास्फाल्य प्रक्षिप्त-सायकाग्रभागैः शत्रून् पीडयति तथैवेते मेघा अपि प्रवासिनां चेतांसि पीडयन्ति। यथा—

बलाहकाश्चाशनिशब्दमर्दलाः सुरेन्द्रचापं दधतस्तडिद्गुणम् ।
सुतीक्ष्णधारापतनाग्रसायकैस्तुदन्ति चेतः प्रसभं प्रवासिनाम् ॥

(ऋतु० २।४)

अत्र कविना साङ्गरूपकस्य प्रशंसनीयः प्रयोगः कृतः। मेघानां मानवीकरणमत्र रूपकाश्रितमेव। इह "प्रसभं" शब्दस्य प्रयोगं कृत्वा कविना मेघानां प्रहारविषये निर्दयत्वमपि सहृदयानां प्रतीतियोग्यं कृतम्।

जलदागमे नद्यस्त्वरितगत्या सागरमभिगच्छन्ति। सागरमधिगच्छन्तीनां नदीनां वर्णनं पुंश्चलीनां नायिकानां चरित्रेण तुलितमिवाभाति। यथा—

निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान् प्रवृद्धवेगैः सलिलैरनिर्मलैः।
स्त्रियः सुदुष्टा इव जातविभ्रमाः प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम्॥

(ऋतु० २।७)

वर्षाकाले नवोदकं कीटरजस्तृणादीनि समादाय वक्रगत्या प्रवहति। तत्र जलस्य तिर्यक् प्रवाहं विलोक्य कविना नवोदकसर्पयोः साम्यमतीवचारुतयोपमालंकारेण वर्णितम्। तत्र कवेरुपमाप्रयोगोऽनायासेनैव दृश्यते। यथा—

विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितं भुजङ्गवद् वक्रगतिप्रसर्पितम्।
ससाध्वसैर्भेककुलैर्निरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम्॥

(ऋतु० २।१३)

प्रावृट्कालोऽयं संयोगिनं सुखं प्रयच्छति परं वियोगिनं तु भृशं पीडयति। याः प्रोषितपतिकाः सन्ति तासां कृते मेघदर्शनं नितरामसह्यम्। कालिदासेन प्रवासिप्रमदानां नैराश्यान्वितं जीवनमेकेन पद्येन सकरुणं वर्णितम्। यथा—

विलोचनेन्दीवरवारिबिन्दुभिर्निषिक्तबिम्बाधरचारुपल्लवाः।
निरस्तमाल्याभरणानुलेपनाः स्थिता निराशाः प्रमदाः प्रवासिनाम्॥

(ऋतु० २।१२)

धारागमकाले नलिनी विपत्रपुष्पा भवति। अत एव मनाक् म्लानिमानमुपगतां नलिनीं विहाय भृङ्गा इतस्ततः परिभ्रमन्तः कानने नृत्यकर्मप्रवृत्तानां मयूराणां कलापचक्रमेव नवोत्पलं मत्वा विमूढास्तत्र पतन्ति। कविना भ्रमराणां भ्रान्तावस्थायाः कलात्मकं वर्णनमत्र भ्रान्तिमानालंकारेण कृतम्। यथा—

विपत्रपुष्पां नलिनीं समुत्सुका विहाय भृङ्गाः श्रुतिहारिनिःस्वनाः।
पतन्ति मूढाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया॥

(ऋतु० २।१४)

प्रायः सर्वैरेव कवीश्वरैरयं प्रावृट्कालः सर्वत्रोद्दीपनविभावतया वर्णितः। अस्मिन् काले जनानां प्रसुप्ताः कामविकाराः पुनरुज्जीविता भवन्ति, पुनश्च नार्यः कामिनां रतिभावं मुहुर्मुहुः क्रियमाणाभिश्चेष्टाभिरुद्दीपयन्ति। यथा—

शिरोरुहैः श्रोणितटावलम्बिभिः
कृतावतंसैः कुसुमैः सुगन्धिभिः।

स्तनैः सहारैर्वदनैः ससीधुभिः
स्त्रियो रतिं संजनयन्ति कामिनाम् ।।
(ऋतु० २।१८)

लोके यदोत्सवावसरः समायाति तदा मानवसमूहः स्नानादिकं कृत्वा नवनवं परिधानं विरच्य, मन्दं मन्दं हसन्, साङ्गोच्छ्वासं उल्लसन् नृत्यन् इवाभाति तथैव वर्षाकाले वनान्तोऽपि उत्फुल्ल इव मुदित इव विभाति । यथा—

मुदित इव कदम्बजैर्जातपुष्पैः समन्तात् ।
पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव ।
हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां ।
नवसलिलसेकश्छिन्नतापो वनान्तः ।।
(ऋतु० २।२४)

यद्यपि वाल्मीकिना कालिदासेन च चारुतया प्रावृड्वर्णनं कृतम् । उभावपि कवीश्वरावन्योऽन्यमन्यूनाधिकौ स्तस्तथापि वाल्मीकिकृतं वर्णनं कामपि प्रतिभोत्तरतामेवावहति । एकस्मिन् पद्ये पर्वतवर्णनं प्रकुर्वाणेन वाल्मीकिना या कल्पना कृता सा नूनमेव सर्वथाभूतपूर्वा हृद्या अनवद्याच । यथा--

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ।।
(वा०रा०कि० २८।१०)

यथा कश्चिद् विप्रवटुर्मुनिवटुर्वा मृगाजिनमवधार्य ससूत्रः श्रुतिं पठति तथैव पर्वता अपि मेघान् कृष्णाजिनत्वेन जलधारा यज्ञोपवीतेन गुहोद्भूतान् मरुच्छब्दान् मन्त्रोच्चाररुपेण परिकल्प्य वेदपाठिन इव जाताः । अत्र कविना प्रावृट्कालिको वेदप्रचारः प्रसारश्च सूचितः ।

एकस्मिन् स्थले वाल्मीकिना व्योम्नि कालमेघपटलमध्ये स्फुरन्ती विद्युद् विलोकिता, तां च विलोक्य अभिनवा कल्पना कृता । तत्कल्पनानुसारं नीलमेघाश्रितेयं विद्युद् रावणस्याङ्के विचेष्टमाना सीतेव भाति । यथा—

नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे ।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी ।।
(वा०रा०कि० २८।१८)

वर्षाकाले जलवर्षणात् सर्वत्र मार्गगमनमसुकरं भवति, विशेषतः पर्वतस्थलेषु । यथा कश्चिद् भारवाहकः परिक्लान्तः सन् मध्ये मध्ये विश्रम्य यात्रां साधयति

तथैव मेघा अपि जलभारं वहन्तो मध्ये मध्ये पर्वतशृङ्गेषु विरम्य प्रयान्ति। अत्रापि मेघानां कविना मानवीकरणं विधाय चेतनवद् वर्णनं कृतम्। यथा--

समुद्वहन्तः सलिलातिभारं ।
बलाकिनो वारिधरा नदन्तः ।
महत्सु शृङ्गेषु महीधराणां ।
विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ।।

(वा०रा०कि० २८।२२)

वाल्मीकिना यथासंख्यालंकारयोजनया केवलमेकस्मिन्नेव पद्ये समग्रं प्रावृड्वर्णनं-कृतम्। यथा—

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः ।।

(वा०रा०कि० २८।२७)

अमुमेव श्लोकं यथाबन्धमादाय महाकविना कालिदासेन प्रावृड्वर्णनं कृतम्। केवलं तत्र शब्दद्वये कविना परिवृत्तिः कृता। यथा—

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति रुदन्ति नृत्यन्ति समाश्रयन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गा ।।

(ऋतु० २।१९)

महाकविना वाल्मीकिना वनप्रदेशानामनेकरुपेषु वर्णनं कुर्वता वनशोभा प्रकटिता, अखिलोऽपि वनान्तः प्रावृट्समये सोत्प्रासमुत्सवमयः संजातः। यथा—

क्वचित् प्रगीता इव षट्पदौघैः
क्वचित् प्रनृत्ता इव नीलकण्ठैः ।
क्वचित् प्रमत्ता इव वारणेन्द्रै
र्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ।।

(वा०रा०कि० २८।३३)

एवं प्राकृतं प्रावृड्वर्णनं विलोक्य निगदितुं शक्यते यत् वाल्मीकिना यद् वर्णनं कृतं तदेव किञ्चित् परिशोध्य परिवर्त्त्य च कालिदासेनापि वर्णितम्। परं सत्यपि साम्ये स्वस्ववर्णने द्वावपि कवीश्वरावप्रतिहतगतिकौ। अन्यस्य कवेश्च्छायामनुगृह्णन्नपि प्रतिभाप्रपन्नः कवीश्वरो नैव पुनरुक्तदोषभाग् भवति। आनन्दवर्धनेनापि साधु समीरितम्—"अनुमतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्, सुकविरूपनिबध्नन् निन्द्यतां नोपयाति"। अत उभयोरपि कवीश्वरयोः प्रावृड्वर्णनं सुतरां रम्यम्, सद्यः परनिर्वृत्तिकरम्, कान्तासम्मितोपदेशकरञ्च। ००

गीर्वाणवाणी सदा

—विश्वबन्धु शास्त्री

(१)

वेदोक्ता परिबोधराशिरनघा गर्भीकृता पावना,
विद्यायास्सकलाः कला-कुशलताश्चारुतया चित्रिता।
देवानां मधुराऽधरा विलसिता भाषासु दिव्या प्रिया,
गीर्गङ्गाऽघविनाशिनी प्रवहतां गीर्वाणवाणी सदा ।।

(२)

धात्रादौ विहिता हिताय जगतो ज्ञानाम्बुधिश्शेवधिः,
माता वेदमयी विशालहृदया भव्या भृशं राजते ।
यस्यां संस्कृति–सभ्यता–स्ववपुषा संशोभते सर्वदा,
सेयं नस्सुरभारती विजयतां गीर्वाणवाणी सदा ।।

(३)

मर्यादा पुरुषोत्तमस्य चरितं रामायणं निर्मलम्,
धर्माधर्मविवेकबोधविहितं भव्यं महाभारतम् ।।
श्रीकृष्णस्य विगूढबोधविभवं मोहान्धकारापहम्,
कैवल्यस्य विबोधिकाविजयतां गीर्वाणवाणी सदा ।।

(४)

भाषाणां जननी प्रियाऽमृतधरा, शब्दौघपूर्णा शिवा,
फ्रेञ्चाद्याः विविधाः पराः विकसिताः स्तन्यस्य पानेन याः ।
दण्डी–भास–सुबन्धु–दास–कविभिः काव्याम्बुभी रक्षिता,
साऽस्मान् पातु सरस्वती भगवती गीर्वाणवाणी सदा ।।

यजुर्वेद और आधुनिक जीवन

—मानसिंह

'यजुर्वेद' में यज्ञ-यागों के लिए उपादेय मन्त्रों अर्थात् यजुषों का संग्रह है। वेद के दो सम्प्रदाय हैं—ब्रह्म-सम्प्रदाय तथा आदित्य-सम्प्रदाय। 'शत-पथ-ब्राह्मण, के अनुसार आदित्य-यजुष्, शुक्ल-यजुष् के नाम से प्रसिद्ध हैं और याज्ञ-वल्क्य द्वारा आख्यात हैं— "आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते।" (१४।६।५।३३)। अतः आदित्य-सम्प्रदाय का प्रतिनिधि 'शुक्ल यजुर्वेद' है। ब्रह्म-सम्प्रदाय का प्रतिनिधि 'कृष्ण यजुर्वेद' है। 'यजुर्वेद' के शुक्लत्व तथा कृष्णत्व का भेदक तत्त्व उसका स्वरूप है। 'शुक्ल-यजुर्वेद' में दर्शपौर्णमासादि अनुष्ठानों के लिए आवश्यक मन्त्रों का ब्राह्मण-भाग से रहित संकलन है। इसके विपरीत, 'कृष्ण-यजुर्वेद' में मन्त्रों के साथ ही उनके नियोजक ब्राह्मण-भाग का भी सम्मिश्रण है। मन्त्रों का विशुद्ध एवं अमिश्रित रूप ही शुक्ल-यजुः के शुक्लत्व का कारण है और मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग का एकत्र मिश्रण ही कृष्ण-यजुः के कृष्णत्व का हेतु है। 'शुक्ल-यजुर्वेद' की प्रधान शाखाएँ काण्व तथा माध्यन्दिन हैं और मन्त्र-संहिता 'वाजसनेयी संहिता' के नाम से विख्यात है, जो प्रस्तुत वार्ता का आधार है। 'कृष्ण-यजुर्वेद' की आजकल केवल चार ही शाखाएँ उपलब्ध हैं— तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ तथा कपिष्ठल-कठ। अनेकत्र निर्दिष्ट एक आख्यान के अनुसार गुरु वैशम्पायन के शाप से भीत योगी याज्ञवल्क्य ने स्वाधीत यजुषों का वमन कर दिया और गुरु के आदेश से अन्य शिष्यों ने तित्तिरि का रूप धारण कर उसका भक्षण किया। इन्हीं यजुषों का संग्रह 'कृष्ण-यजुर्वेद' की 'तैत्तिरीय संहिता' में है। याज्ञवल्क्य ने सूर्य को प्रसन्न कर उनके अनुग्रह से शुक्ल-यजुषों की प्राप्ति की जिनका संकलन 'शुक्ल-यजुर्वेद' में है। 'शुक्ल-यजुर्वेद' की काण्व तथा माध्यन्दिन संहिताओं में ४० अध्यायों में दर्शपौर्ण-मास, अन्वाधान, अग्निहोत्र, अग्न्युपस्थापन, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, प्रवर्ग्य तथा ब्रह्मविद्या प्रति-पादित हैं। प्रायः ये ही विषय ब्राह्मण-भाग सहित 'कृष्ण-यजुर्वेद' की संहिताओं में प्रतिपादित किए गए हैं।

बाह्य रूप से देखने पर यज्ञ किसी देवताविशेष के लिए हव्य का अग्नि में प्रक्षेप-मात्र है; किन्तु वस्तुतः वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। यज्ञ विलक्षण रहस्य से युक्त है। यज्ञ का उद्देश्य है मानव को सर्वविध शुद्धि प्रदान कर परार्थपरायण करना और अन्त में परम निःश्रेयस् की उपलब्धि कराना। 'पुरुषसूक्त' से स्पष्ट है कि लोकमंगल के लिए स्वार्थ का बलिदान ही यज्ञ है; स्वयं आदि-पुरुष ने जगत्सृष्टि-रूप यज्ञ में अपनी बलि दी। इस प्रकार यज्ञ-भावना लोकोपकार की प्रेरिका है।

'यजुर्वेद' के मन्त्रों में उपनिबद्ध विचार समय की सीमा से परे हैं और सार्वकालिक एवं सार्वजनीन हैं। उनका आधुनिक युग एवं जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। उनमें मानव के आध्यात्मिक जीवन से सम्बद्ध रहस्यों ही का नहीं अपितु लौकिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन-सम्बन्धी तथ्यों का भी चारु निरूपण हुआ है। 'यजुर्वेद' की कल्याणी वाणी सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए है, किसी वर्गविशेष की सम्पत्ति नहीं। एक ऋषि की उक्ति है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥

(२६/२)

अर्थात् "मैं इन कल्याणी वाणी को (सभी) मनुष्यों के लिए कहता हूँ— ब्राह्मण तथा राजन्य के लिए, शूद्र तथा वैश्य के लिए; अपने लोगों तथा अन्य देशीय जनों के लिए।" इससे उन लोगों को शिक्षा लेनी चाहिए जो वेदों के अध्ययन तथा अध्यापन का एकाधिकार द्विजों ही को देना चाहते हैं और स्त्री तथा शूद्रों को इस कल्याणी वाणी से वंचित रखना चाहते हैं। वस्तुतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि सभी समाजरूप पुरुष के अंग हैं; फिर उनमें भेद-भाव कैसा ?

यजुर्वेदीय विचारधारा की सबसे महत्त्वपूर्ण देन इस विराट् जगत् में सार्वभौम ऐक्य की स्थापना है। 'यजुर्वेद' का चिन्तन सम्पूर्ण प्राणियों ही में नहीं प्रत्युत समग्र जगत् में एकता के दर्शन करता है। यह बात "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" (यह सब कुछ जो भूत तथा भाव्य है पुरुष ही है, ३१/२) ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्" (जगती में जो भी कुछ है वह सब ईश का वास्य है, ४०/१), "योऽसावादित्ये पुरुषःसोऽसावहम्" (जो वह आदित्य में पुरुष है वह मैं हूँ, ४०/१७), आदि उक्तियों से सुस्पष्ट है। 'यजुर्वेद' के ऋषि का कथन है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ।।
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।
(४०/६-७)

अर्थात् "जो सब भूतों को अपने में और सब भूतों में अपने आपको देखता है वह संशयग्रस्त नहीं होता; जिस विज्ञानवान् व्यक्ति की दृष्टि में सम्पूर्ण भूत (अपना) आत्मा ही है उस एकत्व का दर्शन करने वाले को भला क्या मोह, क्या शोक ?" यदि आज यह ऐक्य की भावना हमारे हृदय में बद्धमूल हो जाए तो समस्त पारस्परिक वैमनस्य, विभिन्न देश, धर्म, जाति एवं वर्गों के व्यक्तियों के आपसी भेदभाव सदा के लिए मिट जाएँ; हम एक-दूसरे के सुख-दुःख, हानि-लाभ को अपना ही सुख-दुःख तथा हानि-लाभ समझने लगें, पारस्परिक भेदभाव को त्याग कर सद्भाव एवं प्रेम का व्यवहार करने लगें; और ईर्ष्या, द्वेष तथा घृणा आदि अवगुण धरा से तिरोहित हो जाएँ।

यजुर्वेदकालीन साम्यवाद तथा समाजवाद सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर द्वारा व्याप्त मानता है, उसे ईश्वर की सम्पत्ति स्वीकार करता है। अतः मनुष्यविशेष का यहाँ कुछ भी नहीं है। उसे जो कुछ भी मिला है उसका त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।।
(४०/१)

अर्थात् "जगती में जो भी कुछ है वह (सब) ईश द्वारा वास्य है। अतः त्याग-पूर्वक भोग करो; किसी के भी धन की कामना न करो।" यदि आज का मानव इस भावना को हृदयंगम कर ले तो चोरी-डकैती, लूट-खसौट, मुनाफ़ाखोरी, तस्कर-व्यापार आदि धनप्राप्तिहेतु अनैतिक आचरण सर्वथा समाप्त हो जाएँ और समाज में शान्ति, सद्भाव तथा प्रेम का साम्राज्य स्थापित हो जाए।

'यजुर्वेद' में सार्वभौम मैत्री-भाव पर बल दिया गया है। देखिए यह मन्त्र—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।।

(३६/१८)

अर्थात् "सम्पूर्ण प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें; मित्र की ही दृष्टि से मैं समग्र प्राणियों को देखूँ; हम (एक-दूसरे को) मित्र की दृष्टि से देखें।" आज के मानव के लिए यह कितना महनीय सन्देश है !

यजुर्वेदकालीन समाज सुपथहेतु देवों से प्रार्थना करता था और पाप-कर्मों से दूर रहता था। एक ऋषि की उक्ति है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।

(४०/१६)

अर्थात् "हे समस्त मार्गों के ज्ञाता अग्नि ! हमें धनार्थ शोभन मार्ग से ले जाइए; कुटिलतापूर्ण पाप को हमसे अलग रखिए; हम आपकी अत्यधिक नमस्कार-पूर्ण प्रार्थना करते हैं।" आज भी हमें सुपथ पर चलने तथा कुटिलता एवं पापाचरण से दूर रहने की उतनी ही आवश्यकता है। तत्कालीन व्यक्ति भद्र का ही वरण करता था। एक ऋषि की सविता से प्रार्थना है—

विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ।।

(३०/३)

अर्थात् "हे सविता ! सम्पूर्ण दुरितों को (हमसे) दूर ले जाइए; जो भद्र है उसे हमारे प्रति प्रेरित कीजिए।" वह भद्र के श्रवण तथा दर्शन की कामना करता है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

(२५/२१)

अर्थात् "हे देवों ! हम कानों से भद्र सुनें और आँखों से भद्र देखें।" मन के भी शिव संकल्प से युक्त होने की प्रार्थना की गई है— "तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु।" (३४/१)। वह सब ओर से भद्र संकल्पों अथवा विचारों की अभिलाषा करता है—

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः ।

(२५/१४)

अर्थात् "भद्र संकल्प अथवा विचार हमारे पास सब ओर से आएँ।" आज के जीवन में इस भद्रता के संगमन की महती आवश्यकता है।

यजुर्वेदीय दर्शन अत्यधिक आशावादी है। वह मनुष्य को लौकिक जीवन

में सुखी, सम्पन्न, स्वस्थ, बलिष्ठ कर्मठ एवं दीर्घजीवी होने की प्रेरणा देता है। देखिए यह मन्त्र—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि
मनुरसि मन्युं मयि धेहि
सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

(१९/९)

अर्थात् "आप तेज हैं, मुझमें तेज का आधान कीजिए; आप वीर्य हैं, मुझमें वीर्य का आधान कीजिए; आप बल हैं, मुझमें बल का आधान कीजिए; आप ओज हैं, मुझमें ओज का आधान कीजिए; आप मन्यु अथवा कोप हैं, मुझमें मन्यु का आधान कीजिए; आप सह अथवा अभिभवशील शक्ति हैं, मुझमें सह का आधान कीजिए।" एक अन्य मन्त्र में प्रार्थना की गई है–

सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः।

(८/५३)

अर्थात् "हम प्रजाओं से शोभन प्रजावाले, वीरों से शोभन वीरों वाले और पुष्टियों से शोभन पुष्टियुक्त हो जाएँ।" अन्य मन्त्र में सौ वर्ष अथवा उससे भी अधिक दैन्यभावरहित होकर जीने की कामना की गई है—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतंश्रृणुयाम शरदः शतं
प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

(३६/२४)

अर्थात् "हम सौ शरत् देखें, सौ शरत् जीवित रहें, सौ शरत् सुनें, सौ शरत् बोलें, सौ शरत् अदीन होकर रहें; (बल्कि) सौ शरत् से भी अधिक।" परन्तु कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की अभिलाषा की गई है--

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

(४०/२)

ये विचार निश्चय ही आधुनिक मानव- समाज के लिए आशावान् एवं कर्मठ जीवन-हेतु एक अत्यन्त स्वस्थ आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

'यजुर्वेद' में मानवकल्याण, तृप्ति तथा शान्ति की कामना की गई है। एक ऋषि के शब्द हैं—

मनो में तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत
श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत
गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥

(६/३१)

अर्थात् "मेरे मन को तृप्त कीजिए, मेरी वाणी को तृप्त कीजिए, मेरे प्राणों को तृप्त कीजिए, मेरे नेत्रों को तृप्त कीजिए, मेरे कानों को तृप्त कीजिए, मेरी आत्मा को तृप्त कीजिए, मेरी प्रजा को तृप्त कीजिए, मेरे पशुओं को तृप्त कीजिए, मेरे गणों अथवा मनुष्यों को तृप्त कीजिए, मेरे गण अथवा मनुष्य तृषित न रहें।" एक अन्य मन्त्र में शान्तिहेतु प्रार्थना है—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

(३६/१७)

अर्थात् द्युलोक की शान्ति, अन्तरिक्ष की शान्ति, पृथिवी की शान्ति, जलों की शान्ति, ओषधियों की शान्ति, वनस्पतियों की शान्ति, विश्वेदेवों की शान्ति, ब्रह्मरूपा शान्ति, सर्वरूपा शान्ति, शान्तिरूपा शान्ति—वह शान्ति मेरे पास आ जाए।" असन्तुष्ट, अतृप्त एवं अशान्त मानव के लिए तृप्ति एवं शान्तिहेतु की गई इन प्रार्थनाओं का आज भी महत्त्व अक्षुण्ण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'यजुर्वेद' में उपनिबद्ध उपदेश तथा विचार आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में भी अत्यधिक महत्त्व रखते हैं और उसे विविध प्रेरणा प्रदान करते हैं। उनकी आज भी उतनी ही प्रासंगिकता है।

□

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी (परस्पर)कल्याण का चिन्तन करें, कोई भी दुःख का भागी न हो।

आधुनिक विज्ञान को वैदिक चुनौती

—विजयेन्द्र कुमार

वेद समस्त ज्ञान का भण्डार है, यह सर्वविदित है। अनेक ग्रन्थों और लेखों से यह सब वास्तविकता प्रमाणित हो चुकी है। निम्न ग्रन्थों के नाम इसके लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :

१. फिजिक्स तथा कैमिस्ट्री	लेखक– डॉ० धर्मदेव मेहता
२. मैथमेटिक्स इन वेदाज़्	,, ,,
३. बेसिस ऑफ़ एस्ट्रोलॉजी इन वेदाज़्	,, ,,
४. मैडिसन इन वेदाज़्	,, ,,
५. इंजिन इन वेदाज़्	लेखक–स्वामी भूमानन्द सरस्वती
६. अनाटोमो इन वेदाज़्	,, ,,
७. साइन्स एण्ड वेदाज़्	संपादन द्वारा श्री ईश्वरभाईपटेल
८. वैदिक मैथमेटिक्स	जगद्गुरु शंकराचार्य

तब भी वैदिक शोधकर्ताओं के कार्यों के महत्त्व का यह कह कर निम्न मूल्यांकन किया जाता है कि आधुनिक विज्ञान के द्वारा किसी सिद्धान्त की जानकारी प्रकाशित करने के बाद आपने इसे वेदों में ढूँढ दिया है, पहले आप इसके विषय में संसार को सूचित क्यों नहीं कर सके ? इस लेख को लिखने का उद्देश्य वेदों में वर्णित कुछ उन तथ्यों को प्रकाश में लाना है जो आधुनिक विज्ञान को ज्ञात नहीं हैं अथवा आधुनिक विज्ञान की मान्यता वैदिक मान्यता से भिन्न है।

यह सर्वविदित है कि जो सिद्धान्त प्रायोगिक आधार पर नहीं प्रतिपादित किया गया और उसके विषय में एक परिकल्पना मान ली गई, वह परिकल्पना बाद में अशुद्ध सिद्ध हुई है। उदाहरण के लिए परमाणु संरचना संबंधी सिद्धान्त एवगेड्रो, वजोनियस आदि से चलकर कितने ही विचारकों से होते हुए आधुनिक स्थिति तक पहुँचे हैं। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियमों में भारतीय

वैज्ञानिक डॉ० जयन्त विष्णु नारलीकर के द्वारा संशोधन किया गया है। आइन्सटाइन के सापेक्षता के सिद्धान्त में भी कितने दिनों के पश्चात् त्रुटि ज्ञात हुई है। इसी प्रकार निम्न वर्णित वैदिक तथ्यों का उत्तर आधुनिक विज्ञान की देन है। यहाँ केवल इन वैदिक तथ्यों को उल्लिखित किया जा रहा है जिनके विषय में आधुनिक विज्ञान अब तक चुप है अथवा विपरीत मान्यता रखता है।

सबसे पहले तेज गति को ही लें—पैदल-बैलगाड़ी-रेलगाड़ी-वायुयान की तीव्रता से होता हुआ आधुनिक विज्ञान राकेट की गति की तीव्रता तक पहुँचा है। अब निम्न मंत्र पर विचार करें–

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः॥

(ऋ० १/१८३/१)

इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया गया है कि– "हे अश्विदेवों! उस **मन से भी अधिक वेग वाले रथ के द्वारा** उत्तम कर्म वाले यजमान के घर को पक्षी के समान गति से प्राप्त होओ।"

इस प्रकार मंत्र में मन की गति से अधिक तीव्र गति का वर्णन है। आधुनिक विज्ञान का यह लक्ष्य इस गति को प्राप्त करना होना चाहिए।

अब एक दूसरे वैदिक तथ्य पर विचार करें। आधुनिक विज्ञान की मान्यता है कि सूर्य स्वयं प्रकाशित ग्रह है और चन्द्रमा इत्यादि उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। अब निम्न मन्त्र पर विचार करें—

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि॥

(ऋ० ८/९८/२)

इस मंत्र के अर्थ के अनुसार यह बताया गया है कि आदित्य अर्थात् सूर्य स्वयं प्रकाशित नहीं है वरन् किसी अन्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है।

इसके अतिरिक्त निम्न मंत्र भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः।
देवास्त इन्द्र संख्याय येमिरे॥

(ऋ० ८/९८/३)

अब अन्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों (आइन्सटाइन का सापेक्षता का सिद्धान्त, न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी नियम) की भाँति आधुनिक विज्ञान के सामने

अब यह कार्य शेष है कि इस सिद्धान्त पर कि सूर्य स्वयं की शक्ति से प्रकाशित है, पुर्नविचार करे और तथ्य से संसार को परिचित कराये।

आधुनिक विज्ञान में ऊर्जा की अविनाशिता का सिद्धान्त है। इसके अनुसार ऊर्जा न पैदा की जा सकती है, न नष्ट की जा सकती है केवल ऊर्जा एक प्रकार की ऊर्जा से दूसरी प्रकार की ऊर्जामें बदली जा सकती है। उदाहरण के लिए विद्युत् मोटर में विद्युत् ऊर्जा को यान्त्रिक में बदलते हैं और जेनरेटर में यान्त्रिक ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा में बदलते हैं, आदि। वेद में इस प्रकार की मशीन के द्वारा कार्य का वर्णन है जिसमें कोई ऊर्जा नहीं ली गई है, केवल कार्य हुआ है।

यदि आधुनिक विज्ञान के द्वारा इस प्रकार की मशीन बनाई जा सके तो सोचिये संसार का कितना भला होगा। निम्न मंत्र पर विचार करें—

आरे अघा को न्वि१त्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति।
मास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत्॥

(ऋ० १०/१०३/१०)

उपर्युक्त मंत्र में ऐसी मशीन की कल्पना की गयी है जिसे कोई उर्जा नहीं दी गई और उससे काम लिया जा रहा है।

आधुनिक विज्ञान को इस मशीन के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार अन्य भी बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ आधुनिक विज्ञान नहीं पहुंच सका है अथवा उसकी मान्यता वैदिक मान्यताओं का अनुसरण नहीं करती। नये लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयास की तथा जहाँ वेद में और आधुनिक विज्ञान में सहमति नहीं है, उस विषय पर नये सिरे से शोध-कार्य करने की आवश्यकता है।

वैदिक युग में संसदीय प्रणाली

—जबरसिंह सेंगर

वैदिक युग में राजा सर्वोपरि होता था परन्तु उसके ऊपर संसदीय (सभा-समिति) दो संस्थाओं का विशेष अंकुश था जिससे वह निरंकुश नहीं हो पाता था। वैदिक युग में शासन का स्वरूप धर्म के साथ-साथ रहता था। पुरोहित एवं सेनापति का विशेष महत्त्व था ही, परन्तु सभा-समिति का सभी पर अंकुश होता था।

'समिति' शब्द का अर्थ है– दूर-दूर से आकर एकत्रित लोग। 'अथर्ववेद' सप्तम कांड के १२ वें सूक्त में भगवान् के उपदेश से पता चलता है कि इन सभाओं में बड़े-बड़े विद्वान् (ज्ञानी) इकट्ठे होते थे और राजा को राज्य कार्य के लिए शिक्षा देते थे। राजा इन लोक-सभाओं की अवहेलना नहीं कर सकता था, क्योंकि ये सभायें प्रजापति परमात्मा से उत्पन्न समझी जाती थीं। इन सभाओं को नरिष्ठा (कल्याणकारी) के नाम से भी पुकारा जाता था। उनमें उपस्थित ज्ञानी और वर्चस्वी सभासदों की सम्मति के अनुसार ही राजा कार्य करता था। यथा—

सभा च या समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मां स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥
विद्म ते सभे नाम नरिष्ठा नाम वा असि। ....
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमाददे।
अस्याः सर्वस्याः संसदो आभिन्द्र भगिनं कृणु ॥

(अथर्ववेद ७/१२/ १-३)

उक्त मंत्र के अनुसार वेद भगवान् का यह वाक्य कि राजा वही श्रेष्ठ है जो इन लोक-सभाओं के पीछे चलने वाला हो। आगे वेद भगवान् कहते हैं-

राजानः सत्यः समितोरियानः

(ऋग्वेद ९/९२/६)

सभा–समिति, सेना और विद्वान् उसी राजा के पीछे चलते हैं जो कि प्रजा की सम्मति के पीछे चलने वाला हो। जो राजा सभा और समिति की सम्मति की परवाह नहीं करता उसे सभा–समिति से सहायता की आशा करना व्यर्थ है। यथा—

सविशोऽनुव्यचलत। तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलत्।

(अथर्व० १५/९/१-२)

अतः राजा सभा–समिति के अनुसार आचरण भी करते थे। वेद भगवान् राजा को तीन समितियों की आज्ञाओं के पालन का उपदेश देते थे– अर्थात् सभा, समिति, एवं मंत्रिमंडल।

त्रीणि राजाना विदस्थे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।

(ऋग्वेद ३।३८)

उक्त आज्ञा का पालन राजा वैदिक युग में करता था। वेद राजा को सभापति के नाम से भी संबोधित करते हैं--

नः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च।

(यजु० १६।२४)

इससे स्पष्ट होता है कि राजा सभा की बिना स्वीकृति के कोई कार्य नहीं कर सकता था और वास्तव में शासन करने वाली संस्था सभा ही है। राजा मात्र उसका सभापति है।

प्रो० के० पी० जायसवाल ने सभा–समिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि आर्य–जाति के प्राचीन रूप, साहित्य में हम पाते हैं कि उस काल में राष्ट्रीय जीवन और विधियों को लोकप्रिय सभा-समितियों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता था। समिति सम्पूर्ण प्रजा की राष्ट्रीय सभा थी, राजा का चुनाव करती थी। राजा के सभी महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार किया करती थी। समिति विकसित समाज की संस्था थी। दूसरी संस्था सभा थी, जिसे नरिष्ठा भी कहते थे। संभवतः यह चुने हुए विशिष्ट व्यक्तियों की समिति की सत्ता के अंतर्गत काम करने वाली एक स्थायी समिति थी। समिति और सभा प्रजापति की दो पुत्रियाँ कहीं गई हैं। सभा के अधिकार क्षेत्र समिति से अधिक थे। 'अथर्ववेद' के ७।१२।१ के अनुसार सभा और समिति की निम्न प्रकार से व्याख्या की गई है :—

विल्सन तथा लुडविग महोदय ने सभा को उच्चतर भवन और समिति को निचला भवन कहा है। त्सिम्मर के अनुसार, जिनका मत अधिक उपयुक्त माना जा सकता है, सभा ग्राम-संस्था कहीं गई है एवं समिति केन्द्रीय संस्था। 'अथर्ववेद' १०।८।८-१३ तक दो मंत्रों के आधार पर पहले सभा का, बाद में समिति का, उसके बाद में मंत्रणा-परिषद् का उल्लेख मिलता है। यह क्रम उस समय के संवैधानिक विकास का परिचायक है। प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक ग्राम प्रायः स्वतन्त्र रूप में अपना पृथक्-पृथक् प्रबन्ध करता था। सर्वसाधारण विषयों को तय करने के लिए ग्राम-निवासियों ने प्रबन्धकारिणी स्थानीय संस्था बना ली थी, जो सभा के नाम से विख्यात हुई। कालान्तर में जब राज्य की स्थापना हुई और राजाओं के अन्तर्गत अनेक ग्राम आ गये तो सार्वजनिक विषयों के लिये केन्द्रीय प्रशासनिक संस्था की स्थापना हुई जो समिति कहलाई।

डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार 'ऋग्वेद' के मंत्रों में कई स्थलों पर सभा का उल्लेख है-(६।२८।६, ८।४।९, १०।३४।६), किन्तु उनसे उसके स्वरूप एवं कार्यों का उल्लेख नहीं मिलता। उसका अर्थ संसद भी है और सामाजिक सम्मेलन तथा सार्वजनिक विषयों पर विचार करने के लिये सभा-स्थान से भी अभिप्राय है। सभा में श्रेष्ठ व्यक्ति सभासद् (ऋग्वेद १०।७१।१०) और सभा के योग्य व्यक्ति सभेय कहलाते थे (ऋग्वेद २।२४।१३)। उच्चकुल में उत्पन्न सुजात (ऋग्वेद १०।१।४) व्यक्ति सभा में आते थे। ऋग्वेद-कालीन सभा वृद्ध या प्रवर जनों की परिषद् या समिति थी-यह मत प्रो० के० पी० जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू पोलिटी' के अध्याय २ एवं ३ में व्यक्त किया है।

सभा—

सभा में विजय प्राप्त करने के लिये एक मंत्र पढ़ा जाता था—

विद्म ते सभे नाम नरिष्ठा नाम वा असि।
ये के चे सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥
(ऋग्वेद ७।२।२५)

अर्थात् हे सभा, मैं तेरा नाम जानता हूं, तेरा नाम नरिष्ठा (अजेय) है। इसलिए तेरे जितने सभासद् हों, वे सब समान विचार रखने वाले हों। डॉ० आर० के० मुकर्जी की पुस्तक 'हिन्दू सभ्यता' (पृष्ठ ८३) में भी उक्त मंत्र का विस्तृत समर्थक विश्लेषण मिलता है। विद्वान् वेदोपाध्याय का कथन है कि सभा न्याय का कार्य करती थी और उसका प्रधान राजा स्वयं होता था। इसको राष्ट्रीय न्यायालय की भी संज्ञा दी गई है। सभा का अध्यक्ष सभापति कहा जाता है। राजा सभा के निकट रहता था और उससे काफी अच्छे सम्बन्ध रखता था।

वैदिक साहित्य में सभा के जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे भी सभा का ग्राम-संस्था होना सिद्ध होता है। ऋग्वेद १०।३४।६ में अश्व तथा रथ पर आरूढ सभा के जाते हुए सभासदों का उल्लेख मिलता है। संभवतः ग्राम के धनी-मानी व्यक्तियों का विशेष स्थान था। वे सब रथ पर या घोड़ों पर चढ़कर जाते होंगे। एक स्थान पर सभा के सदस्यों को न्यायकर्ता माना गया है। न्याय करते समय इनके ऊपर किसी प्रकार की शंका नहीं की जाती थी। यथा—

सर्वे नंदन्ति यशसागतेन सभासाहेन संख्या संखायः।
किल्विषस्पृत् पितुषणिहर्येषामरं हितो भवति वाजिनाय॥

एक स्थान पर सभा के सदस्यों की विशेषताएं दर्शाते हुए लिखा गया है कि जहाँ अच्छे आदमी न हों, वह सभा नहीं है और जो अन्याय की बात करें वे भी अच्छे आदमी नहीं हैं और वे पुरुष जो अपने स्वार्थों का त्याग कर न्याय की बात करते हैं वे ही अच्छे पुरुष माने जाते हैं। यथा—

न सा सभा यत्र न सन्ति सन्तो न ते सन्तो ये न भणन्ति धर्मम्।
रागं च दोषं च विहाय धर्मं भणन्तश्च भवन्ति संताः॥

ऋग्वेद ८।४।६ के अनुसार सभा के सदस्य कुछ स्वार्थी तत्त्वों का संभ्रान्त सभासद बनने के लिये प्रार्थना करते थे– "यहाँ जो लोग उपस्थित हैं– मैं उनके तेज एवं ज्ञान को ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्र, मुझे इस सम्पूर्ण संसद् का नेता बनाओ। जो तुम्हारा मन किसी अन्य ओर गया हुआ है या तुम्हारा मन किसी बात को पकड़ कर बैठ गया है, मैं तुम्हारे उस मन को हटाता हूँ, तुम्हारा मन मेरे अनुकूल हो जाये"। कहने का तात्पर्य यह है कि सभा का मुख्य कार्य न्याय करना होता था, क्योंकि उसे नरिष्ठा कहा गया है।

विदंते सभे नाम नरिष्ठा, नाम वा असि

(जातक पृ० ५०६)

'ऋग्वेद' में सभा को 'किल्विष–स्पृत्' कहा गया है, जिसका अर्थ है पाप या अपराध का परिमार्जन करने वाली सभा। राजा भी सभा के प्रति उत्तरदायी था। सभा आजकल की संसदों की भाँति राष्ट्र नेता अर्थात् राजा को राज्य सम्वन्धी संचालन कार्य के लिए उत्तरदायी ठहराती थी। एक स्थान पर लिखा गया है कि राजा सभा का सम्मान करता था।

समिति—

प्रो० के० पी० जायसवाल ने समिति को निचला सदन माना है और कुछ

विद्वानों ने इसको एक केन्द्रीय राज्य संस्था माना है। 'ऋग्वेद' में राजा कहता है—

> **एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमाददे।**
> **अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ।।**
> **यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।**
> **तद्व आवर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ।।**

अर्थात् मैं तुम्हारा विचार और तुम्हारी समिति स्वीकार करता हूँ। ऋग्वेद में इस समिति के अंतर्गत राजनैतिक कार्यों के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों के सम्पादित होने का आभास पाते हैं। इसमें बुद्धिजीवी अधिकांश रूप में होते थे और इसका प्रधान 'पति' या 'ईशान' (अथर्ववेद ६।१२।२) के नाम से पुकारा जाता था। ईशान को पूरे अधिकार समिति के संचालन के लिये थे। इनके कुछ सदस्य राजा द्वारा नियुक्त, कुछ जनता द्वारा और कुछ बुद्धिजीवियों या धनी मानी पुरुषों से चुने जाते थे। ग्रामपति की इस समिति में विशेष भूमिका रहती थी। वह समिति के सदस्यों को अपने व्यवहार एवं कार्यों से आकर्षित करता था। राजा और समिति में राष्ट्र की अभिवृद्धि के कारण समानता का होना आवश्यक था। इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि राजा और समिति दोनों के मंत्र, मन, चित्त एवं हृदय समान हों (ऋग्वेद १०।७१।१०)। सभा और समिति में क्या भेद था—यह वैदिक साहित्य में स्पष्ट नहीं है, पर वैदिक मंत्रों का अनुशीलन कर विद्वान् इस मत पर पहुँचे हैं कि समिति सभा की तुलना में बड़ी सभा थी और यह माना जाता था कि वह सम्पूर्ण प्रजा का प्रतिनिधित्व करती थी। राजा समिति में उपस्थित रहता था और समिति के "पति" अध्यक्ष को ईशान कहा जाता था (ऋग्वेद १०।१९१)। समिति के सदस्यों को सम्बोधित कर कहा गया है—"तुम एक साथ मिलकर एकत्र हो, तुम साथ मिलकर एक बात कहो, तुम्हारे मन एकसदृश हों। पूर्वकाल के देवता लोग समान रूप से चिन्तन करते हुए जैसे बरतते रहे हैं। तुम्हारा मन एक समान हो, तुम्हारी सम्मति एक समान हो, तुम्हारा मन और चित्त समान हो, तुम्हारे निर्णय समान हों, जिससे तुम प्रसन्नतापूर्वक एक मत होकर रह सको"। राजा की नियुक्ति समिति द्वारा होती थी और राजा उसके प्रति उत्तरदायी होता था। राजा सभाओं को स्वीकार करते हुए उनके समक्ष निम्न प्रतिज्ञा करता था—

> **पृष्ठो मे राष्ट्रमुदरमंसो ग्रीवाश्च श्रोणीति।**
> **उरू अरत्नी आनुनीर्विशो मेऽगानि सर्वतः ।।**

(यजु० २०।८)

अर्थात् "मेरी प्रजाओं ! मैं तुम्हारे विचार और तुम्हारी सभा को स्वीकार करता हूँ। तुम्हारी सभायें जो भी निर्णय लेंगीं, उसे मैं सदा ही स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। इससे स्पष्ट है कि राजा समिति के निर्णयों का क्रियान्वयन करता था। संवैधानिक दृष्टि से सार्वभौम सत्ता समिति के हाथ में थी। राज्य की नीति निर्धारित करते समय सभी को एकमत होना पड़ता था—'समानो मंत्रः समितिः समानी, सभी सदस्यों के समान उद्देश्य और समान विचार की व्याख्या भी समिति में होती थी। राजा और समिति के सम्बन्ध आजकल की संसद् और प्रधानमन्त्री की तरह थे। राजा का यह कर्तव्य था कि वह समिति की कार्य-वाहियों में यदि उपस्थित नहीं होता था तो समिति अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पाती थी। जब तक समिति रही तब तक प्रत्येक कार्यवाही में राजा उपस्थित रहता था। जैसे—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥
समानो मन्त्रः समिति समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
समानी व आकूतिः समानाः हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

(ऋग्वेद १०।४१।२-४)

संधि और विग्रह के समय समिति की बैठकें बुलाई जाती थीं। अथर्ववेद के २।२७ में समिति की स्पष्ट व्याख्या की गई है। समिति में प्रार्थना की जाती थी कि हे ईश्वर हमारा शत्रु परास्त हो और हमारी विजय हो। राष्ट्र की प्रगति के विकास सम्बन्धी कार्य समिति किया करती थी। बुद्धिजीवी समिति में आने की इच्छा प्रदर्शित करते थे— **विशस्त्वा सर्वाः वाञ्छन्तु।** (ऋग्वेद २१।७३, अथर्ववेद ६।८७।१, **ध्रुवाय ते समितिः कल्पन्तामिह** (अथर्ववेद ६।८८।३), **त्वां विशो वृणतां राज्याय** (अथर्ववेद ३।४।२)।

कुछ विदेशी इतिहासकारों ने वैदिक युगीन समिति की आलोचना भी की है। समिति के अन्दर शोर होना, बाहुबल का प्रयोग, अनुशासन-हीनता का भी वर्णन किया है। पर हमें जो मंत्र मिले हैं, और जिसमें समिति के सदस्यों ने इन्द्र से एक समान होकर प्रार्थना की है, उनसे स्पष्ट है कि उस समय कोई अनुशासन-हीनता या लज्जास्पद बात नहीं थी।

सभा और समिति के अतिरिक्त एक और सभा थी, जिसका नाम बृहद्रथ था। इसका मुख्य कार्य यज्ञ, यज्ञादि विषयक शुद्ध धार्मिक कृत्य करना था। गौतम-

गृह्यसूत्र में जो हमें तथा समाज को निर्देश मिलते हैं, उन्हीं का परिपालन यह संस्था करती थी। एक और संस्था का उल्लेख भी मिलता है— सेना । आगे चलकर ब्राह्मण ग्रंथों ने सभा और समिति का स्थान समाप्त कर दिया।

ड्रकमियर ने सभा और समिति के पतन की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि राजाओं के अधिकार-क्षेत्रों में वृद्धि ने सभा-समिति के पतन में योग दिया और उसी काल में प्रायः धीरे-धीरे सभा-समिति का रूप बिगड़ने लगा। राजा का प्रभुत्व सभा और समिति पर छा गया। राजा को आगे चलकर दैवी शक्ति के रूप में माना जाने लगा। पर वैदिक युगीन राजा सभा और समिति के निर्णयों को क्रियान्वित किया करता था ; वास्तविक शक्ति सभा और समिति नामक संसद में निहित थी।

० ०

न सा सभा यत्र न सन्ति सन्तो
न ते सन्तो ये न भणन्ति धर्मम् ।
रागञ्च दोषञ्च विहाय धर्मं
भणन्तश्च भवन्ति सन्ताः ॥

वह सभा नहीं जहाँ सज्जन नहीं है, वे सज्जन नहीं जो धर्म की बात नहीं करते। राग और दोष को छोड़कर धर्म की वात कहने वाले सज्जन पुरुष होते हैं।

वेद और गौ

—सत्यव्रत 'राजेश'

आर्य संस्कृति में गौ का बहुत उच्च स्थान है। वहाँ गौ को माता कहा जाता है। 'गावो विश्वस्य मातरः', सर्वदेवमयी हि गौः, गाय के रोम-रोम में देवों का वास है, आदि वाक्य विद्वान् तथा जनसाधारण की वाणी से सुने जा सकते हैं। अतः गाय का माहात्म्य आर्य संस्कृति का एक अंग है, कुछ भाष्यकारों की अज्ञानता के कारण कहीं-कहीं गाय को मार कर होम करने जैसा कुकृत्य भी वेदों में देखने को मिलता है, किन्तु यदि उन्हीं मन्त्रों के ऋषिकृत भाष्य को देखा जाए तो यह मान्यता निर्मूल हो जाती है तभा यह स्पष्ट हो जाता है कि उन मन्त्रों में इसका लेश भी नहीं है।

वेद गाय के महत्त्व को स्वीकार करता है तथा उसे अघ्न्या न मारने योग्य तथा 'अदिति' कभी टुकड़े न किये जाने वाली, आदि नामों से अभिहित करता है, वेद में अनेक स्थलों पर गाय के न मारने अपितु रक्षा करने का विधान है, वेद के अनेक मन्त्रों तथा सूक्तों का देवता गाय है, जहाँ उसके गुणों का वर्णन तथा उसकी उपयोगिता का चित्रण किया गया है।

ऋग्वेद के एक सूक्त में गायों की महत्ता का चित्रण किया गया है। वहाँ कहा गया है कि गाएं हमारे घर में आएं, हमारा मंगल करें, गौशाला में बैठें तथा हमारे यहां रमण करें, अनेक रूपों वालीं, बछड़े-बछड़ियों से युक्त ये गाएं गौशाला में होवें तथा ऐश्वर्य वाले गोस्वामी के लिये उषा से भी पूर्व दूध प्रदान करें[1]।

गौ रखने वाला यज्ञ करता है तथा बदले में यज्ञ करने तथा दान देने वाले को वह ऐश्वर्यों का भण्डार परमात्मा धन-धान्य से भर देता है। ऐसे याज्ञिक दाता को धन सदा मिलता है। उसके धन का कभी अपहरण नहीं होता, प्रभु इसे अधिकाधिक धन से बढ़ाता हुआ ऐसे स्थान पर रखता है जहाँ पाप रूप शत्रु या वाह्य शत्रु इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते[2]।

प्रभु ऐसी कृपा करें कि न तो हमारी गौवें नष्ट हों, न हमसे दूर हों, न उन्हें चोर पीड़ा पहुँचा सके, न शत्रु या व्याधि सता सकें, इन्हीं से देवयजन किया

जाता है तथा दान भी दिया जाता है। गोस्वामी इन गौवों के साथ सदा संयुक्त रहे[3], कितनी अपनत्व भरी प्रार्थना है गौवों के लिये वेद में, मानो कोई अपना निकट का सम्बन्धिजन हो जिसके लिये सब प्रकार की सुरक्षा की प्रार्थना की जा रही हो।

जब युद्ध के घोड़े धूल उड़ाते आएं तब भी इन गायों को कोई हानि न पहुँचे। इन्हें कभी कोई भी न मारे, कभी इनके लिये वधस्थल न बने, याजक मनुष्य के पास रहती हुई ये गौवें विस्तृत आवागमन योग्य तथा निर्भय प्रदेश में विचरें[4], गौवें रक्षणीय हैं, युद्ध के अवसर पर भी इन्हें हानि नहीं पहुँचनी चाहिये, इन्हें कहीं भी मारने के लिये न ले जाया जाना चाहिये, चाहे वह यज्ञवेदी हो अथवा सूनागृह, ये तो यज्ञकर्ता यजमान के पास रहें तथा इनके चरने के स्थान ऐसे हों जहाँ ये स्वतन्त्रतापूर्वक घूमें फिरें, साथ ही वह स्थान सब प्रकार से भय रहित हों।

गायें मेरा ऐश्वर्य हैं, इन्हें मुझे ऐश्वर्य के भण्डार प्रभु ने दिया है इन्हीं के दूध के साथ मिलकर सोम पीने के योग्य बनता है, हे मनुष्यों, ये गाएं ही सच्चा धन हैं, मैं ऐश्वर्य-युक्त इस गोधन को हृदय तथा मन से चाहता हूँ[5], आजकल भी ग्राम्यजन गौवों के झुण्ड को धन ही कहते हैं, यह वेद से ही सीखा है उनके पूर्वजों ने।

हे गौवों ! तुम्हारी महिमा अद्भुत है, मैं उसका क्या बयान करूँ, तुम्हारा दूध तथा घृत आदि भी अमृत है, 'तुम कृश को बलिष्ठ बना देती हो तथा कान्ति रहित को दर्शनीय, तुम्हारे रम्भाने में भी मंगल छिपा है, तुम हमारे घर को उभयलोक के सुखों से भर दो, हम सभाओं में आपका भरपूर गुणगान करें[6]' देखा न गौवों का करिश्मा, उनका दूध, घी, दही खाकर कमज़ोर व्यक्ति बलिष्ठ बन गया तथा रोग आदि के कारण निस्तेज हुए व्यक्ति के भी मुख पर तेज़ झलकने लगा। गौवों का दूध सात्विक होने के कारण यह गोपति यज्ञ, दान तथा उपासना में मन लगा कर अपना लोक तथा परलोक सुधार रहा है। फिर वह सभाओं में क्यों इनके गुण न गाए।

हे गौवों ! तुम खूब फलो–फूलो, बछड़े-बछड़ी तुम्हारे साथ घूमें। तुम अच्छा घास खाओ, सुखपूर्वक जल पीने के स्थान में जाकर शुद्ध जल पिओ, चोर तथा पाप-प्रशंसक का तुम पर अधिकार न हो। तुम दीर्घजीवी होवो, काल का कठोर वज्र तुमसे दूर रहे[7]।

इस पूरे सूक्त में गौवों के महत्त्व तथा उनकी उपयोगिता पर बहुत उत्तम ढंग से प्रकाश डाला गया है। इसकी अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

एक अन्य मन्त्र में गौ को रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री तथा आदित्य की बहन बतलाकर उसे अमृत का केन्द्र कहा गया है। वेद का यह भी उपदेश है कि मैं तुम सब ज्ञानवान् तथा बुद्धिमान् लोगों से कहता हूँ कि इस अहिंसनीय गाय को मत मारो क्योंकि यह निरपराध है,[8] अथर्ववेद उद्घोष करता है कि निरपराध को मारने का परिणाम बड़ा भयंकर है,[9] सर पर बैठी निरपराध की हत्या तुम्हें सुख से न सोने देगी तथा जब इसका फल मिलेगा तब तुम्हें अन्दर तक रुला देगी।

यजुर्वेद में परमेश्वर से यजमान के पशुओं की रक्षा की प्रार्थना की गई है,[10] मन्त्र के पूर्वभाग में गोवाचक अघ्न्या शब्द का प्रयोग हुआ था। वहाँ गौवों की वृद्धि की प्रार्थना की गई थी,[11] गौवों की ओर संकेत करते हुए ही अन्तिम पद में उनकी रक्षा की प्रार्थना की गई है। एक मन्त्र में परमात्मा से सब दोपाए तथा चोपायों की रक्षा तथा पालना की प्रार्थना की गई है,[12] एक ऋचा में गौ हत्यारे तथा मानव–हत्यारे को देश से निष्कासन का आदेश है। जिससे वे मानव-समाज से दूर रहें, कभी निकट न आएं[13], यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि गौ हत्यारे तथा मानव-हत्यारे में भेद नहीं किया गया है तथा दोनों को एक ही प्रकार के दण्ड का विधान है।

गौ हत्या का स्पष्ट निषेध—

वेद के अनेक मन्त्रों में गौ हत्या का स्पष्ट निषेध मिलता है। इतना होने पर भी न जाने वेद के भाष्यकार तथा उनके अनुसरण करने वाले लोग कैसे वैदिक-काल में गौओं के मारने की बात लिख डालते हैं। कुछ मन्त्र देखिये—एक मन्त्र में कहा गया है कि हे ज्ञान रखने वाले, तू इस अखण्डनीय गौ को मत मार,[14] निघण्टु में गाय को अदिति इसी अभिप्राय से कहा गया है, यजुर्वेद में एक स्थल पर सब पशुओं के लिये अभय की प्रार्थना की गई है[15], जिसे अभयदान दिया जाए उसके मारने का निषेध स्वयं ही हो जाता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में गौवों को वधस्थल में ले जाने का स्पष्ट निषेध है[16], एक स्थान पर गौ को अखण्डनीया तथा विशेष दीप्ति वाली कह कर उसके न मारने का उल्लेख है[17], ऋग्वेद चेतावनी देता है कि कोई अल्पबुद्धि मनुष्य गाय को न मारे[18], ऐसी व्यवस्था समाज तथा राज्य की ओर से होनी चाहिये। वेद तो राजा को ऐसी व्यवस्था करने का आदेश देता है जिससे इनके राज्य में प्रजा तथा पशुओं को न कहीं किसी प्रकार का भय हो और न रोग[19], अपितु दो पैरों वाले तथा चार पैर वालों में सुख शान्ति बनी रहे[20]।

गौ हत्यारे को दण्ड—

वेद गौ हत्यारे को मानव हत्यारे से अभिन्न मानता है तथा दोनों को एक समान दण्ड की व्यवस्था करता है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि 'यदि तू हमारी गाय को मारता है, अश्व को मारता है या किसी पुरुष को मारता है तो हम तुझे शीशे की गोली से बेध देंगे, जिससे तू हमारा वीरघाती न बन सके[21]। मन्त्र में जहाँ गौघाती को मृत्यु–दण्ड का विधान है वहाँ एक रहस्य की बात भी है कि वह वीरघाती भी है। जब गौ आदि पशु मारे जाएँगे तब बालक तथा युवक आदि को दूध पर्याप्त मात्रा में न मिल सकेगा परिणामतः वे दुर्बल रहेंगे। इस प्रकार गौ हत्यारा वीर हत्यारा भी है। वीरों के अभाव में शत्रु राष्ट्र को पैरों से रोंदेंगे तथा देश पराधीनता की शृंखला में आबद्ध होगा। यह सब गौघाती से होगा। अतः वेद की दृष्टि में ऐसा पापी शीशे की गोली से बींधने योग्य है। यजुर्वेद में भी गौ हत्यारे को अन्तक अर्थात् मृत्यु को सौंप देने का– मृत्यु दण्ड देने का विधान है[22]।

इस प्रकार वेद गौ के महत्त्व, उपयोगिता, संरक्षण तथा उसकी वृद्धि का आदेश देता है तथा गौघातक को मृत्यु–दण्ड देने का निर्देश करता है। इतना होने पर भी जो लोग वैदिक–काल में गाय मारने या गाय का मांस खाने की बात कहते या लिखते हैं उनकी बुद्धि का आप्रेशन भगवान् ही करें।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि वेद में गौ शब्द पृथिवी, सूर्य-किरण, वाणी तथा धनुष की प्रत्यञ्चा आदि अर्थों में भी आता है। वहाँ गाय के घी, दूध आदि को भी गौ कहा है। अतः वेद का अध्ययन करते हुए मन्त्र के वर्णन के अनुसार विषय देखकर अर्थ करना उपयुक्त होगा न कि गौ शब्द का केवल सास्ना लाङ्गूल वाला पशु विशेष ही अर्थ करने का आग्रह वेदार्थानुमोदक होगा। तभी तो महाभारतकार कहता है—'गौवों का नाम अघ्न्या है, इन्हें कौन मार सकता है। वह संसार का अत्यन्त अहित करता है जो गाय या बैल को मारता है[23]।

१—आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसः दुहानाः॥ ऋ० ६।२८।१

२—इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वयं मुषायति।
भूयो भूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये निदधाति देवयुम्॥ वही २

३—न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥ वही ३

४—न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुपयन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ।। वही ४

५—गावो भगो गावो इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धदा मनसा चिदिन्द्रम् ।। वही ५

६—यूयं गावो मेदयथा कृशंचिद श्रीरंचित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ।। वही ६

७—प्रजावतीः सूयवसंरिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसो परिवो हेती रुद्रस्य वृज्याः ।। वही ६.२८.७

८—माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाम मृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।। ऋ० ८.१०१.१५

९—यजमानस्य पशून् पाहि ।। यजु० १.१

१०—अनामा हत्या वै भीमा ।। अथर्व १०.१.२९

११—आप्यायध्वमघ्न्याः ।। यजु० १.१

१२—द्विपादव चतुष्पात्पाहि ।। यजु० ३६.२२

१३—आरे गोहानृहा ।। ऋ० ७.५६.१७

१४—इमं "अदिति" अग्ने माहिंसीः ।। यजु० १३.४९

१५—अभयं नः पशुभ्यः ।। यजु० ३६.२२

१६—न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।। ऋ० ६.२८.४

१७—गाँ मा हिंसी रदितिं विराजम् ।। यजु० १३.४३

१८—गामा मा वृक्त मर्यो दभ्रचेताः ।। ऋ० ८.१०१.१६

१९ - एषां प्रजानामेषाँ पशूनां का भेर्मा रोक् ।। यजु० १६.४७

२०—शमसह द्विपदेशं चतुष्पदे ।। यजु० १६.४८

२१ - यदि नो गां हँसि यद्यश्वं यदि पुरुषम् । तंत्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसोऽवी-
रहा ।। अथर्व० १.१६.४

२२—अन्तकाय गोघातकम् ।। यजु० ३०.१८

२३—अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति ।
महच्चकाराकुशलं वृषं गांवा लभेत्तु यः ।। महाभारत शान्तिपर्व २६२.४७

शिक्षा, रोजगार और विकास

—बलभद्र कुमार हूजा

लखनऊ विश्वविद्यालय में भारत के श्रम–अर्थशास्त्रियों के रजत–जयन्ती समारोह में सम्मिलित होने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। इसकी अध्यक्षता कर रहे थे सुविख्यात अर्थशास्त्री गौतम माथुर। आजकल वे एप्लाईड मानव-शक्ति संस्थान के निदेशक हैं।

उन्होंने अपने अध्यक्षीय–भाषण में कहा कि "आज देश में गरीब-अमीर के बीच की खाई को पाटने की आवश्यकता है। यदि देश को आर्थिक प्रगति करनी है तो हमें अपनी आर्थिक नीतियों पर पुनर्विचार करना होगा। हमें विकास के सुनिश्चित पथ की खोज हेतु अपनी शिक्षा-नीतियों, श्रम-संगठनों, पूंजी-नियोजन, कार्य–कौशल, उत्पादकता, जनसंख्या तथा मानव--शक्ति सम्बन्धी प्रश्नों को नये मानदण्डों के आधार पर तोलना होगा।

आज एक ओर तो श्रमिक--वर्ग असमानता के गर्त में पड़ा कराह रहा है, दूसरी ओर धनिक-वर्ग ऐशो-इशरत के माहौल में डूबा हुआ है; और तीसरे महत्त्वाकाँक्षी गरीब लोग गरीबी के दानव से छुटकारा पाने हेतु प्रतियोगिता की अंधाधुंध दौड़ में लगे हैं, इसी से समाज में विस्फोट की स्थिति पैदा हो रही है।

अगले दिन शिक्षा, रोज़गार और विकास पर गोष्ठी थी। इसमें प्रो० विसादिया ने साक्षरता के कार्यक्रम को गति प्रदान करने की बात कही। श्री कृष्णमूर्ति ने सुझाव दिया कि प्रशिक्षक के कार्यक्रम लचीले होने चाहियें और श्री देशपांडे ने कहा कि अब वह समय आ गया है जब हमें देश के सन्मुख ठोस, व्यवहारिक कार्यक्रम उपस्थित करने चाहिएँ।

प्रो० देशपांडे की बात उठाते हुए मैंने कहा कि आक्स ब्रिज माडल पर आधारित हमारी शिक्षा–नीति में तुरन्त सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। हम केवल रोज़गार के नाकाबिल नौजवान तैयार कर रहे हैं और बिना सोचे-समझे सभी को कॉलिजों में प्रवेश देकर बेरोज़गारी के दुर्दिन को जरा दूर करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर रहे। हमने १०+२ के पाठ्यक्रम में हस्तकला के

प्रशिक्षण को नाममात्र का स्थान दिया है । इसके स्थान पर हमें दत्तचित्त होकर सभी विद्यार्थियों को ८+४ के अन्तिम चार वर्षों में किसी न किसी कला-कलाप में दक्षता ग्रहण करने के सुअवसर उपलब्ध कराने चाहिएँ जिससे १२ श्रेणी समाप्त करने पर १८ वर्ष के यह नौजवान बैंक आदि से कर्जा लेकर अपने निजी धंधों में प्रवेश कर सकें और व्यर्थ सरकारी नौकरियों के चक्कर में न फँसें ।

ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' के दूसरे-तीसरे समुल्लास में विद्या के जिस कार्यक्रम का प्रतिपादन किया है उसके अनुसार विद्या केवल २ या ३ विषयों तक ही सीमित नहीं रहती । विद्या का लक्ष्य मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति कराना है । अतः वेद-शास्त्र की शिक्षा के अतिरिक्त उन्होंने आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद तथा अर्थवेद की शिक्षा का विधान प्रस्तुत किया । अर्थकारी विद्या प्राप्त करने से ही जहाँ एक ओर नवयुवकों की निजी समस्या हल होगी, वहाँ दूसरी ओर वह देश की अर्थव्यवस्था के विकास में समुचित योगदान दे पायेंगे ।

हम देशव्यापी साक्षरता की बात तो वर्षों से करते चले आ रहे हैं किन्तु अभी तक इस क्षेत्र में भी वाँछित सुधार नहीं हुआ । इसके साथ ही कॉलिजों में प्रवेश चाहने वाले वाले युवकों की बाढ़ से हम परेशान हैं । यह जानते हुए भी कि कॉलिज की शिक्षा उनके लिये विशेष लाभदायी न होगी, हम दबाव में आकर बेतहाशा कॉलिज खोलते जा रहे हैं । विदेशों में प्रायः १२ श्रेणी के बाद नवयुवक रोजगार में खप जाते हैं, कॉलिजों में बहुत कम लोग जाते हैं । हमने बहुत से रोजगारों के लिये बी० ए०, एम० ए० की शर्त लाज़मी रख छोड़ी है । इससे लोग बी० ए०, एम० ए० की डिग्री प्राप्त करना जरूरी समझते हैं और इसी दौड़ में अपने जीवन के कीमती वर्ष खो बैठते हैं । एक ओर तो हमें विभिन्न नौकरियों के लिये क्या आवश्यक गुण चाहिएँ, उन पर नई दृष्टि से देखना होगा । पब्लिक सर्विस कमिशनों और सरकारी विभागों को सर्विस नियम यथेष्ट रूप से बदलने होंगे, जिससे व्यर्थ कॉलिजों में प्रवेश की प्रवृत्ति थमे, दूसरी ओर हमें कॉलिज प्रवेश हेतु भी कुछ शर्तें लगानी होंगी ।

एक शर्त यह हो सकती है कि जिस व्यक्ति को कॉलिज में प्रवेश करना है, वह कम से कम एक वर्ष तक राष्ट्रव्यापी साक्षरता-आन्दोलन में स्वयंसेवी के तौर पर कार्य करे तभी वह कॉलिज-प्रवेश का अधिकारी हो सकता है । इनसे हमें कई लाभ होंगे । एक तो साक्षरता-आन्दोलन के लिये असंख्य नौजवानों की फौज उपलब्ध हो जायेगी । दूसरे उन नौजवानों को देश के करोड़ों बदकिस्मत नागरिकों के बीच कार्य करने का मौका मिलेगा और उनकी संवेदनशीलता

जागृत होगी। तीसरे जब वे कॉलिजों में प्रवेश करेंगे तो उन्हें एहसास होगा कि कॉलिज-प्रवेश एक कमाया हुआ प्रिवलेज है, जो सहज में सर्वसाधारण को उपलब्ध नहीं है। अतः कॉलिजों में जाकर दत्तचित्त होकर विद्याध्ययन करें और व्यर्थ तोड़-फोड़ की कार्यवाही में अपना समय और देश की अमूल्य सम्पत्ति नष्ट न करें। इस से विश्वविद्यालयों के अध्ययन-अध्यापन के वातावरण में वाँछनीय सुधार आयेगा।

साक्षरता के संबंध में हमें याद रखना चाहिए कि स्त्री-शिक्षा देशोद्धार के कार्यक्रम का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। स्त्री को शिक्षित करके हम एक पूरे परिवार को शिक्षित कर देते हैं, और बहुधा तो दो परिवार एक स्त्री की शिक्षा से लाभान्वित होते हैं। अभी तक हमारा ध्यान इस ओर यथेष्ट मात्रा में नहीं गया।

इसके साथ ही हमें इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि कॉलिजों में कितने दिन अध्ययन-अध्यापन होता है, क्या हम वर्ष में २०० दिन कार्य करते हैं। आज के कैलेंडर के अनुसार यदि एप्रिल-मई में परीक्षा होती हैं तो मार्च से पढ़ाई समाप्त हो जाती है। फिर कहीं अगस्त-सितम्बर से जाकर पठन-पाठन का कार्य होता है। फिर सरस्वती-यात्राएँ होती हैं, खेलकूद के कार्यक्रम रहते हैं, हड़तालें होती हैं, सो पठन-पाठन हेतु १०० दिन भी नहीं बचते। आखिर इस प्रकार विद्यार्थियों का शैक्षणिक स्तर कितना उन्नत हो पायेगा? आज अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता का युग है। क्या उन्नत विदेशी देशों के शिक्षा-कार्यक्रमों पर हमने कभी नज़र डाली है? क्या हम जानते हैं कि कैनाडा, इंगलैंड, जर्मनी आदि में विद्यालयों में हड़तालें नहीं होती हैं। रूस में तो यह कानून बन चुका है। यदि आपको हड़ताल करनी है तो विद्यालय से बाहर हो जाना होगा, आप के लिये विद्यालय में कोई स्थान नहीं होगा। ठीक ही तो कहा है—

"सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्"

अध्यापकों के लिये तो यह नियम होना चाहिये कि काम करो और वेतन पाओ। यदि काम नहीं करना तो वेतन कैसा?

आज इंसेट, टी. वी. कैसेट का युग है। इन आविष्कारों से शिक्षा के साधनों में अद्भुत क्रान्ति हुई है। शिक्षा प्रसार में इनका पूरा उपयोग करना चाहिए। इस संदर्भ में साक्षरता की भी उतनी आवश्यकता नहीं रह जाती। महाराजा रणजीतसिंह और सम्राट् अकबर साक्षर नहीं थे, किन्तु विद्वान् थे, सुशिक्षित थे, बाखबर थे। आज का किसान भी इन्हीं साधनों के द्वारा सुशिक्षित,

जागृत किया जा सकता है। इसके लिये विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को साफ्टवेयर प्रोग्राम तैयार करने होंगे, जिससे इन साधनों के द्वारा जनसाधारण के समक्ष निरन्तर सही कार्यक्रम प्रस्तुत होते रहें।

एक अन्य प्रवृत्ति की ओर भी हमें विशेष ध्यान देना चाहिए, वह हे सुशिक्षित, पठित समुदाय का विदेश-गमन और प्रवास। लाखों रुपये खर्च कर के हम डॉक्टर, इन्जीनियर और योग्य विद्वान् तैयार करते हैं, पर उनका लाभ उठाते हैं विदेशी राष्ट्र। हालात को देखते हुए उनके बहिर्गमन पर पूरी रोक तो नहीं लगाई जा सकती, लेकिन उनकी विदेशी आय का कुछ भाग वापिस देश को पुनः प्राप्त हो, क्या ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता ? निश्चय ही हम-आप से देश के शिक्षा-संस्थानों को यथेष्ट रूप से प्रबल किया जा सकता है और इस प्रकार ऐसे विद्यार्थी किंचित् मात्र ही सही, देश के प्रति अपने ऋण से उऋण हो सकते हैं।

सबसे आवश्यक बात यह है कि शिक्षित-समुदाय यह महसूस करे कि देश ने उनको शिक्षित करने हेतु इतनी अमूल्य पूँजी लगाई है। उनका भी देश के प्रति कुछ कर्त्तव्य है। उनको केवल अपनी उन्नति से ही प्रसन्न अथवा संतुष्ट नहीं होना चाहिए, सब की उन्नति में, भलाई में, अपनी उन्नति, भलाई समझनी चाहिए।

यही सीढ़ी है– शिक्षा, रोज़गार और विकास की। इसके सभी सोपान मजबूत हों तो देश मजबूत होगा और तभी मौजूदा संकट का निवारण होगा, भविष्य सुदृढ़, सुन्दर होगा।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

(नीतिशतक-८४)

नीति में निपुण पुरुष चाहे निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी अपनी इच्छानुसार आये अथवा चली जाए, आज ही मरण हो अथवा युगान्तरों के बाद, धीर पुरुष न्याय के पथ से एक पग भी विचलित नहीं होते।

आर्य-समाज की शोध-दिशा

—गंगाराम गर्ग

महर्षि दयानन्द हमारे सामने इतने विविध रूपों में आये हैं और एक रूप ने दूसरे रूप को इतना ढ़क लिया है कि बहुधा हम उनके मूलस्वरूप को समझ नहीं पाते। यदि उनका कोई रूप युगों-युगों तक जीवित रहेगा तो वह निश्चय ही वेदोद्धारक का होगा। इन्होंने ही सर्वप्रथम वेद के सही आशय को समझने का प्रयत्न किया।

अब आवश्यकता इस बात की है कि महर्षि के वेद-भाष्य को बोधगम्य बनाकर और उसकी अन्य भाष्यों से तुलना करके उसे हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं में प्रकाशित करवाया जाये। हिन्दी में तो बोधगम्य बनाने के लिये श्री सुदर्शन जी ने कुछ कार्य भी किया है पर अभी अन्य भाष्यों से तुलना अपेक्षित है और साथ ही उसका अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में रूपांतरण भी। यह दुःख की बात है कि अभी तक महर्षि के भाष्य को विश्व के विद्वानों ने मान्यता नहीं दी है। इसका यह कारण नहीं है कि महर्षि की भाष्य-शैली में कुछ दोष है, बल्कि यह है कि महर्षि के भाष्य का बोधगम्य रूप विश्व के विद्वानों तक पहुँचा ही नहीं है। अभी तक महर्षि की भाष्य-शैली की महान् योगी अरविंद ने ही भूरि-भूरि प्रशंसा की है। एक अन्य जर्मन विद्वान रॉठ (सबसे बड़े संस्कृत जर्मनकोश के वैदिक शब्दों से संबद्ध भाग के रचयिता) की यह धारणा थी कि वेद को यदि समझना है तो ब्राह्मण-ग्रंथों से दूर रहना पड़ेगा, क्योंकि वेद के समय में और ब्राह्मण-ग्रंथों के रचनाकाल में बड़ा भारी अंतर है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों की सर्वथा उपेक्षा की जाये। अतः सर्वप्रथम आर्य-समाज की शोध-दिशा वेद-भाष्य की ओर होनी चाहिये।

'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका', वेद भाष्य में और अन्यत्र भी महर्षि ने इस बात के पर्याप्त संकेत दिये हैं कि वैदिक काल में भारत अपनी उन्नति के शिखर पर था और वही हमारा स्वर्ण युग था। वैसे भी प्रारम्भ से यह हमारी मान्यता रही है कि वेद में ज्ञान-विज्ञान का निधान है। 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' यह तो आर्य समाज के नियमों के अन्तर्गत है ही। जबकि सायण आदि भाष्यकार वेदों का यज्ञपरक भाष्य करते हैं और वेदों से ईष्ट की प्राप्ति और

अनिष्ट का परिहार मानते हैं, महर्षि ने वेद को मनुष्य-मात्र के सम्पूर्ण जीवन से जोड़ दिया। यही वेद का वास्तविक स्वरूप था कि हमें राजनीतिशास्त्र (इस दिशा में आचार्य प्रियव्रत जी ने कार्य भी किया है), धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायन, तकनीकी ज्ञान तथा अन्य सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान को बीज-रूप में वेदों में खोजना चाहिये। कौन जानता है, जैसा कि अरविंद ने भी कहा है, कि वेदों में ऐसे सिद्धान्त विद्यमान हों, जहाँ आज के विज्ञान की पहुँच भी नहीं हुई है। जब तक यह नहीं होता, महर्षि की इस विषय में मान्यता और आर्य-समाज के नियम की सत्यता सिद्ध नहीं होती। भाँति-भाँति के ज्ञान-विज्ञान की खोज, यह आर्य-समाज की शोध-दिशा का दूसरा उद्देश्य होना चाहिये।

यद्यपि 'सत्यार्थ-प्रकाश', 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका', 'आर्याभिविनय' आदि के अंग्रेजी रूपान्तर प्रकाशित हो गये हैं, तथापि महर्षि की सभी रचनाओं का अंग्रेजी में रूपान्तरण नहीं हुआ है। जिस प्रकार महात्मा गांधी की सभी रचनाएँ अंग्रेजी में प्रकाशित हो गई हैं, उसी प्रकार महर्षि की सम्पूर्ण ग्रन्थावली अंग्रेजी में उपलब्ध हो, भले ही यह १५-२० खण्डों में क्यों न हो। मॉरिशस सरकार एक दयानन्द विश्वविद्यालय स्थापित करने का विचार कर रही है। इसलिये मॉरिशस के गवर्नर-जनरल सर शिवसागर रामगुलाम को मैंने यह सुझाव भेजा था कि वे दयानन्द के सम्पूर्ण साहित्य का अंग्रेजी में अनुवाद करने की योजना बनाएँ। महर्षि की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर मैंने अंग्रेजी भाषा में 'वर्ल्ड पर्सपेक्टिव्ज़ ऑन स्वामी दयानन्द सरस्वती' नामक ग्रन्थ लिखा था। उसमें लेख के लिये सम्पूर्ण विश्व के विद्वानों को आमंत्रित किया था। केवल ८-९ लेख विदेशी विद्वानों से प्राप्त हुए। अधिकाँश विद्वानों को दयानन्द साहित्य अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं था, इसलिये वे अपने लेख नहीं भेज सके। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के एक संस्कृत प्रोफेसर ने तो यहाँ तक लिख दिया कि उन्हें दयानन्द के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं है। यदि दयानन्द का भाष्य एवं अन्य रचनाएँ अंग्रेजी में उपलब्ध होतीं, तो यह उत्तर हमें नहीं मिलता।

पिछले दिनों मैंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को यह सुझाव दिया था कि गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की सभी रचनाओं का खण्डों में प्रकाशन हो। स्वामी जी के बहुत से लेख अनेक पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। एक समय बीतने पर वे अप्राप्य हो जायेंगे। मेरा विचार है कि इस दिशा में कार्य होना चाहिये।

मेरे कहने का तात्पर्य है कि साहित्य की संरक्षता और उस पर शोध कार्य आर्य-समाज का प्रमुख उद्देश्य है। साहित्य के संरक्षण और शोध के बिना कोई भी संगठन विश्व-व्यापी नही बन सकता। ○ ○

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द

—राकेश शास्त्री

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जन्म २२ फरवरी १८५६ को पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध शहर जालन्धर के निकट तलवन नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम नानकचन्द था, जो सूबेदार मेजर और बाद में पुलिस इन्सपेक्टर भी रहे। स्वामी जी का जन्म का नाम बृहस्पति था, किन्तु पिता ने उनका नाम मुंशीराम रखा जो संन्यास लेने से पूर्व तक रहा। संन्यास लेने के बाद ये मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द हो गये। इनके तीन भाई और दो बहने थीं, ये अन्तिम और छठी सन्तान थे। अतः माता-पिता एवं परिजनों का इन पर पूरा प्यार रहा।

इनकी शिक्षा बनारस से प्रारम्भ हुई तथा लाहौर में वकालत की अन्तिम परीक्षा पास करने पर समाप्त हुई।

सन् १८७८ में जालंधर के सुप्रसिद्ध रईस सालगराम की सुपुत्री श्रीमती शिवदेवी के साथ इनका विवाह सम्पन्न हुआ। जिनसे इन्हें दो पुत्र (हरिश्चन्द्र और इन्द्र) तथा दो पुत्रियाँ (वेदकुमारी और अमृतकला) प्राप्त हुईं। जब मुंशीराम ३५ वर्ष के ही थे तभी सन् १८९१ में इनकी धर्मपत्नी श्रीमती शिवदेवी का देहावसान हो गया। उस समय इन्द्र मात्र दो वर्ष के थे।

कुछ दिनों तक मुंशीराम जी ने नायब तहसीलदारी की, किन्तु स्वाभिमानी होने के कारण नौकरी छोड़कर वकालत का स्वतन्त्र व्यवसाय अपनाया तथा फिल्लौर और जालंधर में वकालत की। किन्तु जब वकालत और नैतिक मान्यताओं में टकराव उपस्थित हुआ तो इन्होंने अपनी चमकती हुई वकालत का परित्याग कर दिया। इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवन में महर्षि दयानन्द के उपदेश सुने थे तथा उनसे बहुत प्रभावित थे। अतः इन्होंने आर्यसमाज की सेवा का तथा महर्षि के ऋण से उऋण होने का मन में संकल्प किया और हिन्दी भाषा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था करने के महान् उद्देश्य को लेकर हिमालय के वनों की राह पकड़ी। तभी से ये मुंशीराम से महात्मा मुंशीराम हो गये और १९०२ में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की, जो आश्रम प्रणाली पर संचालित

वैदिक ज्ञान–विज्ञान, आदर्शों एवं राष्ट्रीय तथा विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं से ओतप्रोत, शरीर और मन के ब्रह्मचर्य से युक्त समाज को श्रेष्ठ नागरिक प्रदान करने वाला प्रथम और अनोखा विद्या का मन्दिर था। इस संस्था को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई, यही उनका सर्वोत्कृष्ट स्मारक है। जिसकी उन्नति में उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

सन् १९१७ में महात्मा मुंशीराम ने संन्यास ग्रहण किया और वे महात्मा मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द हो गये। सन् १९१८ में उन्होंने गुरुकुल के स्थान पर दिल्ली को अपना निवास-स्थान बनाया और तब से लेकर जीवन पर्यन्त राजधानी उनकी विविध प्रगतियों का केन्द्र रही। उन्होंने यहीं पर जनता के सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक योग–क्षेम के लिए अनेक संस्थाएँ स्थापित कीं तथा अपने समय के सुविख्यात दैनिक समाचारपत्र 'तेज' और 'अर्जुन' को जन्म दिया, कुछ समय तक 'लिबरेटर' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र भी चलाया। उन दिनों दिल्ली को महात्मा गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द, डाक्टर अन्सारी और हकीम अजमल खां की दिल्ली के नाम से सम्बोधित किया जाता था। अतः स्पष्ट है कि दिल्ली के सार्वजनिक-जीवन में स्वामी जी को कितना ऊँचा स्थान प्राप्त था।

सन् १९१९ में स्वामी जी ने रोलेट एक्ट के विरोध में दिल्ली में हड़ताल का आयोजन किया तथा गांधी जी दिल्ली आते हुए मार्ग में गिरफ्तार कर लिए गये तो इसके विरोध में स्वामी जी के नेतृत्व में पीपल पार्क पर जनता एकत्रित हुई। वस्तुतः उन दिनों स्वामी जी दिल्ली के बेताज़ बादशाह थे। ३० मार्च १९१९ ई० को जब स्वामी जी एक बड़ी भीड़ के साथ घंटाघर (चांदनी चौक) के पास पहुँचे तो फौजियों ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया तथा एक गोरखा जवान ने भीड़ पर गोली चलाने के लिए राइफल उठाई तो स्वामी जी आगे बढ़े और उस जवान तथा भीड़ के बीच खड़े हो गये और कहा मैं खड़ा हूँ तुम गोली चलाओ। किन्तु कमाण्डर ने स्थिति की गम्भीरता को देखकर जवानों को हटने का आदेश दिया। इसके बाद स्वामी जो के आदेश से भीड़ शान्तिपूर्वक तितर-बितर हो गयी।

४ अप्रैल १९१९ को मुसलमानों ने उन्हें बड़ा भाई कहकर और नेता मानकर भारत की सबसे बड़ी और विख्यात मस्जिद, जामा–मस्जिद दिल्ली के मिम्बर पर बैठाकर उनका अभूनपूर्व सम्मान किया। संसार के इतिहास में यह पहला अवसर था जब एक गैर मुस्लिम को मस्जिद की वेदि से उपदेश देने की अनुमति दी गई थी। स्वामी जी ने उस वेदि से वेद-मन्त्र द्वारा ईश्वर के माता-पिता के रूप का वर्णन किया।

८ जून १६१६ ई० को इलाहाबाद में आयोजित कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में होना निश्चित हुआ और सम्पूर्ण दायित्व स्वामी जी को सौंपा गया। यह वह समय था जब क्षत-विक्षत पंजाब अत्याचारों की दारुण वेदना से कराह रहा था तथा जलियाँवाला कांड में सैकडों तरुण युवा गोलियों से भून दिये गये थे। माताओं की गोद सूनी हो गयी थी तथा पत्नियों की मांग के सिन्दूर पुंछ गये थे। स्वामी जी इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष मनोनीत हुए। परन्तु स्वामी जी ने इसका सुप्रबन्ध करके इसे सफल बनाकर धैर्य, साहस, निर्भीकता और कर्मठता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। स्वागताध्यक्ष होने के कारण स्वामी जी ने अपना स्वागत-भाषण हिन्दी में ही पढ़ा था जो उस समय की परम्परा के विरुद्ध था। अमृतसर कांग्रेस की सफलता और यह हिन्दी भाषण कांग्रेस इतिहास की चिरस्मरणीय घटनाएँ हैं।

१० सितम्बर १६२२ ई० को गुरु का बाग आन्दोलन में भाग लेने के लिए स्वामी जी अमृतसर पहुँचे। दिल्ली की शाही जामा मस्जिद के मिम्बर की शोभा बढ़ाने वाले आर्य संन्यासी ने अमृतसर के अकाल-तख्त की भी शोभा बढ़ाई। वहाँ के दीवान में उन्होंने दिल्ली-निवासियों की ओर से संदेश भी सुनाया। दोपहर को एक बजे वे गुरु का बाग भी गये तथा सायं साढ़े पाँच बजे अमृतसर से लौटने की तैयारी के समय गिरफ्तार करके अमृतसर जेल में बन्द कर दिये गये। ५ अक्टूबर तक मुकदमा चला और १ वर्ष ४ माह की साधारण कैद की सजादी गई तथा मियांवाली जेल में भेज दिये गये। किन्तु २६ दिसम्बर को ही रिहा कर दिए गए तथा जेल से बाहर आकर अमृतसर और जालंधर में व्याख्यान देकर २६ दिसम्बर को दिल्ली पहुँचे।

स्वामी जी दलितोद्धार और अस्पृश्यता-निवारण की समस्या अत्यावश्यक मानते थे। वे दलितोद्धार के कार्य को कांग्रेस के कार्य-क्रम का एक आवश्यक अंग बनाने के लिए प्रयत्नशील थे, किन्तु वर्किंग कमेटी ने ऐसा करना स्वीकार न किया, इस पर उन्होंने कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया और दिल्ली में १६२१ में दलितोद्धार सभा की स्थापना करके इस कार्य को संगठित रूप से करना प्रारम्भ किया, जिसमें उन्हें बड़ी सफलता मिली।

अमृतसर कांग्रेस के बाद के वर्षों को उन्होंने मुख्यतः अस्पृश्यता निवारण, दलितोद्धार एवं आर्य संगठन के कार्यों में व्यतीत किया। २३ दिसम्बर १६२६ को एक मतान्ध मुसलमान की गोली से उनके जीवन का दुःखद किन्तु वीरोचित अन्त हुआ। वे शहीद हो गये।

महात्मा गांधी ने उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके विषय में उदगार प्रकट करते हुए कहा था— "वह कर्मवीर थे। अपने धार्मिक विश्वास में अटल थे। वह

श्रद्धा, सत्य और वीरता के मूर्तिमान् प्रतीक थे। वह योद्धा थे..... ..... उन्होंने एक-मात्र सत्य के लिए भारतमाता की वेदि पर अपना जीवन समर्पित किया था।"

भारतमाता के इस देशभक्त और सपूत की दुःखद मृत्यु से जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना सम्भव नहीं है। उनका जीवन अपने देश और धर्म की सेवा के लिए अर्पित रहा। उन्होंने निर्भीकता और दृढ़ता के साथ सदैव असहायों, पीड़ितों, पतियों और दीन-दुखियों को सहारा दिया। उनका आदर्श जीवन हम सबके लिए हमेशा प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चितकिञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

(नीति ७-८)

जब मैं थोड़ा जानता था तब मैं हाथी के समान मदान्ध था। उस समय 'मैं सर्वज्ञ हूँ' इस प्रकार मेरा मन गर्वित रहता था। जब मैंने विद्वानों से क्रमशः थोड़-थोड़ा ज्ञान पाया तब 'मैं मूर्ख हूँ' इस प्रतीति से मेरा मद ज्वर के समान हट गया।

हिमालय की अमृत-चेतना

—विश्वनाथ मिश्र

अरे ओ हिमालय !
तुम्हारे इस हिमाच्छादित माथे पर—
बालारुण की किरणों को—
खिलते हुए देखकर
मुझे लगता है—
वह कविर्मनीषी
चाँदी के कागज़ पर
सोने के अक्षरों में—
कोई मधुर कविता लिख रहा है।
तुम्हारे शिखरों से उतरती हुई—
इन अनन्त धाराओं को देखकर
और उनकी—
अदम्य जिजीविषा का संचार करने वाली—
लहरों की वाणी को सुनते हुए
लगता है, जैसे वे दिव्य-दृष्टा ऋषि—
वैदिक ऋचाओं का पाठ कर रहे हैं।
तुम्हारे इस परम रमणीय प्रांगण में—
आकाश से जो यह इन्द्रधनुषी—
निर्झर उतर रहा है
लगता है—जैसे ऋग्वेद के विभिन्न मंडलो के—
विविध छन्दों की वर्षा हो रही है।
देवदारु, चीड़, वरुष, भोज, सेब
आदि के वृक्षों पर जो चिड़ियाँ बोल रहीं हैं :
लगता है जैसे—
सामवेद के सरगम का समवेत गायन हो रहा है।
तुम्हारी उपत्यकाओं में
सीढ़ीनुमा—इन नीचे उतरते हुए खेतों को देखकर
लगता है जैसे ये
भागीरथी की उस पावन धारा में नहाने को आतुर
उदात्त आकांक्षाओं के यात्रियों से—
आगे बढ़े जा रहे हैं।

उन खेतों में—
उज्ज्वल तन और उज्ज्वल मन के—
उन भोले-भाले किसानों को काम करते हुए देखकर
लगता है जैसे वे
बड़े पवित्र मन से—
यजुर्वेद के अग्निहोत्र में लगे हुऐ हैं।
अरे ओ महामहिम गिरिवर !
तुम्हारे शिखरों, घाटियों, हिमनन्दों, निर्मल निर्झरों, सघन कान्तरों
आदि के बीच विचरते हुए
मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरा मन
जीवन के अथर्ववेद का वाचन कर रहा है।
अरे ओ गिरिराज !
अद्‌भुत हो तुम
असाधारण है तुम्हारा सम्मोहन
और विलक्षण है तुम्हारा मनःप्रभाव
तभी तो तुम्हारी गोद में बैठा हुआ
यह मामूली आदमी
उन दिव्यातिदिव्य प्रज्ञा से सम्पन्न
असीम सुमेधा के धनी
महामना ऋषियों की
अमृत वाणी सुन रहा है।
बड़ा विचित्र है यह बोध
बड़ा निराला है यह अनुभव
और बड़ी अनोखी है यह अनुभूति
तभी तो मैं श्रद्धा की भावना से ओतप्रोत
विनय की चेतना से अनुप्राणित
और आत्म-समर्पण के विज्ञान में घिरा हुआ
तुम्हारे सामने—
दोनों हाथ जोड़े हुए नत सिर खड़ा हूँ—
आत्म-साक्षात्कार से आनन्द विभोर।

———

गतांक से आगे–

स्फोटवाद

— विजयपाल शास्त्री

अर्थ का वाचक शब्द का तृतीय प्रकार पदस्फोट है। आचार्य विज्ञानभिक्षु के अनुसार स्फोट की प्रक्रिया इस प्रकार है : वर्णों के आठ स्थान हैं— उरःस्थल, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु। सर्वप्रथम उक्त आठ स्थानों में से किसी स्थानविशेष के साथ उदानवायु के अभिघात नामक संयोग से तत्तद् वर्णों की उत्पत्ति होगी। फिर प्रत्येक वर्ण को ग्रहण करने वाला एक-एक श्रावण प्रत्यक्ष होगा। पुनः तत्तत् श्रावण प्रत्यक्ष से तत्तद् वर्णविषयक एक-एक संस्कार होगा। तत्तत् संस्कार से पदविशेषघटक समस्तवर्णविषयक स्मृति उत्पन्न होगी। उस स्मृति से युक्त अन्तःकरण से गकार-ओकार विसर्जनीय रूप आनुपूर्वी से युक्त गोपदात्मक पदस्फोट का मानस प्रत्यक्ष होगा। उस पदस्फोट-विषयक ज्ञान से अर्थ की स्मृति होगी।

आचार्य विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र में पदस्फोट के विषय में मतभेद है। आचार्य वाचस्पति मिश्र के अनुसार तत्तद् वर्ण संस्कारसहकृत श्रोत्रेन्द्रिय से पदस्फोट का प्रत्यक्ष होता है, जबकि विज्ञानभिक्षु के अनुसार उक्त संस्कारजन्य स्मृतिसहकृत अन्तःकरण से पदस्फोट का प्रत्यक्ष होता है।

उपर्युक्त त्रिविध शब्दों में पदाख्य शब्द स्फोट इसलिए कहलाता है क्योंकि वह अर्थ के स्फुटीकरण का हेतु है। यह स्फोटाख्य पद गकारादि वर्णों से भिन्न एवं अभिन्न उभय रूप है। आचार्य विज्ञानभिक्षु कहते हैं—"तच्च स्फोट-पदं गकारादि वर्णेभ्यो भिन्नाभिन्नं भेदाभेदयोरनुभवात्"। अर्थात वर्ण और पदों में भेद और अभेद दोनों का अनुभव होने से पद और वर्णों में भेद और अभेद दोनों ही हैं, जिस प्रकार अवस्था और अवस्थावान् में भेद और अभेद है, बीज-अंकुर, शाखा-पल्लव आदि अवस्थाएँ अवस्थावान् वृक्ष से भिन्न और अभिन्न उभय रूप हैं।

स्फोट के सद्भाव में सन्देह नहीं होना चाहिये। "'गो' यह एक पद है"— इस प्रकार का व्यवहार स्फोट की सिद्धि में प्रमाण है। वर्ण अनेक हैं, अतः उनमें

एकत्व-व्यवहार उपपन्न नहीं हो सकता । प्रत्येक वर्ण में अर्थ-प्रत्यायन की शक्ति निहित नहीं है, इसलिये अर्थज्ञान का कारण होने से भी स्फोट की सिद्धि होती है।

यहाँ पूर्वपक्षी आक्षेप कर सकता है— आनुपूर्वीविशिष्ट समूह के एक होने से 'गो' यह एक पद है –इस प्रकार का एकत्व-व्यवहार उपपन्न हो सकता है। अत: आनुपूर्वीविशिष्ट वर्णसमूह ही अर्थप्रत्यायन का हेतु स्वीकार किया जाए। इसके लिए व्यर्थ स्फोट की कल्पना क्यों की जाए ?

आचार्य विज्ञानभिक्षु ने उक्त आक्षेप का बहुत ही सटीक उत्तर दिया है। उनका समाधान है कि यदि आनुपूर्वीविशिष्ट वर्गसमूह के अतिरिक्त पद को स्वीकार नहीं किया जाएगा तो सयोगविशेष से अवच्छिन्न मृत्कणसमूह के एक होने से उसी के द्वारा जलाहरणादि क्रियाएँ होने लगेंगी। परिणामस्वरूप घटादि अवयवी का उच्छेद हो जायेगा । पूर्वपक्षी को यह स्त्रीकार्य नहीं होगा। अत: जिस प्रकार संयुक्त मृत्कण समूह से जलाहरण आदि कार्य नहीं हो सकते, उसी प्रकार आनुपूर्वीविशिष्ट वर्णसमूह अर्थ का प्रत्यायन नहीं करा सकता । इस प्रकार सिद्ध हुआ कि पद वर्णों से पृथक् है, एक प्रयत्न से उत्पाद्य है, नाद से अभिव्यंग्य है तथा अन्त:करण से ग्राह्य है। यह पद ही अर्थज्ञान का कारण होने से स्फोट कहलाता है। अत: वर्णभिन्न वर्णात्मक और स्फोटात्मक ये त्रिविध शब्द विज्ञानभिक्षु को मान्य हैं।

स्फोटात्मक शब्द में प्रमाण

'गो' यह एक पद है— इस प्रकार का ज्ञान या व्यवहार शब्द को स्फोटात्मक सिद्ध करता है। केवल वर्ण में यह ज्ञान उपपन्न नहीं हो सकता, क्योंकि प्रयत्नभेद से उच्चारण किए गए वर्णों में जब तक कोई एक अभिन्न वस्तु अनुस्यूत नहीं होगी तब तक 'यह एक पद है' इस प्रकार की सर्वसिद्ध अबाधित रूप से होने वाली प्रतीति कभी नहीं हो सकती। जब तक अनेक पुष्पों में एक धागा अनुस्यूत होकर उन्हें नहीं जोड़ेगा तब तक 'यह माला है' इस प्रकार का ज्ञान नहीं हो सकता। अत: स्फोटात्मक शब्द में उक्त लोकानुभव प्रमाण है।

स्फोट की अभिव्यक्ति में क्रमिकता

योग के व्याख्याकार पदस्फोट की अभिव्यक्ति क्रमश: स्वीकार करते हैं, अर्थात् पदस्फोट की अभिव्यक्ति एक काल में नहीं होती बल्कि प्रथम वर्ण के श्रवण से स्फोट की अस्फुट प्रतीति होती है, तदनन्तर वह द्वितीय, तृतीय आदि वर्णों से स्फुट, स्फुटतर और स्फुटतम होता जाता है।[1] यद्यपि प्रत्येक वर्ण

किंचिन्मात्र स्फोट को अभिव्यक्त करता है तथापि अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक स्पष्ट-रूप से स्फोट का अभिव्यंजक नहीं होता। पूर्व-पूर्व अभिव्यक्ति से उत्पन्न संस्कारों के साथ अन्तिम वर्ण ही स्पष्ट रूप से स्फोट को अभिव्यक्त करता है। इस लौकिक दृष्टान्त से इसे सुगमता से समझा जा सकता है। दूर पर स्थित वृक्ष प्रथम दृष्टिपात में स्थूलता आदि सादृश्य दोष के कारण हाथी प्रतीत होता है किन्तु आगे बढ़ने पर इस अस्पष्ट ज्ञान के बाद वनस्पति का स्पष्ट ज्ञान होने लगता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि योगदर्शन के व्याख्याकार पद के प्रत्येक वर्ण में अर्थ–प्रत्यापन की शक्ति स्वीकार करते हैं।

पद में वाक्यार्थ–बोधन का सामर्थ्य

योग के व्याख्याकार कहते हैं कि जिस प्रकार प्रत्येक वर्ण में अर्थबोधक पद बनने की शक्ति रहती है उसी प्रकार प्रत्येक पद में वाक्यार्थबोधक वाक्य बनने का सामर्थ्य रहता है। वाचस्पति मिश्र ने पद में वाक्य–शक्ति को स्पष्टतः स्वीकार किया है- "सर्वपदेषु चास्ति वाक्यशक्तिः[2]।"

पद दो प्रकार से वाक्यार्थ का बोध कराता है: अध्याहार के द्वारा और स्वरूपयोग्यता के द्वारा। उदाहरण के लिये– 'वृक्षः' पद के उच्चारण से 'अस्ति' क्रिया का अध्याहार किया जाता है, क्योंकि कोई भी पदार्थ सत्ता के बिना कभी नहीं रहता। कोई भी कारक क्रियापद के बिना नहीं रह सकता, अतः कारक-पद में वाक्यार्थ–बोधन का सामर्थ्य है।

कारकपद के समान क्रियापद भी कारकपद के बिना नहीं रहता। अतः क्रियापद के श्रवण से कारकपद का अध्याहार कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ 'पचति' कहने पर कर्त्ताकारक 'देवदत्त' का अध्याहार किया जाता है। इस प्रकार क्रियापद और कारकपद दोनों में वाक्यार्थबोधन की योग्यता रहती है।

पदों में वाक्यार्थ-बोधन की स्वरूपयोग्यता भी है। कुछ पद ऐसे भी हैं जो क्रिया या कारक की अपेक्षा के बिना भी वाक्यार्थ का बोध कराते हैं। जैसे 'श्रोत्रियः' यह एक ही पद पूरे वाक्य का अर्थबोध करा रहा है। 'श्रोत्रियः' का अर्थ है– यह वेद का अध्ययन करता है। इसी प्रकार 'जीवति' यह क्रियापद

१– केवल भागानुभवेन पदमव्यक्त मनुभूयते ऽनु संहारधिया तु
भागानुभव योनि संस्कार लब्ध जन्मना व्यक्त मिति विशेषः।
(तत्त्ववैशारदी, पृ० ३२३)

२– तत्त्ववैशारदी, पृ० ३२८

इस वाक्यार्थ का बोध करा रहा है कि 'यह प्राणों को धारण करता है'। वाचस्पति मिश्र ने अस्पष्टतः और विज्ञानभिक्षु ने स्पष्टरूप से पदस्फोट के समान वाक्यस्फोट को स्वीकार किया है[1]।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि पातञ्जल योगसूत्र में स्फोटवाद के बीज निहित हैं, जिसके स्वरूप को मनीषी व्याख्याकारों ने सरल भाषा में जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित किया।

× × ×

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

मनु० ५।१०९

शरीर जल से शुद्ध होते हैं, मन सत्य से शुद्ध होता है। मनुष्य की आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होती है। बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

१- नन्वेवं युक्तिसाम्याद् वाक्यमपि स्फोटरूपं एकैकं स्याद् इति चेद् ? बाधकाभावे सतीष्टत्वात्। (योगवार्त्तिक, पृ० ३२५)।

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक-परिचय	—	**वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त (तीन भाग)**
लेखक	—	**आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति** पूर्व–कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
प्रकाशक	—	मीनाक्षी प्रकाशन, बेगम ब्रिज, मेरठ
पृष्ठ संख्या (तीनों भाग)	—	१५००
मूल्य	—	२४० रुपये
समीक्षक	—	बलभद्र कुमार हूजा

'वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ एक अनुसन्धानात्मक ग्रन्थ है। भारतीय आर्य-परम्परा में सभी ऋषि-मुनि और आचार्य वेद को विविध विद्या-विज्ञानों से युक्त मानते आये हैं। महर्षि व्यास और आचार्य शंकर की सम्मति में तो वेद इतना अधिक ज्ञान-विज्ञान का सागर हैं कि उन्होंने वेद की विद्यमानता को ईश्वर की सिद्धि में एक युक्ति के रूप में उपस्थित किया है। उनकी सम्मति में वेद का रचयिता सर्वज्ञ परमात्मा ही हो सकता है। मनु ने कहा है कि वेद को जानने वाला व्यक्ति सेनाओं का संघटन और संचालन कर सकता है, राज्यों का संचालन कर सकता है, न्याय–व्यवस्था का सचालन कर सकता है, और सारी धरती के विशाल राज्य का भी संचालन कर सकता है। ऐसा कोई प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिसमें वेद के आधार पर और वेद के अपने शब्दों में वेद में वर्णित किसी विद्या–विज्ञान को प्रदर्शित किया गया हो। प्रस्तुत ग्रन्थ में वेद के आधार पर और वेद के अपने शब्दों में वेद में वर्णित राजनीति-विज्ञान को विस्तृत रूप में दिखाया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि वेद में सर्वांगपूर्ण राजनीति शास्त्र का वर्णन है।

ग्रन्थ के संविधान काण्ड, अभ्युदय काण्ड और प्रतिरक्षा काण्ड में तीन भाग हैं। ग्रन्थ में छोटे माण्डलिक राज्यों से लेकर सारी धरती के चक्रवर्ती राज्य (विश्वराज्य) तक के निर्माण, उनकी संसदों, मंत्रीमण्डल, चुनाव–पद्धति, प्रजातन्त्र का स्वरूप, न्याय-व्यवस्था, स्त्रियों के राजनीतिक अधिकार, उदार राजनीति,

समाज का संघटन और उसकी आर्थिक व्यवस्था, प्रजाओं के सुख-समृद्धि के उपाय, राष्ट्रवासियों का परस्पर प्रेम, सहयोग और सद्भाव, राष्ट्रों को पतन से बचाने के उपाय, सैन्य संघटन, शस्त्र- अस्त्र, और युद्धनीति आदि अनेकानेक विषयों के सम्बन्ध में वेद के विचारों को प्रदर्शित किया गया है। यह ग्रन्थ लेखक के २५ वर्ष से भी अधिक समय के अध्ययन, अनुसंधान और चिन्तन का परिणाम है. तथा अपने प्रकार का सर्वथा मौलिक और पहला ग्रन्थ है। सारे वैदिक-साहित्य में इस प्रकार का दूसरा ग्रन्थ नहीं है।

वेद में अनेक ऐसे राजनीतिक तत्त्व वर्णित पाये जाते हैं जिनसे आज का राजनीतिक जगत् भी लाभ उठा सकता है। उदाहरण के लिये वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि "जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्, सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहा ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती" अर्थात् यदि कभी किसी राष्ट्र में अनेक भाषाओं को बोलने और अनेक धर्मों को मानने वाले लोग रहने लग जायें तो उन्हें इस प्रकार परस्पर प्रेम से मिल कर रहना चाहिये जिस प्रकार एक घर के लोग प्रेम से मिल कर रहा करते हैं। ऐसा करने से राष्ट्र की भूमि राष्ट्रवासियों के लिये धन–सम्पत्ति और कल्याण–मंगल की हजारों धाराओं को बहाने लगेगी, जिस प्रकार दुधारू गाय दूध की धारायें बहाती है। भाषाओं और धर्मों के नाम पर बुरी तरह अशान्त और संकट–ग्रस्त आज के भारत के लिये वेद का यह उपदेश कितना सामयिक और उपयुक्त है। इस प्रकार वेद के राजनीति विज्ञान को अपने इस ग्रन्थ में उद्घाटित करने और उसे जनता के सम्मुख लाने के प्रयत्न द्वारा लेखक ने प्राणिमात्र की महाती सेवा की है।

महान् हुतात्मा दिवंगत श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के चरणों में बैठकर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में लेखक ने जो दीर्घकाल तक संस्कृत और वैदिक साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है, उसी का परिणाम यह विशाल मौलिक ग्रन्थ है।

× × ×

पुस्तक का नाम	—	**सत्यदेव परिव्राजक : व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतित्व**
लेखक का नाम	—	**डॉ० दीनानाथ शर्मा**
प्रकाशक	—	राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली–६
पृष्ठ संख्या	—	२६६, साइज – ८"×६"
मूल्य	—	४० रुपये ।
समीक्षक	—	राकेश शास्त्री

इस संसार में कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो अपने जीवन के अनुभवों तथा प्रतिभा द्वारा समाज का, राष्ट्र का मार्ग-निर्देशन करते हैं और अपनी लेखनी के प्रसाद से साहित्य को समृद्ध करते हैं। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक इसी प्रकार के महापुरुषों में से हैं। उन्होंने पञ्जाब से लेकर तिरुचापल्ली तक हिन्दी भाषा का पताका को फहराया और अपनी प्रबुद्ध मेधा से कविता, कहानी, निबन्ध, जीवनी, यात्रा-वृत्तान्त आदि हिन्दी-साहित्य की अनेक विधाओं को अपनी लेखनी से समृद्ध किया।

स्वामी सत्यदेव जी त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति थे ; उन्होंने आजीवन अविवाहित रहकर, पूर्ण समर्पणभाव से हिन्दी साहित्य की सेवा की। अपने सम्पूर्ण जीवन की अर्जित सम्पत्ति भी अन्त में उन्होंने 'सत्य ज्ञान निकेतन' की स्थापना के अनन्तर नागरी प्रचारिणी सभा को दान देकर अपनी सात्विक-त्याग भावना का परिचय दिया।

इस प्रकार के महान् व्यक्तित्व पर लेखनी उठाना तथा उनके उत्कृष्ट साहित्य की समालोचना करना भी कोई सरल कार्य नहीं है। डॉ० दीनानाथ शर्मा ने इस महत्त्वपूर्ण कार्य को दायित्व के साथ पूर्ण किया है ; इस प्रशंसनीय कार्य के लिए वे हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ को लेखक ने नौ अध्यायों में विभक्त किया है, प्रथम अध्याय में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का विस्तृत परिचय दिया है। द्वितीय अध्याय में उनके निबन्ध-साहित्य का परिचय देते हुए उसका संक्षिप्त विवेचन किया है। तृतीय अध्याय में उनकी लेखन-शैली के १३ प्रकारों का उल्लेख करते हुए उनका सोदाहरण विश्लेषण किया है, इसी अध्याय में उनके शब्द-चयन पर भी विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय में परिव्राजक जी की लेखन–कला का विवेचन किया गया है। पञ्चम अध्याय में उनके यात्रा-साहित्य का उल्लेख करते हुए उसका विस्तृत विश्लेषण किया गया है, जो अत्यन्त मौलिक बन पड़ा है। षष्ठप

अध्याय में उनके जीवनी तथा कथापरक साहित्य का मूल्यांकन हुआ है। सप्तम अध्याय में उनकी कहानियों का संक्षिप्त परिचयपूर्वक विस्तृत विवेचन है। अष्टम अध्याय में उनके काव्यपक्ष तथा भावपक्ष पर विचार हुआ है तथा नवम् अध्याय में परिव्राजक जी द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार और सेवाएँ शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी और ईसाई प्रचारक, हिन्दी और ब्रह्मसमाज, काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी सम्मेलन, गुरुकुल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ तथा डी०ए०वी० कालेजों को उनका योगदान, भारतेन्दु और उनका मित्रमण्डल, दक्षिणी भारत तथा पञ्जाब में उनके द्वारा हिन्दी प्रचार आदि विषयों का प्रतिपादन है। अन्त में उपसंहार के पश्चात् परिव्राजक जी के साहित्य का काल-क्रमानुसार उल्लेख करते हुए तीन पृष्ठों में सहायक-ग्रन्थों की सूची दी गई है। वस्तुतः लेखक ने परिव्राजक जी के व्यक्तित्व एवं साहित्यिक उपलब्धियों का इस पुस्तक में अधिकारिक विवेचन किया है।

राजपाल एण्ड सन्ज़ जैसे प्रतिष्ठित काप्रशक द्वारा पुस्तक का प्रकाशित करना ही इस बात का द्योतक है कि कार्य अत्यन्त उत्तम तथा जिज्ञासु अध्येताओं के लिए पठनीय तथा संग्रहणीय है। कागज़ तथा मुखपृष्ठ अत्यन्त उत्कृष्ट एवं आकर्षक बन पड़ा है।

गुरुकुल-समाचार

प्रस्तुतकर्त्ता : राकेश शास्त्री

११ जून, १९८४ को मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय पुस्तकालय में योजना-पटल की बैठक सम्पन्न हुई। जिसमें छटी पञ्चवर्षीय योजना में वि०वि अनुदान आयोग से प्राप्त योजनाओं के शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वयन का निर्णय किया गया तथा सप्तम पञ्चवर्षीय भावी विकास-योजनाओं को प्रस्तुत करने का निश्चय किया गया।

जुलाई, १९८४ में वि०वि० पुस्तकालय में परीक्षा-सुधार विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें वि०वि० के सभी अध्यापकों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। इस संगोष्ठी में परीक्षा-प्रणाली में सुधार के उपायों पर विचार-विमर्श हुआ।

४-५ अगस्त, १९८४ को श्री वेदप्रकाश शास्त्री तथा डॉ० जयदेव वेदालंकार गुरुकुल टटेसर, जोनती (दिल्ली) को मान्यता प्रदान करने हेतु निरीक्षणार्थ गये।

११ अगस्त, १९८४ को विश्वविद्यालय की अमृत-वाटिका में मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में संस्कृत-दिवस उत्साहपूर्वक मनाया गया। समारोह का प्रारम्भ वैदिक मन्त्रों के पाठ तथा यज्ञ से हुआ। श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री के संयोजकत्व में सम्पन्न समारोह में विभिन्न वक्ताओं ने संस्कृत-भाषा एवं साहित्य के महत्त्व का प्रतिपादन किया और सामाजिक एवं धार्मिक एकता के लिए उसके प्रचार-प्रसार पर बल दिया। इसी दिन गुरुकुल-विद्यालय के ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ-संस्कार भी मनाया गया। पं० सत्यकाम विद्यालङ्कार जी (आचार्य, गुरुकुल-विद्यालय) ने उन्हें दीक्षा दी और उनके प्रति उपदेश किया। अपने संप्रेरक एवं विचारोत्तेजक भाषण में मान्य कुलपति जी ने छात्रों एवं शिक्षकों से अपने दैनन्दिन जीवन में संस्कृत-भाषा के उपयोग का आग्रह किया। उन्होंने छात्रों को पारितोषिक-वितरण भी किया।

१३ अगस्त, १९८४ को डॉ० त्रिगुण सेन की अध्यक्षता में वेदमन्दिर में वन-महोत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। इसका संयोजन डॉ० विजय शंकर (अध्यक्ष,

वनस्पतिविज्ञान विभाग) ने किया। इस अवसर पर वक्ताओं ने वृक्षों के संरक्षण एवं उपयोगिता पर अपने विचार प्रस्तुत किए।

१५ अगस्त, १९८४ को गुरुकुल विद्यालय की अमृत-वटिका में मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में स्वतन्त्रता-दिवस का समारोह वर्षा की रिमझिम में भी सोल्लास मनाया गया। यज्ञ के उपरान्त मान्य कुलपति जी ने ध्वजारोहण किया। विद्यालय के ब्रह्मचारियों ने सुमधुर गीतों से वातावरण को संगीतमय बना दिया। कुलसचिव श्री वीरेन्द्र अरोड़ा ने राष्ट्र के प्रति संदेश का वाचन किया। अन्त में मान्य सभापति, पं० सत्यकाम विद्यालंकार तथा कैप्टन देशराज द्वारा क्रमशः आशीर्वाचन, उद्बोधन तथा धन्यवाद ज्ञापन किया गया। समारोह का संयोजन श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री (अध्यापक, गुरुकुल विभाग) ने किया। इस अवसर पर गुरुकुल तथा वि०वि० के अध्यापकों ने प्रतिज्ञाएँ कीं—

सैंतीसवें स्वतन्त्रता दिवस (पन्द्रह अगस्त) के राष्ट्रिय महापर्व के अवसर पर हम गुरुकुल और विश्वविद्यालय के अध्यापक निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ करते हैं—

१—हम सदा राष्ट्रिय संविधान का आदर करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

२—राष्ट्रिय-ध्वज का सदैव सम्मान करेंगे और उसके सम्मान की रक्षार्थ बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए उद्यत रहेंगे।

३—आतंकवाद और राष्ट्रद्रोह एवं राष्ट्र-एकता के लिए प्रत्येक प्रकार का बलिदान करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहेंगे।

४ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की उन्नति और ख्याति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहेंगे।

५—इस विश्वविद्यालय एवं गुरुकुल के नियम तथा उपनियमों का तत्परता से पालन करेंगे।

६—प्रतिदिन नियतवेश धारण करके विश्वविद्यालय एवं गुरुकुल में अपने कार्य पर उपस्थित होंगे।

७—आर्यसमाज के सिद्धान्तों का पालन करेंगे तथा इसके प्रचारार्थ अधिक से अधिक समय देंगे और आर्थिक सहयोग प्रदान करेंगे। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की उन्नति के लिए तन, मन, धन से सहयोग करेंगे।

२१ अगस्त, १९८४ को अमृत-वाटिका में योगेश्वर कृष्ण के जन्म-दिवस को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में उल्लास के साथ मनाया गया। इसका संयोजन श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री ने किया। इस अवसर पर विद्यालय के ब्रह्मचारियों ने कृष्ण–विषयक प्रेरक–प्रसंगों पर अपने ओजस्वी भाषण एवं गीत प्रस्तुत किए। इसके अतिरिक्त डॉ० राकेश शास्त्री (संस्कृत विभाग) ने योगेश्वर कृष्ण की

विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उनके जीवन से प्रेरणा लेने के लिए कहा। समारोह के अन्त में धनुर्विद्या के अभ्यास का भी उद्घाटन किया गया।

३० अगस्त, १९८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में शिक्षक-कक्ष में महर्षि दयानन्द व्याख्यान-माला का सूत्रपात किया गया। इस श्रृंखला में डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश' (हिन्दी-विभाग) के संयोजकत्व में डॉ० भवानीलाल भारतीय (अध्यक्ष-दयानन्द पीठ, पञ्जाब वि०वि०, चन्डीगढ़) का 'आर्य समाज की उपलब्धियाँ तथा सीमाएँ' विषय पर प्रथम व्याख्यान हुआ। जिसमें गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर; बी० एच० ई० एल०; वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर तथा हरिद्वार की संस्थाओं से भी बुद्धिजीवियों ने भाग लिया। अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान में डॉ० भारतीय ने आर्यसमाज का इतिहास तथा वर्तमान स्थिति पर दृष्टि डालते हुए, आर्य समाज में आए दोषों को दूर करने के लिए उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किए। उन्होंने श्रोताओं की विविध शंकाओं का भी समाधान किया। मान्य कुलपति के अध्यक्षीय भाषण से सभा समाप्त हुई।

३ सितम्बर, १९८४ को श्री ज्ञानचन्द रावत (प्रवक्ता, हिन्दी विभाग) की पी-एच०डी० उपाधि हेतु मौखिकी परीक्षा सम्पन्न हुई। उन्होंने डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी (अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग) के निर्देशन में 'हरिऔध के महाकाव्यों का सामाजिक एवं शास्त्रीय अध्ययन' विषय पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्रबन्ध प्रस्तुत किया था।

४ सितम्बर, १९८४ को कुलपति जी की अध्यक्षता में वि०वि० पुस्तकालय में शिक्षा-पटल की बैठक सम्पन्न हुई।

५ सितम्बर, १९८४ को गुरुकुल विद्यालय के प्रार्थना-भवन में मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में डॉ० एस० राधाकृष्णन् स्मृति-दिवस तथा शिक्षक-दिवस मनाया गया। इस अवसर पर डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०) ने मुख्य-अतिथि का पद सुशोभित किया। इस अवसर पर विभिन्न वक्ताओं ने डॉ० राधाकृष्णन् के श्रद्धापूर्वक स्मरण के साथ शिक्षकों के दायित्वों पर प्रकाश डाला तथा उनकी सामाजिक सम्मानास्पदता पर बल दिया। मान्य अतिथि ने ब्रह्मचारियों को सम्बोधित करते हुए उन्हें देश की व्यवस्था में योगदान करने तथा ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्ति का प्रयास करने को कहा। सम्मान्य अध्यक्ष ने शिक्षकों के उद्बोधन के साथ-साथ भारतवर्ष के पूर्व-राष्ट्रपति तथा विश्व के ख्यातनामा महान् दार्शनिक डॉ० राधाकृष्णन् के भारतीय धर्म एवं दर्शन और विश्व-शान्ति के क्षेत्र में योगदान का प्रतिपादन

किया तथा अपने जीवन के प्रेरक संस्मरण सुनाते हुए, छात्रों को गुरुओं का सम्मान करने की प्रेरणा दी। अन्त में पण्डित सत्यकाम विद्यालंकार, आचार्य, गुरुकुल-विद्यालय के आशीर्वचनों के साथ सभा समाप्त हुई।

५ **सितम्बर**, १९८४ को मान्य कुलपति जी के प्रयास से विश्वविद्यालय में डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०) के कर-कमलों द्वारा एक स्वास्थ्य-केन्द्र का उद्घाटन किया गया। इस केन्द्र का उद्देश्य वि० वि० एवं गुरुकुल विद्यालय के छात्रों एवं कर्मचारियों को निःशुल्क चिकित्सा प्रदान करना है।

८, ९ **सितम्बर**, १९८४ को दर्शन-विभाग के तत्त्वावधान में उत्तरप्रदेश दर्शन परिषद् तथा मानवीय मूल्यों का समाज में अन्तःसम्बन्ध विषय पर अखिल भारतीय दर्शन सम्मेलन का, वेद मन्दिर में डॉ० जयदेव, अध्यक्ष, दर्शन विभाग के निर्देशन में संयुक्त रूप से आयोजन किया गया। इसमें भारतवर्ष के लगभग सभी वि०वि० के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में पारित संस्तुतियां अगले पृष्ठों पर देखिए।

२० **सितम्बर, १९८४** को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में विज्ञान-महाविद्यालय में प्रो० ओमप्रकाश सिन्हा बलिदान-दिवस का आयोजन किया गया, जिसमें वि० वि० के सभी छात्रों एव अध्यापकों ने भाग लिया। इस अवसर पर श्री सुरेशचन्द त्यागी, डॉ०भारतभूषण विद्यालंकार, पं. सत्यकाम विद्यालंकार, श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी तथा डॉ० जबरसिंह सेंगर ने सिन्हा जी के सम्बन्ध में मधुर स्मृतियों का कथन करते हुए, उन्हें भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की तथा गुरुजन एवं शिष्यों में पारस्परिक सद्भाव तथा सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध की स्थापना पर जोर दिया। अन्त में मान्य कुलपति ने अपने अध्यक्षीय भाषण में वर्तमान समय में छात्रों के दायित्व पर प्रकाश डाला। इसका संयोजन श्री सुरेशचन्द त्यागी (प्राचार्य, विज्ञान महाविद्यालय) ने किया।

२४ **सितम्बर, १९८४** को मान्य कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा की अध्यक्षता में गुरु विरजानन्द-दिवस, वेदमन्दिर में उल्लास के साथ मनाया गया। इसका संयोजन श्री वेदप्रकाश शास्त्री एवं श्री प्रेमचन्द शास्त्री ने किया। इस अवसर पर ब्रह्मचारियों ने स्वामी विरजानन्द जी के विषय में अपने मधुर गीत प्रस्तुत किए तथा ऋषिपाल,ब्र० जगदीश, अतुल तथा नितिन कुमार ने स्वामी जी के जीवन के रोचक प्रसंगों पर प्रकाश डाला।

इसके अतिरिक्त पं० भगवद्दत्त, श्री रामप्रसाद वेदालंकार,, डॉ० राकेश शास्त्री, डॉ० त्रिलोकचन्द तथा ऋषिपाल (वेदालंकार-प्रथम वर्ष) ब्र० हरपाल (एम० ए०, वेद-द्वितीय वर्ष), रवीन्द्रकुमार (एम० ए०, संस्कृत, प्रथम वर्ष) ने स्वामी जी के प्रेरक प्रसंगों पर प्रकाश डाला तथा उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा दी। 卐

मानवीय-मूल्य और समाज में अन्त:सम्बन्ध पर

राष्ट्रिय कान्फ्रेन्स की संस्तुतियाँ*

१ नैतिकता का आधार कोई सम्प्रदाय नहीं, अपितु मानवीय सम्वेदना और हित ही हो सकता है। सम्प्रदाय का अभिप्राय यहाँ पर ऐसे विश्वासों से है जिनमें उसकी किसी परम्परा में मान्य सिद्धान्त अन्तिम माना जाता है, चाहे वह असत्य ही क्यों न हो।

२—प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर सार्वभौमिक मानवीय-मूल्यों के पालन को स्थापित करने का प्रयास करें। ऐसी शक्ति जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करे तथा एक-दूसरे के प्रति सन्देह उत्पन्न करती है, उसका खण्डन करना चाहिए।

३—मनीषी वक्ताओं ने निष्कर्ष रूप में स्वीकार किया कि विज्ञान का लक्ष्य जीवन को ऐहिक और पारलौकिक समृद्धि एवं उत्कर्ष में निहित होना चाहिए। मानव-जीवन की सुख-सुविधा के लिए विज्ञान ने अनेक उपकरण जुटाये हैं, उसे अत्यन्त सशक्त और सबल बना दिया है, किन्तु नैतिक मूल्यों के अभाव में यह सब व्यर्थ है।

४- अनेक व्यक्तियों के समुदाय से समाज का निर्माण होता है तथा मानव-मूल्यों का प्रभाव सामाजिक मूल्यों पर पड़ता है। आज समाज को व्यक्ति से अधिक सम्मान और वरीयता प्राप्त है। कहावत है— "यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं न करणीयम्" अर्थात् कोई भी कार्य, भले ही नैतिक दृष्टि से कितना शुद्ध हो किन्तु यदि उसे सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है तो वह आचरणीय नहीं है। इससे व्यक्ति की गरिमा का ह्रास हुआ है और सामाजिक मूल्यों का भी पतन हुआ है।

५—बहुधा देखा गया है कि दुष्ट व्यक्ति के समक्ष सौ भले आदमी भी सत्य बात कहने से कतराते हैं। अब चिन्तन का प्रभाव यह हो गया है – "अरे जाने

***७-८ सितम्बर, १९८४ को विश्वविद्यालय में 'मानवीय-मूल्य और समाज में अन्त:सम्बन्ध' विषय पर एक राष्ट्रिय कान्फ्रेन्स का आयोजन किया गया। गम्भीर विश्लेषणोपरान्त विद्वानों की संस्तुतियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।**

भी दो, हमें किसी से क्या लेना-देना है, जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। समाज-सुधार का ठेका हमने ही थोड़े ले रखा है।" चिन्तन के इसी ढंग ने समाज में दुर्जनों को बढ़ावा दिया है। हमें इसके विरुद्ध न्याय का पक्ष लेना चाहिए। इसके लिए जन-जागरण आवश्यक है। संगोष्ठी में उक्त समस्या के समाधानार्थ विचार प्रस्तुत किये गये कि समाज में जीवन-मूल्यों का स्तर उन्नत किया जाये।

६—विभिन्न संस्कृतियों में जीवन की परिभाषा और उसके मूल्यांकन का दृष्टिकोण पृथक्-पृथक् प्रतिपादित है। कहीं संघर्ष का नाम जीवन है, तो कहीं शान्ति ही जीवन है। किसी के अनुसार जीवन की सार्थकता निरन्तर गतिमान रहने में है, तो किसी की मान्यता के अनुसार तत्त्वज्ञानपूर्वक मोक्ष प्राप्ति में है। संगोष्ठी के निष्कर्ष के आधार पर जीवन की सार्थकता धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, इस पुरुषार्थ चतुष्टय की उपलब्धि एवं समन्वय में है।

७—संगोष्ठी में निष्कर्ष के रूप में स्वीकृत कुछ सांस्कृतिक जीवन - मूल्य इस प्रकार हैं—

(क) ज्वलितं तु क्षणं श्रेयः न तु धूमायितं चिरम्।

अर्थात् प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी जीवन क्षण-भर का भी श्रेष्ठ है, धुएँ की तरह निरन्तर सुलगते रहकर लम्बे काल तक जीना निस्सार है।

(ख) जीवन का महत्व सदाचार और पावनता में है।

(ग) अन्याय को सहना, अन्याय करने से अधिक पापकारी है।

(घ) तप, त्याग और सत्य जीवन के स्तम्भ हैं।

(ङ) अर्थ का संग्रह, दान के लिए होना चाहिए।

८—राजनीति इस समय छल का पर्याय बन गयी है। इस छल की राजनीति ने आज राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश पा लिया है, जिस कारण स्वार्थ, प्रपञ्च एवं विघटन की प्रवृत्ति सर्वत्र व्याप्त है। यह ठीक है कि राजनीतिक-मूल्य अन्य जीवन-मूल्यों से कुछ विशिष्ट होते हैं, उसमें राष्ट्र की रक्षा के लिए कूटनीति का आचरण किया जा सकता है, किन्तु राजनीति का अर्थ छल नहीं है। राजनैतिक-मूल्य भी सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और अस्तेय पर आश्रित होने चाहियें। इसी में सबका हित है।

९— कुछ चिन्तकों का विचार है कि राजनीतिक-मूल्यों में धर्म का समन्वय किया जाना चाहिये। राजनीति और धर्म ये दो पृथक्-पृथक् तत्व हैं। राजनीति मं धर्म का प्रवेश श्रेयस्कर हो सकता है, किन्तु धर्म में राजनीति का प्रवेश वर्जित है।

१०-जब हम नैतिक मूल्यों के निर्धारण की बात करते हैं तो वैदिक आचार-संहिता सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होती है। परन्तु वेदों के अथ साम्प्रदायिक न होकर वैज्ञानिक होने चाहिएँ। उन अर्थों पर किसी सम्प्रदाय-विशेष का प्रभाव नहीं होना चाहिए। हम अपने प्राचीन नैतिक मूल्यों को भुला बैठे हैं। इसी कारण आज मानसिक-तनाव, असन्तोष, पारिवारिक-कलह, यौन-विकृति तथा विक्षिप्तता में वृद्धि हुई है। यदि हम उन्हीं पुरातन-नैतिक-मूल्यों को स्वीकार कर लें, तो व्यक्ति और समाज की समस्त कुण्ठायें और तनाव समाप्त हो जायें।

११ – भारतीय आचार-संहिता में नैतिक-मूल्यों का निर्धारण करते समय, व्यवहार के किसी भी पहलू की उपेक्षा नहीं की गई है। जहाँ एक ओर यह कहा गया है कि "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" अर्थात् किसी प्राणी की हिंसा न करें, तो वहाँ दूसरी ओर यह भी निर्देश "आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्", आततायी को देखते ही मार देना चाहिये। परद्रव्य को लोष्ठ और परनारी को मातृवत् समझना भारतीय नीति की रीति सर्वथा निर्दोष है। प्रीतिपूर्वक और धर्मानुसार व्यवहार ही जीवन का आदर्श है। इस सम्मेलन की संस्तुति के अनुसार वैदिक-नैतिक-मूल्य शाश्वत सत्य हैं।

१२—जीवन-मूल्यों के परिवर्तन और परिवर्धन पर संचार-साधनों ने भी अपना प्रभाव डाला है। दूरदर्शन, रेडियो, समाचार-पत्र, डाक-व्यवस्था, रेल-सेवा, सड़क-परिवहन, वायुयान आदि संचार-साधन अब जीव के अपरिहार्य अंग बन गये हैं। जीवन को बनाने और समझने में इनकी भी भूमिका है। विश्व का बहुविध ज्ञान प्राप्त करने में जहाँ इनका कल्याणकारी प्रयोग है, वहाँ इनके दुरुपयोग के परिणाम बहुत भयंकर सिद्ध हो सकते हैं। इस सम्मेलन की संस्तुति है कि संचार-तन्त्र को लोकोपयोगी एवं आदर्शात्मक बनाया जाये, जिससे जीवन-मूल्यों में विकासोन्मुख प्रवत्ति का सर्जन हो सके।

१३—बालक के सुकोमल मन पर परिवेश का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। माता-पिता और आचाय का, जैसी विचारधारा, जैसा आहार-व्यवहार और जैसा क्रियाकलाप होगा उसी का विस्तार बालक में होगा। विद्वानों की संस्तुति है कि बालक के निर्माण के उचित और उन्नत परिवेश का निर्माण किया जाये।

१४—बालकों के जीवन का मूल्य-निर्धारण बहुत कुछ पुस्तकों पर भी निर्भर करता है। उनके लिए महापुरुषों के जीवन-चरित्र, प्रभु-भक्तिपूर्ण साहित्य तथा सामान्य-ज्ञान वर्धन करने वाली पुस्तकें सुलभ करानी चाहिएँ। जिस प्रकार नवीन पात्र में लगा हुआ चिन्ह मिटता नहीं, उसी प्रकार बाल्यावस्था में पड़ा हुआ सस्कार बालक के मन पर चिरस्थायी होता है।

१५—यह तो हम देखते ही रहे हैं कि सामाजिक दबावों के कारण जीवन-मूल्य बड़ी द्रुत गति से बदल रहे हैं। जीवन-मूल्यों के ऐसे परिवर्तनों से कोई सुखद परिणाम निकला हो, ऐसी बात नहीं है। समस्यायें बढ़ी हैं, कष्ट बढ़ा है, मानसिक तनाव बढ़े हैं। ऐसे काल में प्राध्यापकों का क्या कर्त्तव्य है, वह एक विचारणीय प्रश्न है।

आमन्त्रित विद्वानों की संस्तुति है कि जीवन-मूल्यों के अनर्थकारी परिवर्तन की धारा को यदि कोई रोक सकता है, तो वह अध्यापक-वर्ग ही है। गुरु ही प्रकाश दिखला सकता है। उनकी भूमिका यह होनी चाहिए कि पहले वह स्वयं अपने गौरव और गरिमा को पहचानें तथा अपने आचरण में स्वस्थ-जीवन-मूल्यों को प्रतिपादित करें। तदनन्दर ही वे अपने शिष्यों को स्वस्थ प्रेरणा दे सकेंगे।

गुरुजन का यह नैतिक दायित्व है कि वह अपने परिवेश के लोगों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलें, उन्हें बतायें कि श्वास-प्रक्रिया मात्र का चलते रहना ही जीवन नहीं है। जीवन नाम है उस ज्वलन्त इच्छा का जो व्यक्ति को निरन्तर आत्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर करे।

१६—(क) शिक्षा, समाज-कल्याण एवं संस्कृति मन्त्रालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली, उक्त समस्या को अपने प्रमुख कार्यक्रमों में सम्मिलत करें, ताकि मानवीय-मूल्यों को संरक्षण मिले और समाज की उक्त समस्या का समाधान ढूंढ़ा जा सके।

(ख) यह भी संस्तुति की जाती है कि इस विकट समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए विश्वविद्यालय, अन्य शिक्षण-संस्थायें अपने यहाँ पर वर्ष में तीन-चार बार राष्ट्रिय, क्षेत्रीय, स्थानीय संगोष्ठियाँ आयोजित करें, ताकि मानवीय-मूल्यों के ह्रास को रोका जा सके।

———

गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय के विकासार्थ
दानकर्त्ताओं की सूची

१.	श्री विश्वनाथ मल्होत्रा, दिल्ली	५०१—००
२.	श्रीमती सत्या मल्होत्रा, दिल्ली	२५०—००
३.	श्री सुदर्शन बजाज, दिल्ली	५००—००
४.	श्री वीरेन्द्र जी (कुलाधिपति), जालन्धर	५०१—००
५.	श्री विजय शास्त्री, योगी फार्मेसी, कनखल	२५०—००
६.	श्री गोविन्दराम भुटानी	१०१—००
७.	श्री लखीराम, दिल्ली	१०१—००
८.	श्रीमती शिवराजवती, बम्बई	५०१—००
९.	श्रीमती सीतादेवी, दीनानाथ ट्रस्ट	२६००—००
१०.	श्रीमती सन्तोष सेठ	५१—००
११.	श्रीमती ईश तथा श्री आनन्दप्रकाश सचदेव, बम्बई	२१—००
१२.	श्री नरेन्द्र जुनेजा	२५१—००
१३.	श्रीमती वेदवती चोपड़ा	२०२—००
१४.	श्री वेदप्रकाश पुरी	१०१—००
१५.	श्री प्रकाश अरोरा	५१—००
१६.	श्रीमती पुष्पा भण्डारी	१०१—००
१७.	श्रीमती प्रेमलता महता	१०१—००
१८.	श्रीमती विद्यावती भण्डारी	१०१—००
१९.	श्रीमती कुलदीप जुनेजा	२५१—००
२०.	कैप्टन देव रतन	२५१—००
२१.	श्री शिशुपाल	१००—००
२२.	श्री शिवलाल सिंघवानी	१०१—००
२३.	श्रीमती चन्द्रवती राय	१०१—००
२४.	श्री ईश्वर सचदेव	२१—००
२५.	श्री विजलानी	५००—००
२६.	श्रीमती शकुन्तला देवी	५१—००
२७.	शक्ति कन्स्ट्रक्शन कम्पनी, बम्बई	१०००—००

२८.	श्री मणिलाल भाई कान्तिभाई पटेल	१५१—००
२९.	श्री पाटकर शेट, कल्याण	२५—००
३०.	श्री वेंकटेश्वर बाला जी, ठाणे	५००—००
३१.	श्री धर्मवीर गुलाटी	५०१—००
३२.	आर्यसमाज, घाटकोपर-बम्बई	१२००—००
३३.	विलियम इण्डस्ट्रीज़	२५०—००
३४.	एल० वी० पटेल एण्ड कम्पनी, घाटकोपर-बम्बई	५००—००
३५.	स्वर्गीय श्री हरीशचन्द्र द्वारा श्री मनीषदेव, सुजातपुर	४०—००
३६.	श्री विमल सूद, सान्ताक्रुज़-बम्बई	१२००—००
३७.	इक्नोमिक ट्रान्सपोर्ट, बम्बई	२५०—००
३८.	श्री प्रकाशचन्द्र, सान्ताक्रुज़-बम्बई	२५०—००
३९.	श्रीमती विमलादेवी मरवाह, बम्बई	१०१—००
४०.	श्री सुर्दशन वासुदेव, बम्बई	११—००
४१.	श्री सुभाष पाल	५१—००
४२.	श्रीमती मधु थापर	२१—००
४३.	श्री विजलानी	५००—००
४४.	आर्यसमाज, सान्ताक्रुज़-बम्बई	१२००—००
४५.	श्री एस. डी. शर्मा, स्वामीनगर, नयी दिल्ली	५०१—००
४६.	श्रीमती सीतादेवी, दीनानाथ ट्रस्ट	१०१—००
	कुल योगः	१६०१४—००

———

गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय के विकासार्थ
दानकर्त्ताओं की सूची

१.	श्री विश्वनाथ मल्होत्रा, दिल्ली	५०१—००
२.	श्रीमती सत्या मल्होत्रा, दिल्ली	२५० —००
३.	श्री सुदर्शन बजाज, दिल्ली	५००—००
४.	श्री वीरेन्द्र जी (कुलाधिपति), जालन्धर	५०१—००
५.	श्री विजय शास्त्री, योगी फार्मेसी, कनखल	२५० —००
६.	श्री गोविन्दराम भुटानी	१०१—००
७.	श्री लखीराम, दिल्ली	१०१—००
८.	श्रीमती शिवराजवती, बम्बई	५०१—००
९.	श्रीमती सीतादेवी, दीनानाथ ट्रस्ट	२६००—००
१०.	श्रीमती सन्तोष सेठ	५१—००
११.	श्रीमती ईश तथा श्री आनन्दप्रकाश सचदेव, बम्बई	२१—००
१२.	श्री नरेन्द्र जुनेजा	२५१—००
१३.	श्रीमती वेदवती चोपड़ा	२०२—००
१४.	श्री वेदप्रकाश पुरी	१०१—००
१५.	श्री प्रकाश अरोरा	५१—००
१६.	श्रीमती पुष्पा भण्डारी	१०१—००
१७.	श्रीमती प्रेमलता महता	१०१—००
१८.	श्रीमती विद्यावती भण्डारी	१०१—००
१९.	श्रीमती कुलदीप जुनेजा	२५१— ००
२०.	कैप्टन देव रतन	२५१—००
२१.	श्री शिशुपाल	१००—००
२२.	श्री शिवलाल सिंघवानी	१०१—००
२३.	श्रीमती चन्द्रवती राय	१०१—००
२४.	श्री ईश्वर सचदेव	२१—००
२५.	श्री विजलानी	५००— ००
२६.	श्रीमती शकुन्तला देवी	५१—००
२७.	शक्ति कन्स्ट्रक्शन कम्पनी, बम्बई	१०००—००

२८.	श्री मणिलाल भाई कान्तिभाई पटेल	१५१—००
२९.	श्री पाटकर शेट, कल्याण	२५—००
३०.	श्री वेंकटेश्वर बाला जी, ठाणे	५००—००
३१.	श्री धर्मवीर गुलाटी	५०१—००
३२.	आर्यसमाज, घाटकोपर-बम्बई	१२००—००
३३.	विलियम इण्डस्ट्रीज़	२५०—००
३४.	एल० वी० पटेल एण्ड कम्पनी, घाटकोपर-बम्बई	५००—००
३५.	स्वर्गीय श्री हरीशचन्द्र द्वारा श्री मनीषदेव, सुजातपुर	४०—००
३६.	श्री विमल सूद, सान्ताक्रुज़-बम्बई	१२००—००
३७.	इक्नोमिक ट्रान्सपोर्ट, बम्बई	२५०—००
३८.	श्री प्रकाशचन्द्र, सान्ताक्रुज़-बम्बई	२५०—००
३९.	श्रीमती विमलादेवी मरवाह, बम्बई	१०१—००
४०.	श्री सुर्दशन वासुदेव, बम्बई	११—००
४१.	श्री सुभाष पाल	५१—००
४२.	श्रीमती मधु थापर	२१—००
४३.	श्री विजलानी	५००—००
४४.	आर्यसमाज, सान्ताक्रुज़-बम्बई	१२००—००
४५.	श्री एस. डी. शर्मा, स्वामीनगर, नयी दिल्ली	५०१—००
४६.	श्रीमती सीतादेवी, दीनानाथ ट्रस्ट	१०१—००
	कुल योगः	१६०१४—००

जनवरी '८४ से मई '८४ तक पुस्तकालय की विशेष उपलब्धियाँ

प्रस्तुतकर्त्ता—जगदीशप्रसाद विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष

१. जनवरी ८४ से मई ८४ तक की अवधि में कुल ६९९ नई पुस्तकों को मंगवाया गया।

२. उक्त अवधि में पुस्तकालय में गुरुकुल के प्रकाशनों का एवं गुरुकुल के स्नातकों एवं प्राध्यापकों के प्रकाशनों का विशेष कक्ष बनाया गया तथा इस कक्ष में संग्रहीत पुस्तकों की फरवरी ८३ में प्रदर्शनी भी लगाई गई। जिसे मान्यवर कुलाधिपति जी एवं परिद्रष्टा महोदय ने गहरी रुचि से देखा।

३. पुस्तकालय की लगभग १००० पत्रिकाओं की जिल्दबन्दी इसी अवधि के दौरान कराई गयी। ये पत्रिकायें जिल्दबंदी हेतु पिछले अनेक वर्षों से प्रतिक्षित थी। इसी प्रकार २५०० पुस्तकों की जिल्दबंदी भी कराई गई।

४. पुस्तकालय में उपलब्ध १९वीं शताब्दी की दुर्लभ पुस्तकों का संग्रह बनाया गया। उपलब्ध पांडुलिपियों का केटेलाग तैयार किया गया।

५. प्रतियोगितात्मक परीक्षा पुस्तक संग्रह की लगभग २०० पुस्तकें मंगवाई गई।

६. यू० जी० सी० की विजिटिंग टीम ने दिनांक ६-३-८४ को पुस्तकालय का अवलोकन किया तथा पुस्तकालय के विभिन्न संग्रहों से वे विशेष रूप से प्रभावित हुए।

७. पुस्तकालय की नियमित बैठकें दिनांक २-१-८४ एवं दिनांक १२-५-८४ को सम्पन्न की गई जिसमें पिछले वर्षों के अनेक उलझनपूर्ण मामलों पर निर्णय लिया गया।

८. सर्वप्रथम विभिन्न विषयों की विदेशी महत्त्वपूर्ण पत्रिकायें मंगवाने का कार्य इस अवधि में किया गया। लगभग २५ विदेशी पत्रिकाओं के आदेश भेजे गये।

९. यू०जी०सी० विजिटिंग टीम ने पुस्तकालय के लिए ४.७५ लाख रुपये का विशेष अनुदान स्वीकृत किया जो पहले स्वीकृत ५ लाख रुपये की राशि से अतिरिक्त है तथा इस अनुदान से व्यापक रूप से पुस्तकालय के संग्रह को नवीनतम बनाया जा रहा है।

१०. स्टाक प्रमाणीकरण का कार्य इस अवधि में शुरु कराया गया है।

११. स्वर्गीय धर्मदत्त जी वैद्य के जीवनपर्यन्त २०० बहुमूल्य पुस्तकों के संग्रह को पुस्तकालय हेतु उनके परिवार से भेंटस्वरूप प्राप्त किया गया।

———

गुरुकुल-पत्रिका

कार्तिक-माघ, २०४१
नवम्बर-दिसम्बर, १९८४
वर्ष : ३६
अंक : ११-१२
पूर्णांक २६२-६३

गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालयस्य मासिकी पत्रिका

संरक्षक

श्री बलभद्रकुमार हूजा
कुलपति

श्री रामप्रसाद वेदालंकार
उप-कुलपति

सम्पादक-मण्डल

अध्यक्ष : सम्पादक-मण्डल	—	पं० सत्यकाम विद्यालंकार आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय
सम्पादक	—	डॉ० मानसिंह प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
सह-सम्पादक	—	डॉ० राकेश शास्त्री प्रवक्ता, संस्कृत-विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
छात्र-सम्पादक	—	गुरुप्रसाद उपाध्याय एम०ए० (संस्कृत), द्वितीय वर्ष गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मूल्य— १२ रुपये वार्षिक
इस अंक का मूल्य— २ रुपये

प्रकाशक
वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मुद्रक—जैना प्रिन्टर्स, ज्वालापुर

विषय–सूची

पृष्ठ संख्या

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचारों के लिए स्वयं लेखक ही पूर्णतः उत्तरदायी हैं।

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल–कांगड़ी–विश्वविद्यालयस्य मासिकी पत्रिका]

कार्त्तिक-माघ, २०४१ | अङ्क : ११–१२
नवम्बर-दिसम्बर, १९८४ | वर्ष ३६ | पूर्णाङ्क : ३६२-६३

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।।
(ऋग्वेद १.१८९.१)

हम उस ज्योतिर्मय प्रभु की आनन्दविभोर हृदय से निशिदिन वन्दना करते हैं जो स्वयं आनन्दमय है, अतिशय प्रेममय है, मधुर है और जिसकी प्रज्वलित ज्योतिशिखा तन-मन को पवित्र करने वाली है ।

हम बार-बार प्रभुद्वार तुम्हारे आकर तुमसे विनय करें ।
ऐसी निर्मल बुद्धि हमें दो, अविचल श्रद्धा भक्ति हमें दो ।।
जिनसे इन उलझी राहों में, कभी भटक कर नहिं उलझें ।।
आप हमारे अन्तर्यामी, हो सर्वज्ञ जगत के स्वामी ।
पथ-दर्शक हो, ज्योति आपकी, छल-बल से हम दूर रहें ।।
हमें ज्ञान-धन दो हे स्वामी, रहें आपके प्रभु अनुगामी ।
करें सदा कल्याण जगत का, प्रभु-चरणों में सदा रहें ।।

दयानन्दः स्वामी जयति भुवने भास्करमणिः

—केशवप्रसाद उपाध्याय

(१)

महोदारो विद्वान् श्रुतिमहितसाहित्यसुहितः,
महामान्यो धन्यो निखिलदिशि पुण्यस्मृतिपथि ।
महत्त्वं वेदानां प्रकटितसमेषामपि पुनः
यथा दिव्यः सूर्यः शशिनमनु भात्यन्तरुचिरः ।।

(२)

अयं पुण्याकाशो विविधमतमान्यस्त्रिभुवने,
अयं पुण्यादर्शो निखिलगुणगण्येषु विदितः ।
अयं पुण्यश्लोकोऽखिलपदनिकुञ्जेऽपि गणितः,
अयं पुण्यानन्दो विदितनिगमानन्दसहितः ।।

(३)

दयायुक्तो धन्यो क्षितितलवदान्यो खलु महान्,
प्रकर्षो पुण्यात्मा सकलकुलकार्येषु महितः ।
सदाऽऽनन्दो यस्मिन् विलसति सदा पुण्यहृदये,
दयानन्दो वन्द्यो न खलु महसां पुण्यसमये ।।

(४)

अयं लोकाऽऽलोकः सुरवरमहेन्द्रेष्वपिहितः,
विवेको बुद्धीनां विपदपदप्राप्तावभयदः ।
स्वधर्मभ्रष्टानां सुविदितबुधानामपि तथा,
समुद्धता योऽसौ सकलजगतामल्पसमये ।।

(५)

प्रभातो वेदानां धवलितदिगन्तो दिनकरः,
अयं धन्यो शिष्यो जयति विरजानन्द-हृदयः ।
प्रसिद्धाः शिष्याश्च सकलभुवने भान्ति रुचिराः,
दयानन्दः स्वामी जयति भुवने भास्करमणिः ।।

नायकेभ्योऽतिरिच्यन्ते कालिदासस्य नायिकाः

—आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री

संसारेऽस्मिन् द्विधा सृष्टिर्दृक्पथमवतरति । प्रथमा खलु विभोर्विभुत्वापन्ना पञ्चभूतसमुद्भूता पुरोवर्तिनी निखिलजनदृश्यमाणा, द्वितीया खलु निर्गतकालुष्यैः कैश्चिदेव सहृदयपदवाच्यैरलोकसामान्यैर्जनैः श्रूयमाणा कविजननिर्मिता च । प्रभुनिर्मितायां सृष्टौ किमपि वस्तु कार्यकारणपरम्परावनद्धं न स्वकीयं रूपं जहाति परं कविकृतौ वस्तुनः स्वरूपं किमपि वैलक्षण्यावहमेव । लोके यन्निन्द्यं वस्तु भवति, काव्यगतं तदेव वस्तु कविप्रतिभावैभवेन स्तुत्यं जायते । अत एव कविवरस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपादयन् धनञ्जयो दशरूपके नूनमनवद्यमेवाह—

रम्यं जुगुप्सितमुदारमथापि नीचमु—
ग्रं प्रसादिगहनं विकृतञ्च वस्तु ।
यद्वाप्यवस्तु कविभावकभाव्यमानं
तन्नास्ति यन्न रसभावमुपैति लोके ॥

कवयस्तु लोके बहवो हि दृश्यन्ते परं न ते सर्वे काव्यकरणापेक्षितहेतुत्रयापन्नाः सन्ति । केचन विरला एव कवीश्वरास्तथाविधा भवन्ति ये न केवलं सुहृदामपितु द्विषामपि मनांसि स्वकाव्यकौशलेन प्रसभं हरन्ति । भारविना समुचितमेवोदीरितम्—

विविक्तवर्णाभरणासुखश्रुतिः ।
प्रसादयन्ति हृदयान्यपि द्विषाम् ।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां
प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥

अतः केचन एवोद्बुद्धसंस्काराः, सरस्वतीसमाराधनदत्तमनाः, नैकविधप्रतिभाव्युत्पत्त्यादिगुणगणालकृताः निखिलनिगमागमपयोनिधिमथनमन्दरायमाणमतयः कवीश्वराश्चिरं जगति जीवन्ति यशःकायेन युगे युगे । तेष्वेवंविधेषु कवीश्वरेषु महाकविकालिदासः कवितावनिताविलासः सुतरां सहृदयानां हृदये विलसति ।

कालिदासेन स्वप्रतिभाप्रभावेण तासां सर्वासां नरीणां महत्त्वं चरित्रञ्च नितरां पवित्रीकृतं यासां चरित्रं महाभारतादिग्रन्थेषु पांसुलितमेवासीत्। कालिदासेन नरीणां महत्त्वं वेदादीनामधिगमेन सम्यक् ज्ञातमासीत्। अत एव पुरुषापेक्षया सर्वत्रैव नायिकाश्रेणीमुपगतानां नरीणां जीवनं तेन प्रेरणाप्रदया रीत्या सुष्ठु वर्णितम्।

काव्यनाटकादिषु कथावस्तु त्रिधा नियोज्यते। क्वचिद् इतिहासादिभ्यः समुद्धृतस्य प्रख्यातवस्तुनो विनियोजनं क्वचित् कविकल्पितस्योत्पाद्यस्य वस्तुनो योजनं क्वचिच्चोभयविधवस्तुयोजनं दृश्यते। कवेर्नायकस्य रसस्य वा आनुकूल्यं कस्मिन् वस्तुनि विद्यते एतत्तु कविजनचिन्तनीयम्। सर्वैरेव लाक्षणिकैर्विषयेऽस्मिन् कवयः स्वैरगतिकाः कृताः। कविः स्वकाव्ये रसापेक्षया प्रख्यातमितिवृत्तं खण्डतयाखण्डतया वा गृह्णातीति सर्वं कविजनाधीनमेव। साहित्यदर्पणकारेणाचार्यविश्वनाथेन वस्तुगतहानोपादानविषये समीचीनमेवोक्तम्।

यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा,
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ॥ (६।५०)
अविरुद्धं तु यद् वृत्तं रसादिव्यक्तयेऽप्यधिकम्।
तदप्यन्यथयेद्धीमान्न वदेद् वा कदाचन। (६।१२१)

कालिदासेन रसानुकूलं पात्रानुकूलञ्च वस्तु स्वीकृतम्। प्रतिकूलस्य परित्यागो वा कृतः स्वप्रतिभयाऽन्यथाविन्यासो वा कृतः एवंप्रकारेण कालिदासस्य सर्वत्रापि वस्तुनो हानोपादानविषये प्रयासः सर्वथैवौचित्यावहोऽस्ति। तत्रापि च नायिकानां वस्तुविषये कविरतीव सावहितो दृश्यते। सत्यमेव कविकुलगुरुणा सरस्वतीवरदपुत्रेण कालिदासेनानेन स्वकीयासु सर्वास्वपि कृतिषु नायिकानां चरित्रगीतं भावगर्भैः, श्रद्धोत्थितैः शब्दजातैरुच्चैरुद्गीतम्। कालिदासस्य नायिकाः सर्वत्रापि नारीणां चरित्रपवित्रतामातन्वन्ति, नारीणां धर्ममुद्भासयन्ति पातिव्रत्यं प्रतिपलं पालयन्ति वात्सल्यभावमुद्भावयन्ति, पितरौ पूजयन्ति, गुरुनर्चन्ति, मान्यान् मानयन्ति, द्वेष्यान् द्विषन्ति च। परं तस्य नायकाश्चरित्रस्य परां कोटिमाटोकमाना न दृश्यन्ते, ते तु काममूर्त्तय इव कामं कामयन्ते, कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकविरहितास्ते प्रतिपदं राजपरम्पराः प्रदूषयन्ति। विद्वज्जनाः प्रथमं राजानं दुष्यन्तमेव पश्यन्तु। पूर्वं तु दुष्यन्तः स्वच्छन्दगतिकं मृगमनुसरन् स्मृतिपरम्पराविरुद्धं, वेदादेशविरुद्धञ्च मृगयाव्यापारमचिन्तयत्। महाराजेन मनुना मनुस्मृतौ मृगयाव्यापारस्य निन्दनं कृतम्। यथा—

मृगयाक्षदिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥

एते सर्वेऽपि मृगयादयो दोषाः सर्वथा राज्ञापहेयाः परं दुष्यन्ते सर्वेऽपि दोषा आसन् । पुनश्च दुष्यन्तः सर्वपूज्यस्य महर्षेः कण्वस्य तपोवनं प्राविशत् तपोवनं प्रविष्टोऽसौ तत्र तपस्तप्तुं नारभद् अपितु मृगशावैः सह संवर्धितां, परोक्षमन्मथां, सखीसहक्रीडनपरां, स्वभावमधुरां, निसर्गसुन्दरीं प्रकृतिपेलवां मुनिकन्यकां शकुन्तलां दर्शं दर्शं तत्सौन्दर्याकृष्टमना विषगर्भैः भावशून्यैः, कृत्रिमैर्वचनडम्बरैस्तामसौ तपश्चरन्तीं दुर्जनोचितया धिया अबलामतिसन्दधे । पुनश्च यदा गौतमी कण्वाज्ञया दुष्यन्तान्तिके शकुन्तलामादाय गता तदानेन राजर्षिपदं कलङ्कयता, क्षत्रियबन्धुना, प्रजापतिना दुष्यन्तेन सा करुणामूर्तिः शकुन्तला प्रथमं तु सावहेलं "कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः" इति निगद्य निराकृता पुनश्च —

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।
कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च ॥

अशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥

(अ०शा० ५।२१।२२)

इत्यादिभिर्वाक्यजातैः परिणयविधिं निरादृत्य सारोपं सा शकुन्तला स्वगृहात्प्रव्राजिता । सा तु वराकी केवलं स्वभाग्यानि निन्दन्ती, करुणं क्रन्दन्ती किमपि निन्द्यमनाचरन्ती, निजहृदयेनैव दुःखभारमुद्वहन्ती, क्वापि कथमपि रमणवसतिं विहाय चक्षुषामगोचरतां गता । अहो भृशं निरादृतयापि शकुन्तलया मनागपि स्वकर्त्तव्यं न परित्यक्तम् । सा तु पुनरपि मारीचाश्रमपदमुपेत्य वैदिक-परम्परानुसारं स्वपतिं दुष्यन्तमेव मनसा स्मरन्ती प्रोषितपतिकायाः सर्वान् धर्मान् पालयन्ती भूयस्तपश्चर्यां कर्त्तुमारभत् । प्रोषितपतिकया वियोगकाले किं किं त्याज्यं भवतीत्यस्मिन् विषये याज्ञवल्क्यमहाभागैरेकस्मिन्पद्ये निर्देशः कृतः । यथा-

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥

(या० स्मृ० १।८४)

शकुन्तलया विरहकाले सकला मर्यादा परिपालिता । अत एव शाकुन्तलस्य सप्तमाङ्के कालिदासः स्वयं दुष्यन्तमुखेन शकुन्तलां प्रशंसापदवीमारोपयन् प्राह–

वसने परिधूसरे वसाना
नियमक्षाममुखी धृतैकवेणी ।

अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला-
मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥

(अभि० शा० ७।२१)

प्रस्तुतं पद्यं निगद्य दुष्यन्तेनान्ते स्वयमेवात्मनो निष्ठुरत्वं शकुन्तलाया मार्दवञ्च स्वीकृतम् । मालविकाग्निमित्रे नाटके मालविकायाः प्रणयतां पटुतां, दक्षतां, यथायथं वर्णयता कविना तच्चरित्रमतीव चारुतया प्रदर्शितम् । अग्निमित्रस्य पूर्वतमा राजमहिषी धारिणी स्वयमेव मालविकां परिणेतुमग्निमित्रं प्रेरितवती । प्रायशः कापि नारी सापत्न्यभावं न सहते परं धारिण्या मालविका सापत्न्येन स्वीकृता सत्कृता च । विक्रमोर्वशीये नाटके कविनोर्वश्याश्चरित्रमतीवा-नुकरणीयं कृतम् । सर्वभूतलजनकाम्यं स्वर्गं विहाय स्वत्रातारं पुरुरवसं पतिरूपेण स्वीकृत्य स्वर्गवाससुखं च परित्यज्य मर्त्यलोकवसतिं सा स्वीचक्रे । संसारे कापि माता पुत्रविरहं न कामयते सा सर्वं दत्त्वापि पुत्रमुखदर्शनसुखमिच्छति परमुर्वश्या पतिप्रेमापन्नहृदयया कदापि पत्या सह पुत्रो न विलोकितः । कुमारसम्भवे काव्ये पर्वतराजपुत्री पार्वती शंकरमधिगन्तुं "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इति मन्त्रानुसारं ब्रह्मचर्यं चरन्ती कां कां तपश्चर्यां न चक्रे ।

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः
पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ।
अथोपयन्तारमलं समाधिना
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥

(कु० सं० ५।४५)

इत्यादिभिः शब्दैः तपसो वार्यमाणापि पार्वती न तपसि विरतिमाततान । अपितु—

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः ।
तदप्यपाकीर्णमतो प्रियम्वदां
वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥

(कु० सं० ५।२८)

इत्यनुसारं तया तपसः परां काष्ठामुपेत्य महती ख्यातिर्लब्धा । पतिप्राप्त्यर्थं कियत्तपस्तप्यते विषयेऽस्मिन् पार्वत्या सर्वमुपदिष्टमपांसुलानां धुरि कीर्तनीयानां नारीणां कृते । महाकविना वाल्मीकिना स्मृतिकारैश्च केचन महान्त उपदेशा पतिव्रतानां कृते नारीजीवनं सफलयितुं प्रदत्ताः । यथा—

नगरस्थो वा वनस्थो वा शुभो वा यदि वाऽशुभः ।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्त्ता तासां लोका महोदयः ॥

दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ।।

(वा०रा० अयो० ११७।२३-२४)

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।।

(मनु० ३।६०)

उक्तोपदेशानुसारमेव पार्वत्या जीवन परिलक्ष्यते । यदा शंकरो ब्रह्मचारित्वेनात्मानमाच्छाद्य तां परीक्षितुं शंकराय बहूनपशब्दान् प्रयुनक्ति तदा पार्वत्येकेनैव श्लोकेन पतिविषयिकीं स्वकीयां भक्तिं द्रढयति । यथा—

निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः
पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः ।
न केवलं यो महतोऽपभाषते ।
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।।

(कु०सं० ५।८३)

रघुवंशस्य प्रथमे सर्गे कालिदासेन सुदक्षिणाया विषये—

तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा ।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा ।।

(रघु० १।३१)

इत्युदीर्य तस्या धर्मप्रधानं जीवनं प्रदर्शितम् । यदा नन्दिनीसेवार्थं राजा तामनुसरति तदा सुदक्षिणा दिलीपमनुसरति । दिलीपमनुसरन्त्याः सुदक्षिणायाश्चित्रणं सर्वासां नारीणां जीवनमुल्लासयति । यथा—

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुम-
पांसुलानां धुरि कीर्तनीया ।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी
श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।।

(रघु० २।२)

महाराजेनाजेन दिवङ्गतायामिन्दुमत्यां विलापं प्रकुर्वाणेन तस्या ये गुणाः समुद्गीतास्ते सर्वेऽपि पतिव्रतपरायणानां नारीणामेव सन्ति । यथा—

गृहिणी सचिवः सखी मिथः, प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना, हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ।।

(रघु०८।६७)

अजवर्णिता इमे गुणा अन्यत्रापि केनापि विदुषा वर्णिताः सन्ति । यथा—

कार्येषु मंत्री करणेषु दासी, भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा ।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री षाड्गुण्यमेतद्धि पतिव्रतानाम् ।।

एवंप्रकारेण कालिदासस्य सर्वा अपि नार्यः स्वधर्मनिरताः सन्ति । सीतायाश्चरित्रवर्णने कालिदासेन किमपि विशिष्टमेव निर्दिष्टम् । यदा रघुवंशस्य चतुर्दशे सर्गे रामः सीतां परित्यजति तदा सीता मनागपि रामाय न कुप्यति सा तु स्वकर्मदोषमेव परित्यागकारणं मन्यते । सीतया निगदितं तत्पद्यं कस्य सहृदयस्य हृदयं न द्रवीकरोति । यथा—

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जननान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ।।

(रघु० १४।६२)

यदा लक्ष्मणस्तां सीतां वने विहाय प्रतिनिवृत्तो भवति तदा कतिपयैः शब्दैरेव रामाय सन्देशं प्रेषयति । तस्मिन् सन्देशे क्वचिदपि श्रुतिकटुशब्दानां प्रयोगो न दृश्यते । यथा—

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ।।

(रघु० १४।६७)

सीता पतिसम्बन्धमेकजन्मसम्भूतं न मन्यते, सा तु जन्मान्तरादागतं दाम्पत्यसम्बन्धं स्वीकरोति । अतएव तया भावनेयमेकस्मिन् श्लोके सुतरां प्रकटिता । भारतीयपरम्परापीयमेवास्ति यत् शाश्वतिको दाम्पत्यभावः । यथा—

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ।।

(रघु० १४।६६)

या सीता परित्यागिनं रामं न निनिन्द, प्रतिक्षणं तमेव सस्मार जन्मान्तरेऽपि तमेवाकामयत् तमेव देवदेवममन्यत् तामेव सीतां राम इन्द्रियार्थां मत्वा परित्यजति यथा—

निश्चित्य चानन्यनिवृत्तिवाच्यं त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छत् ।
अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः ।।

(रघु० १४।३५)

कालिदासेन रामापेक्षया सीताश्चरित्रोत्थाने स्वता प्रकटिता। निश्चयरूपेण वक्तुं शक्यते यत् कालिदास्य गुणैः नायिकाः स्नेहकारुण्यदाक्षिण्यादिगुणैः सदालङ्कृताः सन्ति । तस्य नायिकाभिः क्वचिदपि मर्यादा नोल्लंघिता, शास्त्रादेशो न निराकृतः वंशपरम्परा च न खण्डिता । नूनं कालिदासस्य सर्वा अपि नार्यः सदैव वन्दनीयाः । मनुनापि चोक्तम्—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥
(मनु० ३।५६)

———

अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता ।
आपदाशङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥
(वा०रा० ३।२४।११)

कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह आने वाली आपत्तियों की आशंका करता हुआ उनके आने से पहले ही उनका प्रतिकार करे।

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् ।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥
(वा०रा० ४।१।१२१)

आर्य ! उत्साह में बड़ा बल होता है, उत्साह से बढ़कर दूसरा बल नहीं है; संसार में उत्साहसम्पन्न मनुष्य के लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिमच्छति ॥
(वा०रा० ६।२।६)

उत्साहहीन, दीन और शोक से व्याकुल व्यक्ति के सब काम बिगड़ जाते है और वह स्वयं कष्ट को प्राप्त होता है ।

★

वेदों में राष्ट्रिय भावना*

—मानसिंह

वैदिक काल में समाज के राजनीतिक विकास की पांच इकाईयाँ थीं—कुल, ग्राम, विश्; जन तथा जनपद अथवा राष्ट्र। सामाजिक संगठन की मूल इकाई कुल थी, जिसके अधिपति पिता अथवा ज्येष्ठ भ्राता को 'कुलप' कहा जाता था। कुल अविभक्त परिवार था। अनेक कुलों से मिलकर ग्राम बनाता था, जिसके मुखिया को 'ग्रामीण' कहते थे। ग्रामीण जनता की रक्षा करना, उसे संगठित करना, ग्राम में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना उसके प्रमुख कर्त्तव्य होते थे। ग्रामणी की सहायता के लिए ग्राम-सभा होती थी। राजा ग्रामणी के माध्यम से ग्राम से सम्पर्क स्थापित करता था। अनेक ग्रामों से मिलकर 'विश्' बनता था, जिसके सर्वोपरि सत्ताधीश को 'विश्पति' कहा जाता था। उसका मुख्य कर्त्तव्य विश् के अन्तर्गत ग्रामों के पारस्परिक सम्बन्धों को सुव्यवस्थित रखना था। विभिन्न विशों के समुदाय को 'जन' कहा जाता था, जिसका गोप्ता अथवा रक्षक राजा होता था। राजा के अधीन जन जिस देश-विशेष में रहते थे उसे 'जनपद' कहते थे। ऐतरेय-ब्राह्मण (८।१४) में यह शब्द देश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसे ही 'राष्ट्र' भी कहा जाता था। वैदिक वाङ्मय में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग अनेकत्र किया गया है। वैदिक युग में भारतवर्ष अनेक जनपदों अथवा राष्ट्रों में विभक्त था, जो भिन्न-भिन्न राजाओं से शासित थे। गान्धार, मूजवात्, अनु, द्रुह्यु, यदु, तुर्वश, पुरु, भरत, उशीनर, वश, मत्स्य, कुरु, पंचाल, काशी, विदेह आदि ऐसे ही अनेक जनपद अथवा राष्ट्र थे।

वेदकालिक व्यक्ति के हृदय में अपने राष्ट्र अथवा मातृभूमि के प्रति अगाध आस्था एवं भक्ति थी। किसी भी राष्ट्र का निर्माण उसकी प्रजा से होता है। इसीसे आपस्तम्ब, बौधायन तथा कात्यायन ने अपने श्रौतसूत्रों में 'विश्' का अर्थ 'राष्ट्र' माना है। यही बात ऐतरेय—ब्राह्मण (८।२६) में भी मानी गई है—**"राष्ट्राणि वै विशः।"** राष्ट्र के राजा के अभिषेक का कृत्य मातृभूमि के नमस्कार से प्रारम्भ होता था—**"नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या"**..... (वाजसनेयि-संहिता ६।२२) और निर्वाचित राजा को वही मातृभूमि राज्य के रूप में बतलायी जाती थी। अभिषेक के उपरान्त राजा वर्णों, ग्रामणी, सभाओं तथा

***आकाशवाणी, शिमला से २-१-१६८० को 'अमरभारती' कार्यक्रम में प्रसारित वार्त्ता।**

समितियों के सदस्यों और रत्नियों की अधीनता स्वीकार करने से पूर्व मातृभूमि की अधीनता स्वीकार करता हुआ कहता था— "**पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मा अहं त्वाम्** (हे पृथ्वी माता ! तुम मेरी हिंसा मत करो और न मैं तुम्हारी हिंसा करूँ, शतपथ-ब्राह्मण ५।४।३।२०)। शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार पृथ्वी या राष्ट्र तथा राजा में मैत्रीभाव स्थापित हो जाता है; और न तो माता अपने पुत्र को पीड़ा पहुंचाती है और न ही पुत्र अपनी माता को—"**न हि माता पुत्रं हिनस्ति न पुत्रो मातरम्** ।" राजा को राष्ट्र या राज्य संचालन, नियमन तथा धारण के लिए और कृषि, क्षेम, सम्पन्नता, पोषण अथवा वर्द्धन के लिए दिया जाता था। वाजसनेयि-संहिता (९।२२) तथा शतपथ-ब्राह्मण (५।२।१।२५) के वचन हैं –"..... **इयन्ते राड् यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा** ।।" अर्थात् हे राजा ! तुझे यह राष्ट्र या राज्य दिया जाता है; तू संचालक तथा नियामक है; तू ध्रुव (दृढ़) है, धारक है; (तुझे यह राष्ट्र दिया जाता है) कृषि के लिए, क्षेम के लिए, सम्पन्नता के लिए, पोषण के लिए। इस प्रकार प्रजा तथा राजा सभी मातृभूमि के प्रति अगाध भक्ति रखते थे। ऋग्वेद (१०।१७४।१-२,५) में ब्रह्मणस्पति से राष्ट्र के प्रति आनुकूल्य की और सपत्नों तथा शत्रुओं के निरसन की प्रार्थना की गई है—

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभिराष्ट्राय वर्तय ।
अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाऽभि यो न इरस्यति ।।
असपत्नः सपत्नहाऽभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ।।

वाजसनेयि-संहिता (२२।२२) में राष्ट्र के शारीरिक, बौद्धिक तथा प्राकृतिक सुख एवं समृद्धि की अतीव सुन्दर शब्दों में कामना की गई है, जिसे हम वैदिक राष्ट्र-गीत कह सकते हैं—

आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर
इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य
वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो
न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

अर्थात् हमारे राष्ट्र में ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण उत्पन्न हों; शूर, महारथी तथा शस्त्र-विद्या में निष्णात क्षत्रिय उत्पन्न हों; दुधारु गाएँ, भारवाहक पुष्ट बैल और शीघ्रगामी घोड़े हों; रूपगुणादिसम्पन्न सुशील स्त्रियाँ हों; यजमानों के वीर पुत्र

विजयशील, योद्धा तथा सभ्य हों; पर्जन्य हमारी आवश्यकतानुसार वृष्टि करे; हमारी यवादि ओषधियाँ फलयुक्त होकर पकें; और हमारा योग अर्थात् अलब्ध की प्राप्ति तथा क्षेम अर्थात् लब्ध का परिपालन सम्पन्न हो।

ऋग्वेद के संज्ञानसूक्त (१०।१९१।२–४) तथा अथर्ववेद के सांमनस्य-सूक्त (६।६४।१–३) में राष्ट्र के सभी मनुष्यों की क्रियाओं, मन, बुद्धि तथा विचारों के पूर्ण सामञ्जस्य की भावना व्यक्त की गई है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानना उपासते॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

अर्थात् हे लोगों! तुम सब मिलकर चलो, मिलकर बोलो और तुम्हारे मन मिलकर सब बातें जानें, जिस प्रकार देव पहले से यह जानते हुए कि अग्नि में प्रदत्त आहुतिरूप भाग सबके लिए है उसे मिलकर ग्रहण करते हैं। तुम सबका मनन समान हो, समिति समान हो, मन समान हो, चित्त समान हो; मैं तुम सबको समान सम्मति देता हूँ, एक समान आहुति अर्थात् भोज्यपदार्थ से तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम्हारा अभिप्राय अथवा संकल्प समान हो, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन समान हों, जिससे तुम्हारी शोभन संगति हो। किसी भी राष्ट्र के लोगों के मनन, चिन्तन, मन, हृदय एवं संगठन आदि में सामञ्जस्य होना उसकी प्रगति, सुख एवं समृद्धि के लिए नितान्त आवश्यक है।

हृदय तथा मन की समानता और विद्वेषशून्यता की कामना अथर्ववेद में अन्यत्र (३।३०।१–३।५–७) भी की गई है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवनेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसे वो अस्तु ॥

अर्थात् मैं तुम्हें समान हृदय तथा मन से युक्त और विद्वेषरहित करता हूँ, तुम एक–दूसरे की कामना उसी प्रकार करो जिस प्रकार गाय अपने नवजात बछड़े की करती है । पुत्र पिता का अनुव्रती हो, माता से वह समान मन वाला हो; पत्नी पति से शान्त–सुखद मधुर वाणी बोले । भाई भाई से द्वेष न करे, न ही बहिन बहिन से; समगति तथा समव्रत होकर तुम भद्रभाव से वाणी बोलो । तुम बड़ों की बात मानने वाले, समान चित्तयुक्त, अवियुक्त तथा समान उद्देश्य वाले बनो, परस्पर प्रिय बोलो; मैं तुम्हें सहकारी तथा समान मन वाले करता हूँ । तुम्हारा मान समान हो, अन्नभाग साथ-साथ हो; मैं तुम्हें समबन्धन में साथ जोड़ता हूँ; जैसे अराएँ चारों ओर से मिलकर केन्द्र में मिलती हैं वैसे ही तुम सब मिलकर अग्नि की सपर्या करो । मैं तुम्हें सहकारित्व, समान मन तथा एक गति से युक्त करता हूँ; अमृत की रक्षा करते हुए देवों की भाँति तुम साय प्रातः शुभ मनोभावयुक्त हो । कौशिक–सूत्र (१२।५) के अनुसार यह सूक्त अथर्ववेद के मानसिक एकता उत्पन्न करने के लिए विनियुक्त सात सूक्तों (३।३०; ५।१५; ६।६४,७३,७४,९४; ७।५२) में से एक है । इन वैदिक मन्त्रों में राष्ट्र के सदस्यों के मानसिक, हार्दिक तथा कर्मसम्बन्धी समभाव की महनीय कल्पना है ।

भूमि की सर्वाधिक पूर्ण, महिमामाण्डित तथा भावप्रवण स्तुति अथर्ववेद के भूमि-सूक्त (१२।१) में प्राप्त होती है । इसमें ऋषि ने समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा सब प्राणियों एवं पदार्थों की पोषिका के रूप में मातृरूपिणी वसुन्धरा की स्तुति की है और उससे प्रजा को समस्त दोषों, क्लेशों तथा अनर्थों से बचने और सुख-समृद्धि प्रदान करने के लिए प्रार्थना की है । ऋषि की दृष्टि पृथ्वी के सभी रूपों—उसकी मिट्टी, पर्वतों, वनों, नदियों, ऊँचे-नीचे तथा समतल प्रदेशों, कृषि–सम्पत्ति, पशु–पक्षियों, वृक्षों एवं ओषधियों, ऋतुओं, यज्ञवेदियों एवं यूपों, सभा-समितियों और नाना भाषाओं के बोलने वाले तथा अनेक धर्मों से सम्बद्ध मनुष्यों पर गई है । भूमि की माता के रूप में मान्यता ऋग्वेद में भी दिखलाई पड़ती है—"**उप सर्प मातरं भूमिम्**" (माता भूमि के पास जाओ, १०।१८।१०); "**माता पुत्रं यथा सिचा**" (माता जैसे पुत्र को, १०।१८।११) तथापि अथर्ववेद के इस सूक्त के जैसे गहन ममता के उद्गार अन्यत्र दुर्लभ हैं—"**माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः**" (भूमि मेरी माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ, १२); "**सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः**" (वह भूमि माता मुझ पुत्र के लिए दूध का विसर्जन करे) । हिरण्यवक्षा पृथ्वी विश्वम्भरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा तथा जगत् की निवेशनी है— "**विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी**" (६) । वह अदिति, कामनाओं का दोहन करने वाली, विस्तृत तथा

प्राणियों का बीज-वपन करने वाली है-—"**त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना** (६१)। माता भूमि से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे लिए विस्तृत स्थान प्रदान करे—"**उरुं लोकं पृथवी नः कृणोतु**" (१); वह हमें ऐश्वर्य तथा वर्चस्व दे—"**भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु**" (५); हमारे लिए धन धारण करे—"**भूमिः ···· द्रविणे नो दधातु**" (६); हमें वृद्धि प्रदान करे—"**सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना**" (१३); वाणी का मधु दे—"**वाचो: मधु पृथिवि धेहि मह्यम्**" (१६); हमसे कोई द्वेष न करे—"**मानो द्विक्षत कश्चन**" (१८,२३,२४,२५); और अपने शिवकारक तत्त्वों से हमें सुखी करे—"**यच्छिवं तेन नो मृड**" (४६,४७)। साथ हो प्रार्थना की गई है कि वह हमारे सपत्नों को भगाकर हमें असपत्न करे—"**सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु**" (४१); और हमारे उत्तम राष्ट्र में कान्ति तथा बल का आधान करे—"**सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे**" (८)। शान्त, सुरभित, सुखकरी अमृत से परिपूर्ण स्तनों वाली, पयस्वती तथा महती भूमि से दुग्धसहित अनुग्रहभाव की कामना की गई है—

शान्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥
(५९)

मातृभूमि का उपासक प्रण करता है कि मैं क्रोध करने वाले अन्य (शत्रुओं) को नीचे गिरा मारूँ—"**अवान्यान् हन्मि दोधतः**" (५८)। वह अपने आपको सर्वतः विजयशील, सर्वजयी और प्रत्येक दिशा को वश में करने वाला उद्घोषित करता है— "**अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः**" (५४)। मातृभूमि का यह यशोगान वीरता की भावना तथा विलक्षण राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रिय भावना से अनुप्राणित है।

इस प्रकार वेदों में देशप्रेम, राष्ट्रभक्ति तथा राष्ट्रिय भावना का समृद्ध अंकन है। वैदिक काल में यद्यपि भारत अनेक राज्यों में विभक्त था तथापि सभी का निर्विवाद लक्ष्य समुद्रपर्यन्त भूखण्ड पर एक ही राष्ट्र की स्थापना करना था। यह बात ऐतरेय-ब्राह्मण (८।१५) के "**आऽन्तादा परार्धात्पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति**" शब्दों से सुस्पष्ट है।

—※—

उपनिषदों की लोकप्रियता

—रामप्रसाद वेदालंकार

विषय की दृष्टि से वेदों को तीन भागों में विभक्त किया गया है—कर्मकाण्ड, उपासना–काण्ड और ज्ञानकाण्ड। विश्व के मूल तत्त्व का विचार ज्ञानकाण्ड में किया गया है। कर्म और उपासना उस तत्त्व को उपलब्ध करने की योग्यता प्रदान करते हैं। इसलिए वह साधन रूप हैं और ज्ञान साध्य रूप है। वेदों में ज्ञानकण्ड का नाम उपनिषद् है। यद्यपि प्रसंगवश उसमें कर्मकाण्ड एवं उपासना-काण्ड का भी वर्णन मिलता है तथापि मुख्य रूप से आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी तथ्यों का ज्ञान कराना ही उनका प्रधान विषय है।

उपनिषदों का महत्त्व वैदिक अनुयायियों को ही मान्य हो—ऐसी बात नहीं, न जाने कितने ही अन्य धर्म एवं मत के मानने वाले भी, और वे भी केवल अपने देश के ही नहीं प्रत्युत दूसरे देशों के लोग भी, इनके गाम्भीर्य, माधुर्य एवं तात्त्विक विचार-परम्परा पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहे। मंसूर, समर्द, फैज़ी, बुल्लाशाह और दाराशिकोह आदि महानुभावों ने इस्लाम धर्मावलम्बी होकर भी उपनिषदों के सिद्धान्त को अपने जीवन का सर्वस्व अंगीकार किया है। पाश्चात्त्य विद्वानों में भी शापनहार, गोल्डस्ट्यूकर, महाकवि गेटे, डायसन[1], गफ़[2] आदि अनेक विद्वान् हो चुके हैं जिन्होंने उपनिषदों की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। ये उपनिषद् कितनी लोकप्रिय बनी, यह इनके अनेक संस्कृत, हिन्दी एवं विदेशी भाषाओं के अनुवादों, टीका–प्रटीकाओं तथा भाषान्तरों से ही सिद्ध हो जाता है।

सत्रहवें शतक में मुग़ल बादशाह शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह ने इनका फारसी भाषा में अनुवाद किया है।[3] इस निष्पक्ष शाहज़ादे की लिखी हुई भूमिका से यह ज्ञात हो जाता है कि उसे इन उपनिषदों के उपदेशों से कितनी शान्ति मिली है।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् शापनहार लिखते हैं—

सम्पूर्ण संसार में ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं जो उपनिषदों के समान उपयोगी और उन्नति की ओर ले जाने वाला हो। वे उच्चतम बुद्धि की उपज है। आगे या पीछे एक दिन ऐसा आना ही है कि यही मनुष्यों का धर्म होगा। ये मुझे जीवनकाल में शान्ति देती रही हैं और मृत्यु के समय भी शान्ति देंगी।[4]

शोपेनहार के इन्हीं शब्दों को उद्धृत करते हुए मैक्समूलर ने कहा है–शोपेनहार के इन शब्दों के लिए यदि किसी समर्थन की आवश्यकता हो तो अपने जीवन-भर के अध्ययन के आधार पर मैं उनका प्रसन्नतापूर्वक समर्थन करूँगा।[5]

मैक्समूलर लिखते हैं—"उपनिषद् वेदान्त के आदि स्रोत हैं और ये ऐसे निबन्ध हैं जिनमें मानवीय भावना अपने उच्चतम शिखर पर पहुँची हुई मालूम होती है।[6] वे कहते हैं कि मेरी संस्कृत–साहित्य में वास्तविक रूचि या लगन प्रथम तब जगी जबकि मैंने उपनिषदों को पढ़ा।[7] किसी–किसी ने उपनिषद् को मानव–चेतना का सर्वोच्च फल बताया है।

भारतवर्ष के परतन्त्र रहने की अवस्था में भी उसकी जिस संस्कृति ने दूसरों के चित्त को इतना आवर्जित किया, उसका प्रधान कारण यदि उपनिषदों का माना जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। उपनिषदों के एक–एक वाक्य में जो अमर तेज हैं, जो आलोक है, उससे कितनों की आँखें खुल गईं, कितनों के अन्धकार मिट गये, कितने योगी एवं सिद्ध बन गये, कितने जीवन्मुक्त हो गये या परब्रह्म में रम गये। इन उपनिषदों के प्रकाश में ज्ञान का वह अक्षय भण्डार है कि सारे संसार में ऐसा कोई दर्शन नहीं; ऐसी कोई विचारधारा नहीं जो इससे प्रभावित न हुई हो। वास्तव में उपनिषद् वे कामधेनु हैं जिनके नीचे आकर मानव की कामनाओं को विराम और विश्राम मिलता है। यही कारण है कि ये इतनी लोकप्रिय हैं।

१–फिलॉसाफी ऑफ् उपनिषद्स।

२—फ़िलॉसाफी ऑफ् दि उपनिषद्स।

३—"सिर्र–ए–अकबर" (महान् रहस्य)।

४—सेक्रेड बुक्स ऑफ् दि ईस्ट, वोल्यूम I, भाग १, भूमिका, पृ० ६१।

५– कल्याण, उपनिषद्—अंक, वर्ष २३, अंक १, पृ० ८५।
('पाश्चात्त्य विद्वानों पर उपनिषदों का प्रभाव')

६—कल्याण, वर्ष ७, अंक अष्टम में, 'ब्रह्मविद्या–रहस्य'।

७—सेक्रेड़ बुक्स ऑफ् दि ईस्ट, वोल्यूम I, भाग १, भूमिका।
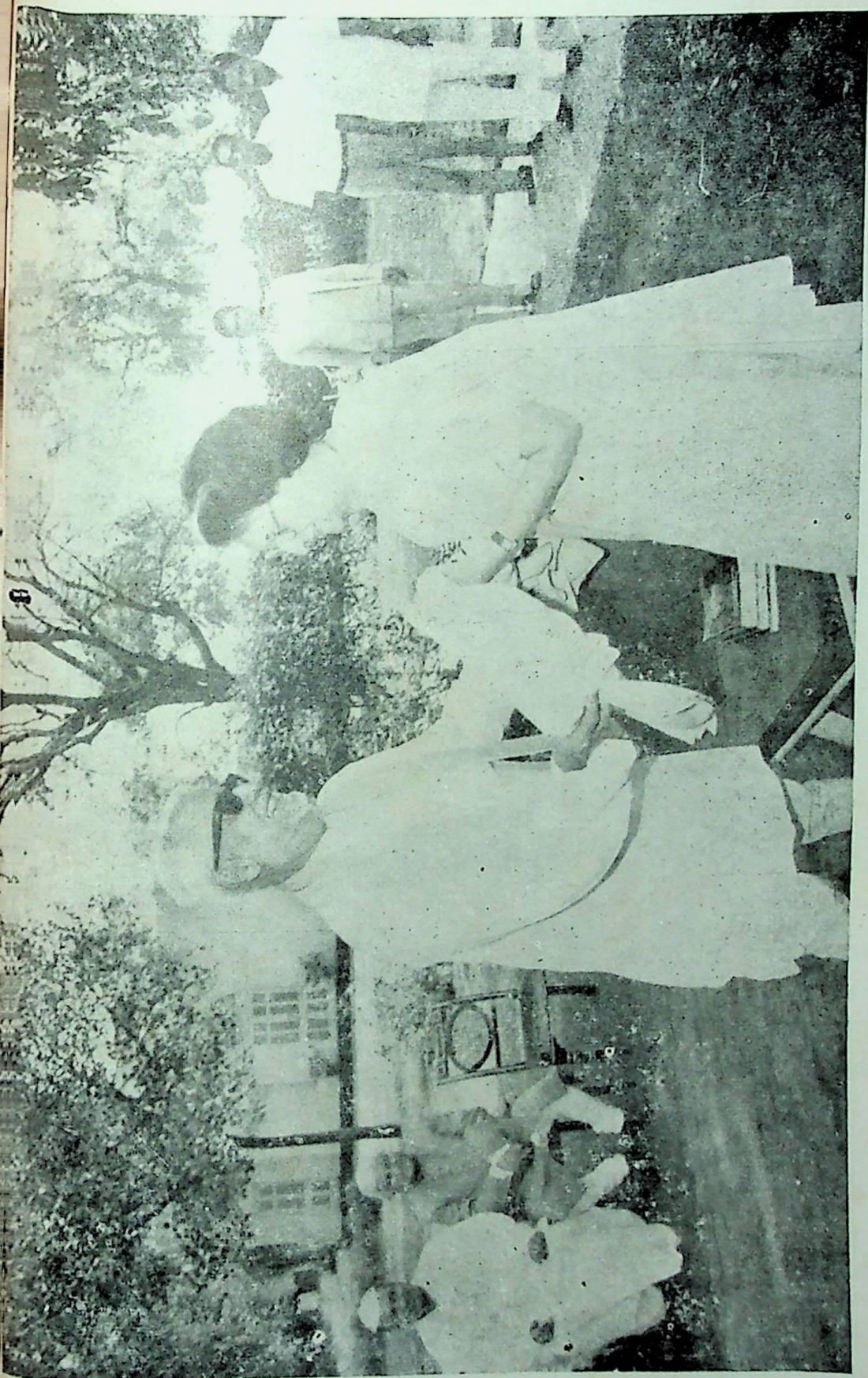
आचार्य प्रियव्रत वेदमार्तण्ड प्रणीत "वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त" ग्रन्थ के विमोचन-समारोह में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी को उत्तरीय प्रदान करते हुए कुलपति बलभद्रकुमार हूजा।
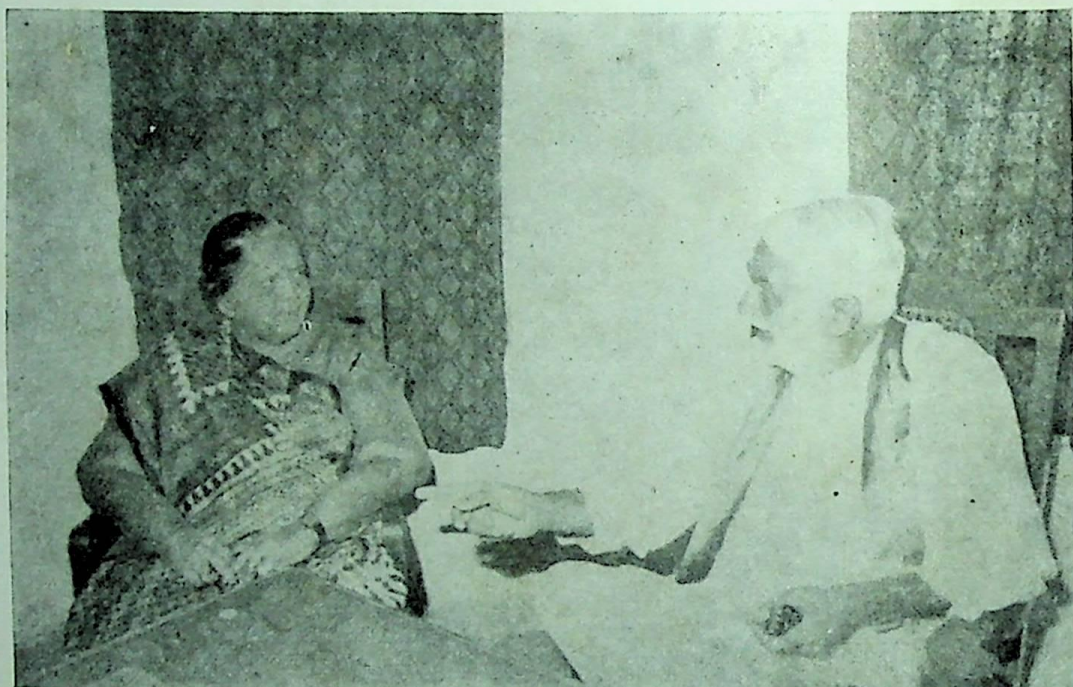
१३ अक्तूबर को विश्वविद्यालय परिसर में विश्वविद्यालय अनुदान–आयोग की अध्यक्ष सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्रीमती डॉ० माधुरीशाह पधारीं । डॉ० शाह ने विश्व-विद्यालय की प्रगति पर हार्दिक संतोष प्रकट किया । (चित्र में) विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा, श्रीमती शाह को विश्वविद्यालय द्वारा संचालित शैक्षिक क्रिया-कलापों तथा योजनाओं का परिचय देते हुए ।

आचार्य रामदेव

—डॉ० राकेश शास्त्री

वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार की प्रबल इच्छा से सम्पन्न गुरुकुलीय प्रेम से आप्लावित, अद्‌भुत वक्ता एवं उत्कट अध्येता तथा असाधारण कार्यक्षमता से सम्पन्न आचार्य रामदेव जी का जन्म ३१ जुलाई, १८८१ ई० को जिला होशियारपुर में स्थित ग्राम बजवाड़ा में हुआ था। आपके पिता ला० चन्दूलाल आर्यसमाजी विचारधारा से ओतप्रोत, पंजाब के प्रसिद्ध सिख-परिवार मजीठिया के गृह-शिक्षक थे। आपका बचपन का नाम रामदास था।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सेण्ट्रल मॉडल स्कूल तथा डी०ए०वी० स्कूल लाहौर में सम्पन्न हुई। आपने सन् १८९५ ई० में मिडिल तथा पश्चात् मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए डी०ए०वी० कालेज में प्रवेश लेने के पश्चात् भी परिस्थितिवश परीक्षा न दे सके (क्योंकि वैचारिक विरोध के कारण इन्हें डी०ए०वी० कालेज छोड़ना पड़ा) उस समम डी०ए०वी० कालेज से 'आर्य मैसेन्जर' पत्र का प्रकाशन होता था, आपने अपने कालेज-जीवन में कुछ दिनों तक इस का सम्पादन भी किया।

आपका विवाह १३ वर्ष की आयु में ही हो गया। आपकी पत्नी की शिक्षा कन्या-महाविद्यालय जालन्धर में हुई। अतः कन्या-पक्ष की ओर से विवाह में कन्या-महाविद्यालय के प्रसिद्ध संचालक लाला देवराज तथा मुंशीराम (जो बाद में श्रद्धानन्द हुए) भी सम्मिलित हुए। इसी अवसर पर आपने महात्मा पार्टी के लीडर ला० मुंशीराम जी को आर्यसमाज के सब झगड़ों की जड़ बताया; किन्तु ये ही बाद में इनके लिए मुख्य प्रेरणा के स्रोत और श्रद्धा के पात्र हुए।

विवाह के १०-१५ दिन बाद ही आपको पाँच-छह दिन अपनी ससुराल में रहना पड़ा। इससे पूर्व पं० गुरुदत्त के सम्पर्क में आने के कारण आपको पढ़ने का शौक पैदा हो चुका था। ससुराल में खाली बैठे जब मन न लगा तो आप ला० मुंशीराम जी के पुस्तकालय में अच्छी पुस्तकों को पढ़ने के लिए पहुँचे। वहाँ आपका परिचय ला० मुंशीराम जी से हुआ, आप उनके विचारों से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उनके विषय में इनकी गलत धारणा दूर हुई। इसी अवसर पर जालन्धर कन्या-महाविद्यालय के अन्य प्रमुख व्यक्तियों के सम्पर्क में आने से

आपको आर्यसमाज के वास्तविक आदर्शों तथा स्त्री–शिक्षा आदि के महत्त्व का भली–भाँति ज्ञान हो गया।

उस समय आर्यसमाज दो भागों में विभक्त हो गया था। एक पार्टी का नेतृत्व डी०ए०वी० कालेज के प्रिंसिपल ला० हंसराज कर रहे थे तथा दूसरी पार्टी का प्रतिनिधित्व ला० मुंशीराम तथा कन्या–महाविद्यालय, जालन्धर के अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कर रहे थे। कालेज पार्टी के संचालक उन दिनों स्त्री-शिक्षा के विरोधी थे। लाला मुंशीराम जी के सम्पर्क में आने के पश्चात् आपने अपना लक्ष्य ही वैदिक संस्कृति-पुनरुद्धार तथा वैदिक धर्म का प्रचार बना लिया और महात्मा पार्टी के वेद–प्रचार फण्ड के लिए लाहौर में घूम-घूम कर चन्दा जमा करना भी प्रारम्भ कर दिया।

स्त्रियों की स्वतन्त्रता के पक्षपाती होने के कारण आपने अपनी पत्नी से परदा करने के लिए सख्त रूप से मना कर दिया। परिणामस्वरूप आपका अपने पिता से विचार-विरोध हो गया और आपको घर छोड़ना पड़ा। घर छोड़कर आप पत्नी के साथ अपने एक मित्र के घर पहुँचे। आपके घर छोड़ने के समाचार को सुनकर महात्मा मुंशीराम ने आपको सान्त्वना दी और कहा कि तुम्हें न पिता की चिन्ता करनी चाहिए, न कालेज की। आज से मैं तुम्हारा धर्म-पिता हुआ। मैं तुम्हें बी०ए० तक नहीं अपितु एम०ए० तक अपने खर्च से पढ़ाऊँगा।
सन् १८९९ ई० में लाला मुंशीराम जी ने आपको आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के मुखपत्र "आर्य–पत्रिका" के सम्पादकीय विभाग में रखवा दिया। इसी समय आपने कालेज पार्टी की "यंगमैनस् आर्यसमाज" के उत्तर में कई मित्रों के साथ मिलकर आर्य कुमार-सभा की स्थापना की और आपको इस सभा का मंत्री चुना गया।

सन् १९०० ई० में आप जालन्धर छावनी के "विक्टर हाईस्कूल" में हेडमास्टर हो गये। इसी समय आपने बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस बीच स्कूल के इन्सपेक्टर आपके काम एवं योग्यता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने लाहौर के ट्रेनिंग कालेज में आपको एक छात्रवृत्ति दिलवा दी। सन् १९०५ ई० में आपको रियासत जींद में स्कूल इन्सपेक्टर का स्थान प्राप्त हो गया (इससे पूर्व ही महात्मा मुंशीराम कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना कर चुके थे)। आप जींद जाने की तैयारी कर रहे थे कि महात्मा मुंशीराम जी का तार पाकर उनसे मिलने गये और उनके अनुरोध पर स्कूल इन्सपेक्टरी त्यागकर सन् १९०५ ई० में ही गुरुकुल कांगड़ी को अपना जीवनदान करके उसकी सेवा के लिए हरिद्वार के पास गंगापार चले गये। तब से लेकर जीवन के अन्तिम क्षणों तक आपका जीवन कांगड़ी गुरुकुल को ही समर्पित रहा।

जिस समय आपका कांगड़ी गुरुकुल में प्रस्थान हुआ तो वहाँ अंग्रेजी की की उपेक्षा करके संस्कृत और वैदिक साहित्य के अध्ययन पर ही वल दिया जाता था। अध्यापक भी पुराने ढंग के पंडित थे। शिक्षा के नवीन आदर्शों से वे परिचित नहीं थे। महात्मा मुंशीराम ने आपको कांगड़ी गुरुकुल में हेडमास्टर के पद पर रखना उचित समझा। आपके प्रगतिशील विचारों के साथ गुरुकुल के अन्य पंडितों का विरोध हुआ, इस विरोध में जीत आपकी ही हुई। परिणाम-स्वरूप जो पंडित आपके प्रगतिशील विचारों से सहमत नहीं थे वे गुरुकुल छोड़कर चले गये। इसके बाद आपने महात्मा मुंशीराम जी के सहयोग एवं परामर्श से गुरुकुल के लिए एक निश्चित पाठविधि तैयार की, जिसमें संस्कृत को प्रमुखता प्रदान करते हुए इतिहास, भूगोल, विज्ञान तथा अंग्रेजी भाषा को भी समुचित स्थान प्रदान किया। साथ ही आश्रम की नियमित दिनचर्या तथा विद्यालय का नियत समय-विभाग भी बना दिया। गुरुकुल की नियमित दिनचर्या में प्रातः सायंकालिक संध्या, यज्ञ, तथा व्यायाम आदि को प्रमुखता प्रदान की गयी।

अतः अब ब्रह्मचारियों का अपने अध्यापकों के साथ कुछ घंटों का ही सम्बन्ध न रहकर रात-दिन का सम्बन्ध हो गया। अतः आपने गुरुकुल को वास्तव में गुरुकुल बनाने का प्रयत्न किया।

महात्मा मुंशीराम जी के संन्यास लेने के पश्चात् आप ही गुरुकुल के आचार्य एवं मुख्याधिष्ठाता बने। वस्तुतः आपने गुरुकुल के आरम्भिक काल में न केवल हेडमास्टरी ही की; अपितु महात्मा मुंशीराम जी का गुरुकुल के कार्यों में हाथ भी बटाया। सन् १९०९ ई० में आर्य-समाज की विकट परिस्थिति के कारण महात्मा मुंशीराम जी को अधिकतर गुरुकुल के बाहर रहना पड़ा। अतः इनके पीछे आपने ही अकेले गुरुकुल का संचालन किया। बाद में आपको भी महात्मा मुंशीराम जी के साथ ही बाहर रहना पड़ा। उस समय आपने जो कुछ भी किया उससे आपकी योग्यता की धाक दूर-दूर तक जम गयी।

सन् १९०७ से १९०९ ई० के दो-तीन वर्षों में भारतवर्ष के सार्वजनिक जीवन में आर्य-समाज की गुरुकुल पार्टी के द्वारा भारतीयता एवं भारतीय-संस्कृति का मन्त्र फूँकने का प्रयत्न करने के कारण आर्य-समाज, उसकी संस्थाओं विशेष रूप से गुरुकुल पार्टी को अंग्रेज सन्देह की दृष्टि से देखने लगे तो गुरुकुल पार्टी के नेताओं, विशेषरूप से महात्मा मुंशीराम तथा आपने आर्य-समाज पर सरकार के सन्देह का उत्तर बड़े निडर रूप से दिया। इस बीच आपको लेखन, भाषणादि में अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा। उस समय शायद ही कोई ऐसा अंग्रेजी का प्रमुख पत्र बचा हो जिसमें आपका कोई लेख प्रकाशित न हुआ हो। नवम्बर १९०९ में लाहौर के बच्छो वाले आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर भाषण करते हुए 'सत्यार्थप्रकाश' सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिये जाने के भय का आपने बड़ी

बीरतापूर्वक उत्तर देते हुए कहा कि भारतवर्ष पर आक्रमण करने वाले मुस्लिम राजाओं ने कई बार इस देश के बड़े-बड़े पुस्तकालयों को जलाकर खाक़ में मिला दिया और सैकड़ों आर्य विद्वानों को मृत्यु के विकराल मुख में झोंक दिया तो भी हमारे पूर्वजों ने वेद-शास्त्र तथा अन्य वैदिक-साहित्य को नष्ट नहीं होने दिया। उन्होंने वंश-परम्परा से वेदों को कण्ठस्थ करके उनकी रक्षा की। हम उन्हीं आर्यों के वंशज हैं। हम भी सत्यार्थप्रकाश की एक-एक पंक्ति कण्ठस्थ कर लेंगे और उसे नष्ट नहीं होने देंगे। सरकार का कानून कागज़ पर छपी हुई पुस्तक को ज़ब्त कर सकता है, आर्यों के हृदयों में सुरक्षित उनके ज्ञान को नहीं।"

संक्षेप में आपने गुरुकुल में दायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते हुए भी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए किये जा रहे आन्दोलनों मे भी रात-दिन लेखन और भाषणों द्वारा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

गुरुकुल कांगड़ी में आरम्भ में नवीन पाठ्यक्रम लागू करने के साथ-साथ भारतीय-संस्कृति एवं विचारों के अनुरूप हिन्दी भाषा में पाठ्य-पुस्तकें लिखवाने का भी महत्त्वपूर्ण कार्य आपके द्वारा ही सम्पन्न हुआ। इसी प्रयास में आपने भारतवर्ष के प्राचीन गौरव को प्रस्तुत करते हुए दो जिल्दों में 'भारतवर्ष का इतिहास' लिखा।

सन् १९२० ई० में आपके मकान में अचानक आग लग जाने के कारण पुस्तकों का विशाल संग्रह जलकर राख हो गया। आपने पाश्चात्य दर्शन, सभ्यता और धर्मों की आलोचना में जो विस्तृत सामग्री एकत्र की थी, उसका अंशमात्र ही प्रकाशित हो सका है। आपने पंडित जयदेव शर्मा विद्यालंकार की सहायता से पुराण-विमर्श नामक एक विशाल ग्रन्थ प्रकाशित करवाया था। आपके व्याख्यानों तथा लेखों का एक संग्रह राजपाल एण्ड सन्स ने प्रकाशित किया है। आपका लेखन-कार्य कभी भी व्यवसाय की दृष्टि से नहीं रहा अपितु गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों के पठन-पाठन में सहायता और वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही रहा।

आपने अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को गुरुकुल कांगड़ी के विकास, धन-संग्रह, आर्य-समाज एवं देश की उन्नति में ही व्यतीत किया।

आपके समय में ही गुरुकुल में उच्च शिक्षा की व्यवस्था की गयी और उच्च-शिक्षा को तीन महाविद्यालयों वेद, आयुर्वेद और साधारण महाविद्यालयों में विभक्त किया गया। आपने गुरुकुल के महाविद्यालय-विभाग में प्रत्येक विषय के अध्यापन के लिए एक स्थिर निधि की व्यवस्था करने की महात्मा मुंशीराम जी की योजना को कार्यान्वित किया। आपने निरन्तर कई वर्ष तक प्रयत्न करके

गुरुकुल महाविद्यालय में जितने विषय पढ़ाये जाते थे उन सबके उपाध्यायों की गद्दी ३०–३० हजार रु० की स्थिर निधि बनाकर स्थिर कर दी । धन एकत्र करने की आपमें अपूर्व सामर्थ्य थी ।

आपके जीवन का सर्वोत्तम और सर्वाधिक भाग गुरुकुल कांगड़ी के निर्माण और सेवा में व्यतीत हुआ। परन्तु आपके जीवन का प्रमुख कार्य देहरादून का कन्या-गुरुकुल है। आपमें उसे बाल्यावस्था से पाल-पोस कर महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया। मृत्यु–शय्या पर भी यदि आपकी कोई चिन्ता थी तो कन्या-गुरुकुल की थी।

सन् १९२० में जब महात्मा गांधी ने स्वदेशी और खादी का आन्दोलन चलाया तो आपने गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों को शुद्ध खादी पहनने का व्रत लेने की प्रेरणा दी। सन् १९३२-३३ ई० में आपको सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण एक वर्ष की जेल हुई। सजा पाने के पश्चात् आप पहले रावलपिंडी जेल में रखे गये और बाद में वहां आपका स्वास्थ्य खराब होने के कारण आपको मुल्तान जेल में भेज दिया गया। जेल-वास में आपके स्वास्थ्य पर इतना खराब असर हुआ कि इसके बाद आपका शरीर प्रायः रोगी रहने लगा। सन् १९३३ में अजमेर में आयोजित दयानन्द-निर्वाण अर्द्ध–शताब्दी में आर्य-सम्मेलन के आप प्रधान बने। सन् १९३५-३६ ई० में आप आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान चुने गये। इस पद पर रहते हुए आपने आर्य प्रतिनिधि सभा का अर्द्ध-शताब्दी उत्सव बड़े धूम-धाम से सफलतापूर्वक मनाया।

शरीर के अस्वस्थ होने तथा कार्य की अधिकता से आपके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर हुआ। परिणामस्वरुप आपको अन्तिम समय में पक्षाघात हो गया, जो असाध्य सिद्ध हुआ और आपकी आत्मा ९ दिसम्बर, १९३९ ई० को प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे इस नश्वर शरीर को छोड़कर परम तत्त्व में लीन हो गई। आपका गुरुकुल से इतना प्रेम था कि अन्तिम समय में जब आप बोल भी नहीं पा रहे थे तो भी आप बीच-बीच में कहते थे 'मुझे उस पार ले जाओ'। आपको सात सन्तानें दो पुत्र और पाँच पुत्रियाँ थीं। आपके बड़े पुत्र का नाम यशपाल तथा छोटे पुत्र का सत्यभूषण था। पाँच पुत्रियों में एक पुत्री श्रीमती दमयन्ती कपूर कन्या-गुरुकुल देहरादून के आचार्या–पद पर हैं।

महापुरुषों के जीवन की एक विशेषता होती है कि वे यावज्जीवन किसी एक आदर्श की आराधना करते हैं और उसी की उपासना में अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर देते हैं। आचार्य रामदेव जी के जीवन का लक्ष्य था वैदिक धर्म तथा वैदिक शिक्षा-प्रणाली का पुनरुद्धार। इसी उद्देश्य की पूर्ति में वे जीवन भर जुटे रहे। अपनी सम्पूर्ण शक्ति उन्होंने इसी के प्रचार में लगा दी। ★

अब चुप नहीं रहा जाता

— सुरेशचन्द्र त्यागी

शिक्षा किसी देश की नींव का पत्थर है, यदि नींव ही बालू के ढ़ेर पर टिकी हो तो देश का क्या हाल होगा ? हाल वहा होगा जो कि भारतवर्ष का आज आजादी मिलने के ३७ वर्षों में हो गया है । शिक्षा-जगत् में चारों ओर निराशा और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। शिक्षा ही नेता, वकील, डाक्टर, इन्जीनियर, जज, शिक्षक और प्रशासक उत्पन्न करती है। और जब ये ही अनैतिक तौर पर फर्ज़ी डिग्रियां लेकर देश में फैलते चले जायेगें और देश पर शासन करेंगे तो देश की नैया डूबने में अधिक समय नहीं लगेगा। आज लार्ड-मैकाले या किसी और को कोसने से काम नहीं चलेगा। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि अंग्रेजों के समय में शिक्षा में आज जैसा भ्रष्टाचार या अनुशासनहीनता नहीं थी।

शिक्षा में सुधार के नाम पर लेखों की, सेमिनारों की, भाषणों की भरमार है; परन्तु मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की। प्रत्येक व्यक्ति कहता है कि शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन हो; परन्तु आजादी मिलने के ३७ वर्ष बाद भी हम नहीं जान पाये कि हमें क्या करना चाहिये ? आज शिक्षा का भविष्य शिक्षकों की अपेक्षा उन राजनीतिज्ञों के हाथों में है जिनका एकमात्र उद्देश्य किसी भी तरह सत्ता में रहना है, देश का चाहे कुछ भी हो। एक शिक्षक होने के नाते मैं शिक्षा के विषय में अपने कुछ विचार प्रस्तुत करना चाहूँगा।

शिक्षा क्या है ?

शिक्षा से अभिप्राय बालकों को इस योग्य बनाना है कि वे समाज के लिये उपयोगी बन सकें। शिक्षा वह शक्ति है जो समाज में ऐसे हालात पैदा कर दे कि समाज उन्नति की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दे । शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास इस तरह करे कि व्यक्ति समाज की उन्नति में सहायक हो सके।

शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ बना सके और अधिक दिनों तक जीवित रह सके, क्योंकि किसी देश के स्वस्थ और

सबल मनुष्य ही उस देश को वास्तविक शक्ति हैं। इसके साथ ही व्यक्ति का मानसिक विकास भी होना आवश्यक है। मानसिक विकास के अभाव में मनुष्य की कल्पना, निरीक्षण, भावना, उदारता आदि मानसिक चेष्टायें सीमित होती हैं। ऐसा व्यक्ति नैतिक दृष्टि से भी पिछड़ जाता है और वह समाज का कोई भी भला नहीं कर सकता।

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा का उद्देश्य जीवन में वासनाओं का दमन और मोक्ष प्राप्त करना था। प्राचीन भारत में अध्यापन-कार्य सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। अध्यापन-कार्य एक प्रकार की साधना और तपस्या था। इसलिए गुरु का बड़ा सम्मान था। आज की शिक्षा की भाँति प्राचीन भारतीय शिक्षा में नैतिकता की कमी नहीं थी।

मुस्लिम शासनकाल में अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब ने भी शिक्षा की ओर ध्यान दिया। अकबर ने शिक्षा के नैतिक, व्यावहारिक तथा प्रायोगिक पक्ष तथा साहित्य सगोत, चित्रकला तथा अन्य ललित कलाओं को प्रोत्साहन मिला। औरंगजेब ने शिक्षा के क्षेत्र में सैनिक शिक्षा, इतिहास और भूगोल को स्थान देकर एक नया सूत्रपात किया।

प्राचीन काल में समाज में गुरु का स्थान राजा से भी ऊँचा था। गुरु को सामने देखकर राजा अपना सिंहासन छोड़कर आदरभाव से खड़ा हो जाता था।

शिक्षा की अवनति

भारत में जब अँगेजी राज्य अपना पाँव जमाने लगा तो भारतीय शिक्षा नष्ट होने लगी और शिक्षा का उद्देश्य केवल हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ बनाना रह गया। अंग्रेज़ी शिक्षा ने ऐसे क्लर्क, बाबू बनाने प्रारम्भ कर दिये जिनका रंग-रूप तो हिन्दुस्तानी था, परन्तु जिनका सोचना-समझना अग्रेजों की गुलामी करना था। इस प्रकार शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य अंग्रेज़ों की गुलामी करके पेट भरना रह गया था। तथापि यह निष्पक्ष होकर कहा जा सकता है कि इन अंग्रेज़ी बाबूओं को अपने विषय का पूरा ज्ञान रहता था। वे जो भी हाई स्कूल, बी० ए० आदि की डिग्री लेते थे उसके लिए कठोर परिश्रम करते थे। नकल करने पर तीन वर्ष तक कोई दुबारा परीक्षा में नहीं बैठ सकता था और समाज उसे हीन दृष्टि से देखता था। इसलिए कोई कठिनता से परीक्षा में अनुचित साधन का प्रयोग करने का दुस्साहस करता था। शिक्षा का स्तर उँचा बनाये रखने पर ध्यान दिया जाता था, न कि आजकल के जैसे बी० ए०,

एम० ए०, पी-एच० डी० आदि की फर्जी डिग्रियाँ बाँटने पर । इसलिये आज भी यह बात प्रसिद्ध है कि आजकल के कई एम० ए०, पी–एच०डी० अंग्रेज़ों के समय के हाई स्कूल के बराबर भी योग्यता नहीं रखते ।

आज़ादी के बाद शिक्षा के स्तर में गिरावट

१५ अगस्त, १९४७ को भारत अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्त हुआ। देश की जनता तथा नेताओं ने बड़े-बड़े सपने देखें, ऊँचे-ऊचे वायदे किये कि भारत को स्वर्ग बना देगें। शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन करने पर भाषणों और लेखों की भरमार प्रारम्भ हो गयी। लार्ड मेकाले को कोसा जाने लगा कि उसने भारतीय शिक्षा को बर्बाद कर दिया और उसकी शिक्षा का उद्देश्य क्लर्क बनाना था; परन्तु हमने जो किया क्या वह सुधार था ? शिक्षा के विस्तार के नाम पर जगह-जगह स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय खोल दिये गये। इनमें से बहुत तो बुद्धिहरण–विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध होने लगे। जब बिना पढ़े और बिना विद्यालय में गये घर बैठे पैसे के बल पर फर्स्ट डिविजन मिल जाये तो छात्र क्यों परिश्रम करे और गुरुजी क्यों पढ़ायें ? आज तो पी–एच० डी० और डी० लिट्० तक की उपाधियाँ बिक रही हैं।

आज की शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य—व्यापार

आज अधिकतर व्यावसायिक संस्थानों जैसे-इन्जीनियरिंग, डाक्टरी आदि में ट्रेनिंग के लिए तथा रोज़गार पाने के लिए मैरिट की आवश्यकता होती है। इसलिए छात्र परीक्षाओं में अनुचित साधनों के आधार पर तथा शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों को रिश्वत देकर या डरा-धमका कर अच्छे अंक प्राप्त कर लेता है। यदि कोई शिक्षक आदर्शवादी बनकर उसके सामने आता है तो उसे सीधे यमलोक भेज दिया जाता है। मजे की बात यह है कि यही फर्जी डिग्री प्राप्त देश के होनहार नवयुवक सिफारिश और पैसे के जोर पर सरकारी नौकरियों में घुस जाते हैं। अयोग्य तथा अनैतिक होने के कारण ये जिस प्रकार का भ्रष्टाचार समाज में फैला रहे हैं वह सर्वविदित है।

आज़ादी से पहले लोग ढूँढ़ा करते थे कि कौन बेईमान है, अब समाज में ढूँढ़ना पड़ता है कि कौन ईमानदार है ? आज शिक्षा का इन्सान बनाने से कोई सरोकार नहीं रह गया। शिक्षा–जगत् में नैतिकता तथा योग्यता की बात करना मूर्खता तथा दकियानूसी समझा जाता है। शिक्षा का स्तर उठाने का कोई विचार नहीं। इससे बेकार तथा भ्रष्टाचारी नवयुवकों की फौज तैयार हो रही है। डिग्रियाँ प्राप्त करने के पश्चात् इनका एक-मात्र उश्द्देय जैसे—तैसे

इसकी भूमिका बनाने के बाद उन्होंने स्व० मार्शल टीटो से औपचारिक विचार-विमर्श किया। जब इन दोनों नेताओं ने निर्गुट-संघ की भूमिका को रूप दे दिया तो फिर मिश्र के राष्ट्रपति स्व० नासिर को भी इस भूमिका से अवगत कराया। इस भूमिका को अन्तिम रूप देने के लिए उक्त तीनों देशों के राष्ट्राध्यक्षों की १९६१ में बेलग्रेड में मार्शल टीटो की अध्यक्षता में बैठक हुई। इस सादे समारोह में निर्गुट-संघ की स्थापना कर दी गई तथा तीनों देशों ने निश्चय किया कि अपने-अपने मित्र-राष्ट्रों को भी इसमें सम्मिलित होने हेतु प्रेरित किया जाए।

१ से ६ सितम्बर, १९६१ में यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में इसका प्रथम सम्मेलन बुलाया गया और उसमें २५ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। द्वितीय सम्मेलन ५ से १० अक्तूबर, १९६३ में मिश्र की राजधानी काहिरा में स्व० मुहम्मद नासिर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें ४७ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। १९६१ के बाद १९६३ तक मात्र २२ राष्ट्र ही और बढ़े। इस कम सदस्यता का कारण यह था कि विश्व की महा-शक्तियाँ–संयुक्त राष्ट्र संघ एवं सोवियत रूस यह नहीं चाहते थे कि यह निर्गुट-संघ एक शक्ति के रूप में विश्व में उभर कर आए। महाशक्तियाँ विकासशील देशों को धौंस देती थीं कि यदि निर्गुट-संघ में सम्मिलित हुए तो उनकी आर्थिक सहायता बन्द कर दी जाएगी। इसी दबाव के कारण १९६३ में संघ की सदस्य-संख्या मात्र ४७ तक ही रही।

यू०एन०ओ०में सभी निर्गुट-संघ के राष्ट्र सदस्य हैं। कभी यू०एन०ओ० के महासचिव श्री पेरेज-डी-क्वेलर ने निर्गुट राष्ट्र संघ की अध्यक्षा श्रीमती इन्दिरा गाँधी, सोवियत संघ के श्री यूरी आन्द्रोपोव एवं अमेरिका के श्री रोनाल्ड रीगन को विश्व-समस्या पर विचार-विमर्श हेतु एक सम्मेलन बुलाने की योजना

बनाई थी। इस दृष्टि से भारत ने जो विश्व में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है उसका श्रेय स्व० श्रीमती इन्दिरा गाँधी को जाता है।

स्व० श्रीमती इन्दिरा गाँधी यद्यपि कुछ महाशक्तियों के यू०एन०ओ० में वीटो के अधिकार होने से संघ के कार्यों को सम्पन्न कराने में अवश्य कठिनाई अनुभव करती थीं तथापि फिलिस्तीन-समस्या, ईरान-ईराक युद्ध, श्रीलंका की समस्या, ग्रेनेडा की समस्या आदि में अमेरिका एवं ब्रिटेन को निर्गुट–देशों की नीति के समक्ष हार माननी पड़ी।

स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी ने निर्गुट–संघ को जो नेतृत्त्व दिया, विश्व में भारत को जो सम्मानजनक स्थान दिलाया उसके लिए वे चिरस्मरणीय रहेंगी। देश के लिए किए गए महान् कार्यों के लिए सभी भारतवासी उन्हें सदैव श्रद्धा-सुमन अर्पित करते रहेंगे।

—※—

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥
(ऋग्वेद १।८९।१)

हमें सब ओर से भली भावनाएँ (अच्छे विचार) मिलें। उनमें धोखा न हो, उनमें बाधा न हो, वे खुली एवं स्पष्ट हों, उलझी न रहें। तभी देवता हमसे सदा तुष्ट होते हुए प्रतिदिन हमारी रक्षा तथा वृद्धि कर सकेंगे।

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
(ऋग्वेद १।८९।८)

हे देवों! यजनशील हम कानों से भला (कल्याणकारी) सुनें, आँखों से भला देखें। हमारा अंग–अंग स्थिर हो, जिससे हमारे तन बलवान् हों और हम देवहित आयु प्राप्त करें।

बदले सन्दर्भ में पुस्तकालय की भूमिका

—जगदीश विद्यालंकार

आज विश्व में ज्ञान-विज्ञान की अनेक दिशाओं में नित–नूतन शोधकार्य हो रहे हैं। ज्ञान की विभिन्न दिशाओं में आए दिन कुछ न कुछ खोज एवं प्रकाशन-कार्य होता रहता है। विश्व के ज्ञान–भंडार से साहित्य एवं प्रकाशन के माध्यम से जो नई जानकारियों का सिलसिला पुस्तकों, पत्रिकाओं एवं शोध रिपोर्टों के माध्यम से प्रकाशित होता है उसका रख-रखाव किया जाना, सार-संकलन प्रस्तुत करना तथा सम्बद्ध पाठ्य-सामग्री सम्बद्ध शोधार्थी के पास पहुँचा देना, यह सब एक सुसंगत व्यवस्था एवं वैज्ञानिक पाठ्यक्रम का ही अंग होता है, तथा पुस्तकालय–विज्ञान के रूप में इन खोजपूर्ण सामग्रियों को व्यवस्थित रूप से सयोजित करने का दायित्व इस व्यवसाय में लगे पुस्तकालयाध्यक्षों का है। २१वीं शताब्दी की क्रांति में पुस्तकों का सामान्य रख-रखाव पुस्तकालय का मानदेय लक्ष्य नहीं बल्कि विश्व की विभिन्न विषयों में हुई नवीनतम खोज एवं अनुसंधान की सामग्री को सम्बद्ध पाठक तक पहुँचाने की महती जिम्मेदारी पुस्तकालयों की है।

शोध-सामग्री का विपुल भंडार

आज संसार में प्रकाशन का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि हम उसे साहित्य-विस्फोट की संज्ञा दे सकते हैं। एक अनुमान के अनुसार इस भूमण्डल में विभिन्न विषयों की १० लाख पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं तथा एक करोड़ से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। विज्ञान की ही एक-एक शाखाओं में हजारों लेख प्रतिदिन प्रकाशित होते रहते हैं। शोध की इस व्यापक सामग्री का वैज्ञानिक शृंखलाबद्ध नियमन जहाँ शोधकर्त्ताओं के लिये आवश्यक है वहाँ उपलब्ध शोध-साहित्य की नवीनतम जानकारी पाठकों तक पहुँचाने का भी गुरुतर उत्तरदायित्व पुस्तकालय–विज्ञान पर आश्रित है।

१९७० के पश्चात् के पुस्तकालयों के स्वरूप का आकलन आज के परिवेश में पूर्णतः भिन्न है।

कम्प्यूटर-चालित सूचना-पुस्तकालय

कम्प्यूटरों के द्वारा विभिन्न शोध-सामग्रियों एवं आंकड़ों की सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं तथा पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा कम्प्यूटरों द्वारा संगृहीत इन सूचनाओं को एकीकृत करके पुस्तकालय के विषयवार संकलन में प्रतिस्थापित की जाती हैं। विभिन्न प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों, शोध-संस्थानों से हजारों प्रकार की जो शोध-सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं उनका संगठन कम्प्यूटरों के द्वारा किया जा सकता है। आज पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका सूचना-वैज्ञानिक के रूप में होनी चाहिये। सूचना-वैज्ञानिक वह मध्यस्थ कड़ी है जो शोध-सामग्री को शोध-अध्येताओं के साथ योजित करता है। पुस्तकालयाध्यक्ष शोध-सामग्रियों के संचयन, एकत्रीकरण एवं विस्तारण करने वाली प्रक्रियाओं का एक ऐसा उद्गम-स्थल है जिसकी भूमिका पुस्तकों की परम्परागत विषयवार विभाजन की नहीं, बल्कि शोध एवं सूचना वैज्ञानिक के रूप में वांछनीय होती है।

वैज्ञानिक सूचना-प्रसारण सेवा

अब भारत में भी वैज्ञानिक सूचना-प्रसारण केन्द्रों की स्थापना का क्रम आरम्भ हो गया है। हाल ही में पी०टी०आई० द्वारा वैज्ञानिकों एवं शोध-संस्थानों तथा पुस्तकालयों के लिये वैज्ञानिक सूचना-प्रसारण सेवा का प्रारम्भ किया गया है जिसमें भारत की सभी शोध प्रयोगशालाएँ, वैज्ञानिक शोध-संस्थान, प्रौद्योगिक विकास एवं विश्वविद्यालय संगठन भाग ले रहे हैं। समस्त देशों की वैज्ञानिक सूचनाओं को सूचना-प्रसारण सेवा की इस धारा से जोड़ा जाना "एकीकृत वैज्ञानिक सूचना-प्रसारण केन्द्र" के रूप में एक सुखद शुभारम्भ कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त पी०टी०आई० की यह सेवा विदेशी वैज्ञानिक सूचना सेवा से भी सम्बद्ध होने के कारण इस प्रकार की वैज्ञानिक सूचना सेवा का कार्यक्षेत्र और अधिक विस्तृत हो गया है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि पी० टी० आई० जैसी अन्य समाचार-प्रसारण संस्थाएँ भी वैज्ञानिक सूचनाओं को संचित करके विस्तार के कार्य में संलग्न हों तो पूरे देश के वैज्ञानिक वर्ग को शोध-सूचनाओं के तथ्यों एवं आंकड़ों की प्राप्ति हो सकती है। शोध की धारा को निरंतर एवं अनवरत रूप से जारी रखने हेतु यह आवश्यक है कि पुस्तकालयों की कार्य-शैली घिसे-पिटे ढंग से न होकर वैज्ञानिक परिवेश में कम्प्यूटरों पर आधारित होनी चाहिए। पुस्तकालयों की संगठन एवं व्यवस्था की जिम्मेदारी में प्रयुक्त कर्मचारी शोध एवं सूचना वैज्ञानिक के रूप में अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करने योग्य होना चाहिए।

डेटा बैंक की स्थापनाएँ

पुस्तकालय एक ऐसा संस्थान है जो विभिन्न प्रकार से प्राप्त शैक्षणिक एवं शोध सामग्रियों का सचयन, एकीकरण, निबन्धन एवं विस्तारण का कार्य करता है। सभी डेटा बैंकों को समायोजित करता है।

वैज्ञानिक शोध–सूचना केन्द्र

संसार की ज्ञान–सम्पदा में इतनी तेजी से वृद्धि हो रही है कि हमें विभिन्न विषयों में डेटा बैंक की स्थापना का कार्यक्रम तेजी से लागू करना होगा, क्योंकि सम्बद्ध वैज्ञानिक वर्ग को तो चयनात्मक वैज्ञानिक सूचना–प्रसारण सेवा देनी होगी जोकि डेटा बैंक के माध्यम से ही उपलब्ध कराई जा सकती है।

इस प्रकार के कुछ चयनात्मक वैज्ञानिक सूचना–प्रसारण केन्द्र भारत में निम्न रूप में कार्य कर रहे हैं।

१—राष्ट्रिय वैज्ञानिक प्रलेखन संस्थान, नई दिल्ली।
२—वैज्ञानिक सूचना टेप संस्था, नई दिल्ली (आई०एस०आई०)
३—राष्ट्रिय समाज विज्ञान प्रलेखन-संस्थान, नई दिल्ली।
४—प्रलेखन शोध प्रशिक्षण केन्द्र, बैंगलौर (डी०आर०टी०सी०)
५—राष्ट्रिय वैज्ञानिक एवं प्रौद्यौगिक सूचना सेवा केन्द्र।

पेपर प्रिन्ट से इलेक्ट्रोनिक फार्म

अब समय आ गया है कि पेपर प्रिन्ट से प्रकाशित सामग्री को इलेक्ट्रानिक फार्म में रूपान्तरित कर दिया जाये। डेटा बैंक एक ऐसा आधार है जिसका लाभ शोध में संलग्न सभी संस्थानों को मिलना चाहिये। यह सच है कि सम्पन्न संस्थायें वित्तीय साधनों के होने से उन्नत स्तर की वैज्ञानिक सूचनायें एकत्रित करने में अधिक सफल हो जाती हैं। इसलिये राष्ट्रिय स्तर पर डी०एस०टी०, यू०जी०सी०, राष्ट्रिय इलेक्ट्रोनिकी सूचना आयोग, वैज्ञानिक एवं औद्यौगिक कार्य परिषद्, राष्ट्रिय विज्ञान प्रलेखन-संस्थान आदि के सहयोग से ही वैज्ञानिक सूचना सेवाओं का एकीकृत समन्वित क्षेत्र विकसित हो सकेगा। आज देश को ऐसी सुसंगत व्यवस्था की आवश्यकता है।
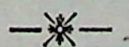
उद्‌बोधन

प्रस्तुतकर्त्ता—त्रिलोकचन्द्र

आज मुझे प्रौढ़शिक्षा–प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण-कार्य-क्रम का उद्‌घाटन करने में अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है । शायद आपको ज्ञात हो आज का दिन एक ऐतिहासिक दिन है। आज के दिन महान् स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी बालगंगाधर तिलक ने महासमाधि ली थी। बालगंगाधर तिलक वह अमर सेनानी थे जिन्होंने हमें यह मन्त्र दिया था कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है; मैं उसे लेकर रहूँगा। आइये उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए दो मिनट का मौन रखें।

वे कोमें जो अपने पूर्वजों को याद नहीं रखती, जिन्दा नहीं रहती। हम जब विद्यार्थी थे तो हम अपने देश के नेताओं की जन्म–तिथियाँ मनाते थे, उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में सामूहिक चर्चा करते थे ताकि हमें उनकी जीवनियों से प्रेरणा प्राप्त हो कि उन्होंने हमारे लिए, आगे आने वाली पीढ़ी के लिए क्या कुछ नहीं किया। मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब आप लोगों में भी अपने महान् नेताओं की, महान् वैज्ञानिकों की, महान् दार्शनिकों की जीवनियाँ पढ़ने का शौक आयेगा।

हमारे पूर्वजों ने आज़ादी की प्राप्ति के लिए ५० वर्ष (१८९८-१९४६) तक युद्ध किया। उन्होंने क्या-क्या बलिदान दिये ? क्या-क्या कुर्बानियाँ दीं ? क्या-क्या कष्ट उठाये ? मैं चाहूँगा कि आप सब लोग उनसे अभिज्ञ हों। आप में से कितनों को मालूम है कि १५ अगस्त को श्री अरविन्द का जन्मदिन है, ५ सितम्बर डा० राधाकृष्णन् का जन्मदिन है, ११ सितम्बर को आचार्य विनोवा भावे का जन्मदिन है। ३ दिसम्बर को डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का जन्मदिन है। ९ दिस० को रामदेव–दिवस है, १७-१८-१९ को काकोरी काण्ड के अमर क्रांतिकारियों के बलिदान दिवस हैं। इसके बाद २३ दिस० स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस आता है। २१ जनवरी सुभाषचन्द्र की जन्मतिथि है। इसी प्रकार वे महान् घटनायें जिनसे विश्व आश्चर्यचकित रह गया है—जैसे १९ अप्रैल को

श्री बलभद्रकुमार हूजा, कुलपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा १ अगस्त, १९८३ को प्रौढ़–शिक्षा–प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण कार्य-क्रम के उद्‌घाटन पर दिया गया भाषण ।

आर्य-भट्ट छोड़ा गया था, आदि-आदि। मैं चाहूँगा कि आप स्वयं भी इन तिथियों के महत्त्व को जानें तथा प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत जिनको आप शिक्षा दें उन्हें भी इन तिथियों में जन्में अथवा शहीद हुए व्यक्तियों के कार्यों, उपलब्धियों, उनके सामने आई कठिनाइयों के बारे में बतलाए ताकि वे भी इन महान् व्यक्तियों से प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

आपने एक बहुत बड़े कार्य का बीड़ा उठाया है। यह कार्य केवल आजीविका प्राप्त करने का नहीं है। मात्र सौ रुपये माहवार वज़ीफा प्राप्त किया और आपके कार्य की इतिश्री हो गयी। नहीं, यह एक क्रान्तिकारी कार्य है। आप सबको क्रान्तिकारियों की भाँति इसमें जुटना होगा। मैं जानता हूँ कि यह एक मुश्किल कार्य है लेकिन असम्भव नहीं है। किसी भी कार्य को करने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। साहस से ही मुश्किल कार्य आसान होता है। जितना आप में साहस होगा उतना ही कार्य आसान होगा। उत्तम मनुष्य वही है जो कार्य को आरम्भ करके बीच में नहीं छोड़ता। हमारा यह ध्येय होना चाहिये कि इस शताब्दी के अन्त तक हम पूर्णरूपेण निरक्षरता को समाप्त कर दें और जब २१वीं शताब्दी में प्रवेश करें तो हमारा एक नया अध्याय शुरु हो। हम सब शिक्षित हों, हम सब साक्षर हों, हम सब में विवेक हो, हम सब उर्ध्वगामी हों।

इस समय हमारे देश में ४५ करोड़ व्यक्ति निरक्षर हैं, अनपढ़ हैं। कल्पना कीजिए कि आपके ५ व्यक्तियों के परिवार में ४ व्यक्ति अनपढ़ हों, निरक्षर हों, उस परिवार की समाज में क्या इज्जत होगी? उस परिवार की क्या शक्ति होगी? उस परिवार की क्या आर्थिक स्थिति होगी? इसके विपरीत जिस परिवार में ५ में से ५ सदस्य साक्षर हैं, पढ़े-लिखे हैं उस परिवार की समाज में क्या इज्जत होगी, उस परिवार की क्या शक्ति होगी? इसी प्रकार हमारा देश भी एक परिवार है। इस परिवार में यदि आधे से अधिक व्यक्ति निरक्षर हैं तो विश्व के अन्य देशों के सामने हमारी क्या इज्जत है? हमारी क्या शक्ति है? हमारी क्या आर्थिक स्थिति है? और फिर इस निरक्षरता के समुदाय में ५० लाख प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि होती जा रही है।

आश्चर्य की बात यह है कि हम सुरक्षा को छोड़कर सबसे अधिक व्यय शिक्षा पर कर रहे हैं अर्थात् ३००० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष। आइये आज संकल्प लें कि सन् २००० में भारतवर्ष में कोई भी अशिक्षित न रहेगा।

आर्यसमाज का नवम् नियम है कि प्रत्येक को अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

हमें एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर बढ़ना है। हमारे जो साथी पीछे छूट गये हैं उन्हें आगे बढ़ाना है ताकि वे समाज पर, देश पर बोझ न बनें। हम और आप सौभाग्यशाली हैं कि हमें विद्यालयों में, विश्वविद्यालयों में पढ़ने-लिखने का अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन क्या हमारा अपने उन भाइयों के प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं जो किसी कारणवश प्राइमरी स्कूलों तक भी नहीं जा पाये ? क्या कभी आपने सोचा है कि जब हम विद्यालयों, महाविद्यालयों में अध्ययनरत थे तो उस समय इसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हमें उनकी भी सहायता मिली थी और इस प्रकार हम उनके ऋणी हैं। आइये, उन्हें भी साक्षर बनाकर उऋण हो जायें।

जैसाकि मैंने आपसे पहले कहा कि प्रौढ़–शिक्षा के प्रशिक्षक का कार्य वज़ीफा लेकर अपने कार्य की इतिश्री समझना ही नहीं है अपितु यह एक क्रान्तिकारी कार्य है। मैं आप लोगों के इस क्रान्तिकारी मार्ग पर चलने के शुभारम्भ का स्वागत करते हुए आगाह करना चाहूँगा कि आप जब अपने कार्य-क्षेत्र में पहुँचेंगे तो आपके सम्मुख कई प्रकार की कठिनाइयाँ आयेंगी। कई बार आप निराश होंगे, तो कई बार आपको आत्मिक शान्ति प्राप्त होगी। आप अपने विद्यार्थियों को इस प्रकार पढ़ाइये कि वे इसे एक बोझ, समय बरबाद करने वाली चीज न समझें बल्कि उन्हें इसमें आकर्षण प्राप्त हो। उनके सामान्य ज़ीवन में इस प्रकार हिल–मिल जाइये कि वे आपको अपने समाज का एक अनिवार्य अंग समझने लगे। उनके सामूहिक कार्यों में शामिल होइये, शाम को उनकी चौपालों में बैठिये। संगीत के द्वारा उनको हँसते-खेलते हुये शिक्षा दीजिये जिससे उन्हें स्वयं अनुभव हो कि साक्षर होना कितना अनिवार्य है। उनके मन को जगाइये कि साक्षरता एक अनिवार्य लक्ष्य है। कुछ ऐसा कीजिये कि आपको उनकी इन्तजार न करनी पड़े कि कब आपके विद्यार्थी आयें बल्कि वे स्वयं आपकी इन्तजार करें कि कब आप उनके मध्य पहुँच कर उनका ज्ञानवर्धन करें।

दूसरा आवश्यक कार्यक्रम है स्वच्छता का। स्वच्छता के प्रति भी उनको जागरूक करिये। जिस केन्द्र में आप शिक्षा दे रहे हैं, दूर से ही पता लगे कि यहाँ प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम चल रहा है। गाँधीजी के आश्रम में प्रवेश पाने की पहली शर्त थी कि आपको आश्रम में मल भी उठाना पड़ेगा। स्वच्छता से जहाँ आत्मिक सन्तुष्टि होती है वहाँ स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। गाँव में कुछ इस प्रकार के कार्यक्रम बनाइये, कुछ दैनिक, कुछ साप्ताहिक, कुछ मासिक। आप जिस गाँव में पढ़ा रहे हैं उस गाँव की गलियाँ और सड़कें सप्ताह में एक बार अवश्य साफ हों। उस गाँव के तालाब, कुँए मास में एक बार अवश्य साफ हों, उनमें दवाई इत्यादि छिड़की जाए।

तीसरी चीज है वृक्षारोपण। मैं चाहूँगा कि जिस केन्द्र में आप पढ़ा रहे हैं उस केन्द्र का प्रत्येक शिक्षार्थी और बल्कि उस शिक्षार्थी के परिवार का प्रत्येक सदस्य हर वर्ष एक पेड़ लगाये। गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ने पिछले दो–तीन वर्षों में इस दिशा में यथेष्ट प्रगति की है। गत वर्ष यहाँ वन-महोत्सव के अवसर पर 'चिपको आन्दोलन' के महान् नेता श्री सुन्दरलाल बहुगुणा भी पधारे। वृक्षारोपण से जहाँ व्यक्तिविशेष की धन–सम्पति में वृद्धि हागी वहाँ उसकी और उसके आसपास की आबोहवा भी स्वच्छ होगो। चारों ओर सुगन्धि का वातावरण होगा।

अन्त में मैं आप लोगों से एक प्रश्न पूछना चाहूँगा। मुझे मगध विश्व–विद्यालय से १०–११ सितम्बर को अखिल भारतीय साक्षरता दिवस के अवसर पर होने वाले सम्मेलन में भाग लेने हेतु आमन्त्रित किया गया है। मुझसे चाहा गया है कि भारत में शत-प्रतिशत साक्षरता कैसे हो, इस विषय पर अपने विचार लिख कर भेजूँ। अपने विचार तो मैंने उन्हें लिखकर भेज दिये हैं लेकिन मैं चाहूँगा कि आप भी इस प्रशिक्षण शिविर में इस विषय पर अपने विचार स्थिर करें और मुझे उनसे अवगत कराएँ ताकि मैं उन्हें मगध विश्व–विद्यालय को भेज सकूँ।

—*—

स्वस्ति न पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति न पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥

(ऋग्वेद १०।६३।१५)

हे मरुतों! हमें विस्तृत मार्गों पर, मरुस्थलों में, जलयुक्त प्रदेशों में, सुन्दर वसतिओं में और सन्ततिवर्धक गृहों में स्थापित करो, जिससे हमारी समृद्धि हो।

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम	— **"नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती"**
लेखक	— **डॉ० भवानीलाल भारतीय**
प्रकाशक	— वैदिक पुस्तकालय, परोपकारिणी सभा, दयानन्दाश्रम, अजमेर
मूल्य	— ४० रुपये
समीक्षक	— बलभद्रकुमार हूजा

डॉ० भारतीय द्वारा रचित—"नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती" मैं दो ही दिन में आद्योपान्त पढ़ गया। आपने जिस परिश्रम से यह अनुसंधान किया है और जिस दिलेरी से अपने विचारों को प्रकट किया है, उसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

स्वामी जी ने अपने तीन वर्ष (१८५७-६०) के अज्ञातवास पर कोई प्रकाश नहीं डाला इसका कारण यह भी हो सकता है कि वह यदि ऐसा करते तो तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारियों के कोप का शिकार होते और देश के उत्थान का जो लक्ष्य उन्होंने अपने सामने रखा था उसमें यथेष्ट योग न दे सकते।

इस पुस्तक में यह भी संकेत है कि जब उन्होंने जोधपुर राजा को ब्रिटिश सरकार के किसी पत्र का उत्तर देने के लिए प्रेरणा दी तो उससे वे ब्रिटिश सरकार के कोपभाजन बने।

अलबत्ता यह अनुसंधान का विषय है कि तत्कालीन जोधपुर–नरेश उनसे राज-काज के सम्बन्ध में परामर्श लिया करते थे अथवा नहीं। वैसे तो जो अन्यमनस्कता जोधपुर-नरेश ने प्रवास में दिखलाई उससे तो ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उन्होंने स्वामी जी से परामर्श लिया हो।

डॉ० भारतीय के अनुसंधान से यह स्पष्ट है कि स्वामी जी सत्य को ग्रहण करने के लिए सर्वदा उद्यत रहते थे। जब कभी उनके अपने पूर्व विचार त्याज्य

हो जाते थे तो वे किसी प्रकार के पूर्वाग्रह के बिना अपने विचारों को सत्य और न्याय के अनुसार परिष्कृत करने में हिचकिचाते नहीं थे।

आपने यह भी स्पष्ट किया कि स्वामी जी अपने अनुयायियों में किसी प्रकार की त्रुटि को सहन नहीं करते थे। वे उन्हें सदाचारी और संयमी देखना चाहते थे इसी कारण उन्होंने मुंशी बख्तावर सिंह, इन्द्रमणि और कर्नल अलकॉट को उनकी त्रुटियों के कारण अपने से अलग कर दिया। वे जोधपुर नरेश जैसे शक्तिशाली राजा का क्षत्रियोचित व्यवहार न देखकर रुष्ट हुए और उन्होंने अपना रोष निर्भीकता से प्रकट किया। उदयपुर नरेश ने उन्हें मूर्तिपूजा का खण्डन न करने के उपलक्ष में एकलिंग जी की गद्दी देने का प्रस्ताव रखा तो स्वामी जी ने कहा कि मैं मेवाड़ प्रदेश को तो एक छलांग में छोड़ सकता हूँ लेकिन भगवान् के राज्य को किस प्रकार छोड़ूँगा।

डॉ० भारतीय की यह पुस्तक साधक, गुरुजन और शिष्यों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

कहना न होगा गुरुवर विरजानन्द के जीवन पर भी इसी प्रकार के अनुसंधान की आवश्यकता है। क्या डॉ० भारतीय के द्वारा यह कार्य भी सम्पन्न हो सकेगा ?

★

शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥
(यजुर्वेद ३६।१०)

वायु हमारे लिए सुखकारी होता हुआ चले। सूर्य हमारे लिए सुखकारी होता हुआ चमके। गरजता हुआ मेघ हमारे लिए सुखकारी होता हुआ बरसे।

पुस्तक का नाम — **वेदों में योग-विद्या**

लेखक — **श्री योगेन्द्र पुरुषार्थी**

प्रकाशक — यौगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर (हरिद्वार)

पृष्ठ — ४०८

समीक्षक — जगदीश विद्यालंकार

"जन्म-जन्मान्तरों के शुभाशुभ संस्कार मानव के जीवन को उत्कर्ष तथा अपकर्ष की ओर अभिमुख करते रहते हैं। पूर्व सञ्चित संस्कारों को जिस प्रकार की अभिप्रेरक प्रेरणायें प्राप्त होती हैं, मानव का जीवन लक्ष्य भी तदनुरूप बनता चला जाता है" उक्त शब्दों के साथ उपर्युक्त ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हुये लेखक ने योग के दार्शनिक स्वरूप को जीवन के मूलभूत तत्त्वों के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। लेखक का यह दृढ़ मत है कि सतत् अभ्यास एवं अनुशीलन से, संस्कारों के सतत् आरोपण से, जीवन की पवित्रता निरन्तर योग एवं क्षेम की ओर अपनी जड़ें जमा लेती है। योग की अन्तिम परिणति, जो परम शान्ति है, वह प्रत्येक मानव को अपेक्षित है, लेकिन अनेक प्रकार के मत-पंथों में विभिन्न प्रकार की प्रचलित पूजा-प्रथाओं, आराधनाओं एवं उपासनाओं के मिश्रित क्रम ने योग के आधार भूतलक्ष्य को ओझल कर दिया। लेखक ने अपनी इस पुस्तक में योग के इस महान् ध्येय को बार-बार पाठकों को दिग्दर्शित कराने का प्रयत्न किया है। विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर पाठकों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि योग का आधार वैराग्य एवं ईश्वर अर्पण है। राग-द्वेष से लिप्त, सामान्य-जन परम शान्ति के उस अजस्र स्रोत की अनुभूति तब तक नहीं कर सकते जब तक वैराग्य के द्वारा उससे निवृत्ति न प्राप्त कर लें। शायद इस रूप का साक्षात्कार लेखक ने अपने जीवन में करने का प्रयत्न किया, क्योंकि लेखकीय परिचय से विदित होता है कि लेखक वीतरागी संन्यासी है।

आलोच्य ग्रन्थ लेखक के पांच वर्ष के निरन्तर शोध का प्रतिफल है तथा प्रस्तुत ग्रन्थ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में पी-एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत भी किया गया है।

उपर्युक्त ग्रन्थ का प्रतिपादन लेखक ने आठ अध्यायों में विभाग करके करने का प्रयत्न किया है। प्रारम्भ में विषय प्रवेश देते हुए लेखक ने शरीर-विज्ञान को आधार मानकर तीन प्रकार के शरीर पञ्चकोश, नाड़ी-मण्डल, अष्ट-चक्र आदि का विवेचन किया है। लेखक का उक्त विवेचन विषय-वस्तु को देखते हुए अत्यन्त प्रासंगिक एवं सारगर्भित परिलक्षित होता है।

लेखक ने इस ग्रन्थ में प्रणायाम पर विस्तृत प्रकाश डाला है । योग साधना की आधारभूत प्रतिक्रियाओं में प्रणायाम, प्रणायाम-कोश, ध्यानविधि, प्राणविद्या आदि का वैदिक ग्रन्थों के आधार पर किया सुसंगत विवेचन, पुस्तक के गाम्भीर्य को उच्च स्तर पर प्रस्थापित करने में सहयोग देता दिखलाई पड़ता है ।

विषय-वस्तु के प्रतिपादन में लेखक के द्वारा वैदिक-साहित्य के मूल ग्रन्थों को बहुमुखी रूप से, उपयोग में लेने से पुस्तक का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है । योग-साधना की प्रत्येक सीढ़ी का विश्लेषण भारतीय मानक-शास्त्रों के आधार पर लेखक के द्वारा किये जाने से पुस्तक की प्रामाणिकता में चहुँमुखी वृद्धि हुई है ।

पुस्तक में पञ्च कोशों की विस्तृत भूमिका को जीवन-तत्त्व के सन्दर्भ में लेखक ने चार अध्यायों के द्वारा प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि साधक इन पंच-कोशों के कार्य को समझ कर ही योग का सच्चा पथिक बन सकता है ।

वेदों में योगाङ्गों के सम्बन्ध में अपने अनेक विचारों को चिन्तन हेतु उपस्थित करते हुए लेखक ने योग-मार्ग के जिज्ञासु साधकों को यह समझाने का दृढता से प्रयत्न किया है कि जीवन-सागर में योग का कार्यक्रम यम एवं नियम की नाव से ही पार लगाया जा सकता है । आचरण की महानता एवं योग-साधना की सफलता का अटूट सम्बन्ध है ।

जीवन के चरम उद्देश्य-पथ पर योग मार्ग के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है । इस मान्यता का पृष्ठ पोषण लेखक ने इस पुस्तक में अत्यन्त तार्किक एवं प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने का यत्न किया है ।

पुस्तक में विषय-विश्लेषण की भाषा प्रामाणिकता के आधार पर बंधी हुई है । कहीं-कहीं योग की अपेक्षा अनुभूति को शब्द-चित्रों के द्वारा अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है । पुस्तक में योग के व्यवहारिक स्वरूप को समझाने में कम ध्यान दिया है । योग के तात्त्विक एवं दार्शनिक स्वरूप अन्वेषण का ही ग्रन्थकार ने प्रयत्न किया है ।

ग्रन्थकार द्वारा हजारों प्रमाणसामग्री पर आधारित विषय वस्तु का विवेचन जिस प्रकार से किया गया है उससे यह ग्रन्थ योग में किञ्चित भी रुचि रखने वाले पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा । ★

पुस्तक का नाम	— **संस्कृत–साहित्य में राष्ट्रिय–भावना**
लेखक	— **डॉ० हरिनारायण दीक्षित**
प्रकाशक	— देववाणी परिषद् दिल्ली, ६ वाणी विहार, नई दिल्ली ११००५९
मूल्य	— १५० रुपये
पृष्ठ संख्या	— २२+५९४
समीक्षक	— डॉ० राकेश शास्त्री

किसी भी देश अथवा राष्ट्र की उन्नति एवं सुरक्षा के लिए उस देश के नागरिकों में राष्ट्रिय भावना का होना अनिवार्य है। इसके अभाव में कोई भी राष्ट्र सुरक्षित नहीं रह सकता और न ही आज के प्रगतिवादी युग की दौड़ में विकासशील देशों के साथ चल सकता है। जापान इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है वहाँ के देशवासियों में अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम है, अतः उनका प्रत्येक क्षण अपने देश को समर्पित है। यही कारण है कि द्वितीय विश्वयुद्ध की तबाही के पश्चात् भी वह देश आज के प्रगतिशील देशों की अग्रिम पंक्ति में खड़ा होने में सक्षम हो सका है, जबकि उस देश का विस्तार और जनसंख्या भी अधिक नहीं है।

किसी देश के नागरिकों में राष्ट्रिय-भावना के विकास में उस देश के साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी जाति का साहित्य उसकी अमूल्य निधि होती है। हमारा संस्कृत–साहित्य हम सब भारतीयों के लिए विश्व के समक्ष अपना मस्तक ऊँचा कराने में सक्षम है। यह सभी दृष्टियों से समृद्ध है। कुछ आलोचकों द्वारा संस्कृत–साहित्य में राष्ट्रिय–भावना के अभाव की बात कही जाती है, किन्तु उक्त पुस्तक में लेखक ने संस्कृत–साहित्य के इस पक्ष को उभारने का सफल प्रयास किया है। इस पुस्तक को पढ़कर पाठक इस बात से अवगत हो जाता है कि हमारे प्राचीन एवं अर्वाचीन कवि राष्ट्रिय–भावना से रहित नहीं थे। उन्होंने अपने साहित्य को राष्ट्रिय–भावना से आप्लावित किया है।

पुस्तक को लेखक ने सात अध्यायों में विभक्त किया है तथा षष्ठ अध्याय का कलेवर अन्य अध्यायों की अपेक्षा अत्यधिक बड़ा, लगभग २६९ पृष्ठों में फैला हुआ है। इस अध्याय में लेखक का प्रयास रहा है कि अधिकाधिक अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य में राष्ट्रिय-भावना की प्रस्तुति की जाए, इस लोभ का लेखक संवरण नहीं कर सका है। यदि इस अध्याय को पुस्तक का हृदय कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। इस अध्याय के लिखने में लेखक ने अथक् परिश्रम किया

है तथा मौलिकता की दृष्टि से भी यह अध्याय अनुपम है। इसमें लेखक ने लगभग दो सौ अर्वाचीन कृतियों में राष्ट्रिय-भावना की प्रस्तुति करने का सफल एवं स्तुत्य प्रयास किया है।

इसके अतिरिक्त प्रथम अध्याय में राष्ट्र, राष्ट्रियता, राजा-राज्य, राजभक्ति, राजतन्त्र, प्रजातन्त्र, आदि पारिभाषिक शब्दों पर मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करते हुए प्रसिद्ध कोशों को प्रमाणरूप में प्रस्तुत किया है। द्वितीय अध्याय में वेद-प्रतिपादित राष्ट्रिय-भावना का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए उसमें राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रिय मंगल-कामना का अवलोकन किया है।

इस ग्रन्थ का तृतीय अध्याय पुराणों में राष्ट्रिय-भावना विषय के प्रतिपादन के लिए लिखा गया है। किन्तु पुराणों के विस्तार एवं गहनता को देखते हुए लेखक ने विषय को संक्षेप में समेटने का प्रयास किया है। यदि इस प्रयास को पुराणों में राष्ट्रिय-भावना का सिंहावलोकन मात्र कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। वैसे तो शोध की दृष्टि से पुराणों में राष्ट्रिय-भावना विषय ही अपने आप में अपेक्षित विस्तार की अपेक्षा करता है; किन्तु लेखक ने संस्कृत-साहित्य में राष्ट्रिय-भावना जैसे विस्तृत विषय को लिया है। अतः उस दृष्टि से लेखक को उतनी गहराई में जाने का अवसर नहीं मिल सका है।

चतुर्थ अध्याय में रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में राष्ट्रिय-भावना का अन्वेषण लेखक ने किया है; किन्तु यहाँ भी सम्भवतः ग्रन्थ के कलेवर का लेखक को अधिक ध्यान रहा है। अतः विषय का गहन प्रतिपादन नहीं हो सका है। अन्तिम सप्तम अध्याय में लेखक ने भरतवाक्यों में राष्ट्रिय-भावना का प्रतिपादन सफलतापूर्वक किया है; यह लेखक के सूक्ष्म एवं मौलिक चिंतन का परिचायक है।

ग्रन्थ के उपसंहार में लेखक ने संक्षेप में अपनी सम्मति प्रस्तुत की है। अन्त में दिए गए परिशिष्टों से ग्रन्थ की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ गयी है। प्रथम परिशिष्ट में संस्कृत-साहित्य की राष्ट्रिय-भावनात्मक सूक्तियों का संकलन लेखक के अभूतपूर्व परिश्रम का परिणाम है। द्वितीय परिशिष्ट में शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत उल्लिखित कृतियों एवं लेखकों की अकारादिक्रम से सूची दी गई है। तृतीय परिशिष्ट सहायक ग्रन्थ सूची के रूप में है।

ग्रन्थ सुन्दर एवं पठनीय है, विशेष रूप से प्रत्येक संस्कृत-अध्येता के लिए संग्रहणीय भी। ग्रन्थ की छपाई, कागज एवं मुख्य-पृष्ठ भी आकर्षक बन पड़े

गुरुकुल—समाचार

प्रस्तुतकर्ता —राकेश शास्त्री

डॉ० श्रीमती माधुरी शाह विश्वविद्यालय—प्रांगण में

१३ अक्टूबर, ८४ का दिन विश्वविद्यालय के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा जब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षा श्रीमती डॉ० माधुरी शाह गुरुकुल कांगड़ी में पधारीं। विश्वविद्यालय के संग्रहालय तथा पुस्तकालय को देखकर तथा उनके क्रियाकलाप का निरीक्षण कर उन्होंने संतोष व्यक्त किया। शिक्षकों तथा शिक्षकेतर कर्मचारियों की सभा में श्रीमती शाह का स्वागत करते हुए कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा ने विश्वविद्यालय द्वारा संचालित गतिविधियों का परिचय श्रीमती माधुरी शाह को दिया।

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच स्वागत भाषण का उत्तर देते हुए श्रीमती शाह ने कहा कि विश्वविद्यालय में व्याप्त हिंसा और अस्थिरता को समाप्त कर यहाँ अनुशासित, शान्त रहने योग्य तथा पढ़ने-पढ़ाने योग्य जो वातावरण आपने बनाया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। इस संस्था ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान तथा समाज निर्माण के कार्यक्रमों में जो योग—दान दिया है, अब भी हमारा लक्ष्य उसी के अनुरूप होना चाहिये। आपके कार्यक्रमों मे सदा की भांति प्राचीन परम्परा तथा आधुनिकता का समन्वय होना चाहिये। आप सुनिश्चित करें कि गुरुकुल की अवधारणा क्या है। उसी के अनुसार इसके परिसर का निर्माण तथा शैक्षिक परिवेश का रूप स्थिर किया जाना चाहिये। मानव व्यक्तित्व और जीवन की अभिन्नता के समान ही संस्था के व्यक्तित्व में भी एकरूपता होनी चाहिए पर यह धारणा इतनी लचीली होनी चाहिए कि इसमें युगानुरूप तथा समय की मांग के अनुसार परिवर्तन की सम्भावना बनी रहे। आप अपने लक्ष्य को तय कर लें तथा २५ वर्ष की योजना बनाकर अनिवार्य विकास की दिशा में आगे बढ़ें। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए क्रमशः चरणों को निश्चित करें तथा वरीयता के आधार पर कार्यों की सूची बनाएँ। जिस मद में जो धनराशि स्वीकृत हुई है उसका उसी मद में उपयोग करें।

गुरुकुल वैदिक साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान में यह कार्य कर सकता है जो दूसरे स्थानों पर सम्भव नहीं। अतः यहां वैदिक-साहित्य का अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन केन्द्र स्थापित हो। प्राचीनदुर्लभ ग्रन्थों और पाण्डुलिपियों के संरक्षण के लिए माईक्रो फिल्म की व्यवस्था हो तथा देश-विदेश से अध्ययनार्थ आने वाले विद्यार्थियों के रहने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-भवन का निर्माण कराया जाय।

मैं नहीं चाहती कि यहाँ भी अन्य विश्वविद्यालयों के घिसे पिटे पाठ्य-क्रम चलें। गुरुकुल की निजता की पहचान होनी चाहिये। अन्य विश्वविद्यालयों से इसका पृथक् व्यक्तित्व कैसे विकसित हो यह आपको सोचना है। शिक्षा का व्यवसायपूरक रूप भी आपको ध्यान में रखना होगा। शिक्षा को जीवन और व्यावहारिक यथार्थ से भिन्न करके नहीं देखा जा सकता।

आपने हरिद्वार में स्त्री-शिक्षा की जो मांग की है उसके लिए हम सहा-यता देंगे; पर उसके रूप पर भी खूब सोच समझ लेना चाहिए। उसके लिए पाठ्यक्रम ऐसे हों जो उनके दैनिक जीवन के लिए उपयोगी हों। उनके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहायक हों। विज्ञान विषय के अध्ययन में भी आपको जन–जीवन की उपेक्षा नहीं करनी है। हम आपको तकनीकी अध्ययन के लिए कम्प्यूटर जैसी सभी सुविधायें देने के लिये तैयार हैं।

अपने स्वागत भाषण में कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने कहा कि विश्वविद्यालय के शैक्षिक वातावरण को समुन्नत करने के लिये विभिन्न विषयों के राष्ट्रीय स्तर के विद्वानों को यहां आमन्त्रित किया जाता है। विज्ञान को साधारण जनोपयोगी बनाने के लिये हिन्दी में आर्यभट्ट, अंग्रेजी में वैदिक-साहित्य के अध्ययन के प्रचार के लिए वैदिक-पाथ, शोध कार्य को गति देने के लिए 'प्रह्लाद' और गुरुकुल-पत्रिका के प्रकाशन के साथ शोध-प्रबन्धों तथा प्रसार-व्याख्यानों से हमने शिक्षा के रचनात्मक तथा व्यावहारिक पक्ष को उजागर किया है। शिक्षक-प्रोन्नति-योजना की क्रियान्विति से भी यहां के गुरुजन का मनोबल बढ़ा है।

भारतीय शिक्षा के आदर्शों को ध्यान में रखकर आधुनिक शिक्षा की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए जहां हमने वैदिक शिक्षा कार्यशाला, मानव मूल्य तथा समाज में अन्तःसम्बन्ध, अमेरिकन साहित्य संस्कृति सम्मेलन जैसे राष्ट्रीय स्तर के समारोह आयोजित किए हैं, वहां अन्तर्राष्ट्रीय-योग-केन्द्र, गंगा-प्रदूषण एवं पर्यावरण अध्ययन योजना, काँगड़ी-ग्राम-विकास-योजना तथा प्रौढ़-शिक्षा के कार्य को भी हम आगे बढ़ा रहे हैं।

आर्य समाज स्त्री-शिक्षा के कार्य में सदा अग्रणी रहा है। हरिद्वार में उच्चतर स्त्री-शिक्षा की सुविधा गुरुकुल कांगड़ी उपस्थित करना चाहता है, लेकिन वि० वि० परिसर से बाहर। क्योंकि हम सह-शिक्षा के पक्ष में नहीं हैं। इसकेलिए प्रधान विधानसभा ने अन्य स्थान उपलब्ध कराने का आह्वान दिया है। अब वि०वि० से स्टाफ इत्यादि हेतु सहायता अपेक्षित है। आशा है आप हमारे प्रस्ताव पर सहानभूतिपूर्वक विचार करेंगे। इसके अतिरिक्त हमारा यह प्रस्ताव है कि विश्वविद्यालय के अंगभूत गुरुकुल कन्या महाविद्यालय देहरादून की अध्यापिकाओं को भी यू०जी०सी० का वेतनमान दिया जाना सर्वथा न्यायपूर्ण है। देहरादून के सभी महाविद्यालयों के शिक्षकों को यह वेतनमान दिया जा रहा है तो क्यों केवल कन्या गुरुकुल की अध्यापिकायें इससे वंचित रहें ?

इसी प्रकार हम स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास और भारतीय पुनर्जागरण की गतिविधियों का पुनर्लेखन करना चाहते हैं। इस उद्देश्य से लाजपतराय चेयर की तो अनुदान आयोग ने स्वीकृति दी है किन्तु इसके लिए स्टाफ की स्वीकृति भी आपको देनी है।

आपने विज्ञान के अध्ययन के लिए कम्प्यूटर देने का सुझाव भी दिया था उसके मिलने से हम आधुनिकतम अध्ययन प्रणाली तथा तकनीक के निकट खड़े हो जायेंगे।

प्रोफेसर क्वाटर्स तथा शिक्षकेतर कर्मचारियों के क्वाटर्स के निर्माण के कार्य में भी आपसे अतिरिक्त अनुदान राशि हमें अपेक्षित है।

इस वर्ष हम सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् डॉ० जोर्डन को दीक्षान्त भाषण के लिए आमन्त्रित कर रहे हैं। इन्होंने स्वामी दयानन्द तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी पर अंग्रेजी में महत्त्वपूर्ण शोध-ग्रन्थ लिखे हैं जिनकी चर्चा सभी अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में हुई है।

श्रीमती शाह का भाव-भीना स्वागत करते हुए कुलपति जी ने कहा कि आपके आने से हमारे शिक्षकों और कर्मचारियों को प्रेरणा मिली है। वे अपने सुखद भविष्य और आगामी कार्य-क्रम के लिए आश्वस्त हुए हैं तथा गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली की सार्थकता के लिए हर क्षण जुटे रहने का संकल्प लेते है।

काँगड़ी-ग्राम-विकास–योजना

काँगड़ी ग्राम में मकानों का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो चुका है। ऋण देने से व्यक्तियों को जो लाभ हुआ उससे प्रोत्साहित होकर अन्य ग्रामवासियों ने भी इस सुविधा से लाभ उठाने के लिए अपने प्रार्थना-पत्र दिए। २५ अक्तूबर को काँगड़ी ग्राम में अनेक मकान आग लगने से नष्ट हो गये। मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा, डॉ० विजयशंकर, अध्यक्ष, वनस्पतिविज्ञान-विभाग एवं विजिटिंग प्रोफेसर डॉ० आर०सी० अग्रवाल क्षतिग्रस्त मकानों एवं परिवारों के निरीक्षण हेतु काँगड़ी ग्राम गये तथा उस सम्बन्ध में प्रभावित परिवारों से बातचीत की। तदनन्तर डॉ० विजयशंकर तथा श्री आर०सी० शर्मा, विशेषाधिकारी, बिजनौर तथा नजीबाबाद में जिला मजिस्ट्रेट, एस०डी०एम० तथा बी०डी०ओ० से मिले और उन्हें आगजनी की इस घटना से परिचित कराया। अधिकारियों से उक्त वार्ता के फलस्वरूप प्रभावित परिवारों को सरकार द्वारा सहायता-राशि वितरित की गयी।

इसके अतिरिक्त काँगड़ी ग्राम में पक्की सड़क की मरम्मत, बाढ़ की रोकथाम, काँगड़ी से पीली तक के ग्रामों में विश्वविद्यालय की ओर से विकास-कार्यक्रम प्रारम्भ करने आदि विषयों पर भी उक्त अधिकारियों ने जिला मजिस्ट्रेट से बात की तथा गंगा-समन्वित योजना की ओर से भी डॉ० विजयशंकर ने उक्त ग्रामों को सिद्ध-स्रोत तथा अन्य बरसाती नाले एवं गंगा से होने वाले भूमि-कटाव से जिला मजिस्ट्रेट को परिचित कराया और **चैकडैम** (ठोकर) बनवाने के लिए प्रार्थना की।

गंगा-समन्वित-योजना

इस योजना के अन्तर्गत गंगा एवं अन्य धाराओं से भूमि-कटाव को रोकने के लिए वृक्षारोपण का जो कार्यक्रम गंगा के बाएँ और दायँ किनारों पर स्थित ग्रामों में सम्पन्न हुआ था, उसका निरीक्षण करने पर पता चला कि गंगा के दाएँ किनारे पर स्थित ग्राम जगजीतपुर में यह अभियान सफल रहा, जबकि बाएँ किनारे पर काँगड़ी और गाजीवाली के किनारे की भूमि का तेजी से कटाव होने के कारण वहाँ रोपित पौधे प्रायः बह गये।

गंगा के बाएँ किनारे पर इस असफलता का एक कारण पूर्वी गंगा-नहर का निर्माण हो सकता है, क्योंकि इसके निर्माण में गंगा के बाएँ किनारे से बहुत सी मिट्टी उठाने के कारण गंगा का बहाव इन ग्रामों की ओर अधिक झुक गया

है। नहर के निर्माण से कतिपय बरसाती नालों की धाराएँ स्थान-स्थान पर अवरुद्ध हो जाने के कारण कहीं-कहीं एक ही धारा में मिल गयी हैं, जो अधिक वेगशाली होकर ग्रामों के किनारों की भूमि को काटती हैं।

अक्तूबर मास में नगरपालिका, हरिद्वार में श्री ए०सी० दूबे (ओ०सी०) के कार्यालय में प्रदूषण के सम्बन्ध में आर०एम० हरिद्वार की अध्यक्षता में एक मीटिंग का आयोजन किया गया, जिसमें डायरेक्टर प्रदूषण कन्ट्रोल बोर्ड उ०प्र०, डॉ० विजयशंकर (प्रिंसिपल इन्वैस्टीगेटर गंगा-समन्वित योजना), श्री वेलानी (बी०एच०ई०एल) आमन्त्रित थे। इस अवसर पर डॉ० विजयशंकर ने गंगा (मुख्य रूप से हरकी पौडी) क्षेत्र को नालों द्वारा होने वाले प्रदूषण से बचाने के लिए सुझाव दिया कि हरकी पौडी के क्षेत्र में जो नाले गिरते हैं उनके किनारों पर बने मकानों में फ्लश शौचालयों की सुविधा एवं उन्हें सीवर लाइन से जोड़ना अत्यन्त आवश्यक है और यह कार्य प्राथमिकता के आधार पर होना चाहिए, जिससे अगले कुम्भ से पूर्व ही हरकी पौड़ी में गिरने वाले नालों में बस्ती का मैला एवं गन्दगी प्रवाहित न हो और गंगा के जल की पवित्रता बनी रहे। यह भी सुझाव दिया गया कि बी०एच०ई०एल० से निकलने वाला नाला जो ज्वालापुर की बस्ती से होकर गुजरता है तथा गंग–नहर में गिरता है उसे बस्ती से बाहर-बाहर ही ले जाया जाए।

१० नवम्बर, १९८४ को विश्वविद्यालय द्वारा श्यामपुर में ग्राम विकास एवं भूमि कटाव और बाढ़ रोकने के सम्बन्ध में काँगड़ी, गाजीवाली, पीली और श्यामपुर के प्रधानों एवं ग्रामवासियों की एक सभा का आयोजन किया, जिसकी अध्यक्षता डॉ० विजयशंकर (प्रिंसिपल इन्वैस्टीगेटर गंगा-समन्वित-योजना) ने की। सभा में विश्वविद्यालय के श्री आर०सी० शर्मा (विशेषाधिकारी) एवं डॉ० आर०सी० अग्रवाल (विजिटिंग प्रोफेसर), बी०डी०ओ० एवं तहसीलदार नजीबाबाद ने भी भाग लिया।

विश्वविद्यालय ने अब इन ग्रामों को भी अपने विकास-कार्यक्रम के क्षेत्र में ले लिया है। ये ग्राम गंगा-समन्वित–योजना के भी कार्यक्षेत्र में आते हैं और विश्वविद्यालय द्वारा संचालित प्रौढ़–शिक्षा के केन्द्र भी इन ग्रामों में खोले जा रहे हैं।

२५ नवम्बर, १९८४ को मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा ने श्यामपुर के ग्राम-प्रधान एवं ग्रामवासियों से भेंट की तथा एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें काँगड़ी ग्राम के भी कुछ लोग सम्मिलित हुए तथा ग्राम में प्रौढ़–शिक्षा के केन्द्र खोलने तथा अन्य विकास–कार्यक्रमों के विषय में

विचार-विमर्श हुआ। इस अवसर पर अपने विचार प्रकट करते हुए मान्य कुलपति जी ने कहा कि इन सब कार्यक्रमों को तीव्र करने के लिए ग्रामवासियों को स्वयं भी रुचि लेनी होगी तथा प्रत्येक ग्राम में एक समिति का गठन करना होगा। श्री आर०सी० शर्मा (विशेषाधिकारी) से सम्बन्धित सरकारी अधिकारियों को भूमि कटाव की रोकथाम एवं विकास के कार्यक्रमों के सम्बन्ध में लिखने को कहा गया।

योग्यता-प्रोन्नति-योजना

विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग द्वारा स्वीकृत योग्यता-प्रोन्नति-योजना के अन्तर्गत विभिन्न विभागों में शिक्षकों को १-१-८३ से प्रोन्नत किया गया—

वेद एवं कला महाविद्यालय—

१—डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी रीडर – (हिन्दी) : प्रोफेसर
२—श्री ओमप्रकाश मिश्र रीडर – (मनोविज्ञान) : प्रोफेसर
३—डॉ० भारतभूषण विद्यालंकार प्रवक्ता – (वेद) : रीडर
४—डॉ० विष्णुदत्त 'राकेश' प्रवक्ता – (हिन्दी) : रीडर
५—डॉ० राधेलाल वार्ष्णेय प्रवक्ता – (अंग्रेजी) : रीडर
६—डॉ० जबरसिंह सैंगर प्रवक्ता – (इतिहास) : रीडर
७—श्री वीरेन्द्र अरोड़ा प्रवक्ता – (गणित) : रीडर

विज्ञान महाविद्यालय—

१—डॉ० विजयशंकर रीडर – (वनस्पति-शास्त्र) : प्रोफेसर
२—डॉ० तिलकराज सेठ प्रवक्ता – (जीव-विज्ञान) : रीडर
३—डॉ० रामकुमार पालीवाल प्रवक्ता – (रसायन) : रीडर
४—श्री हरीशचन्द्र ग्रोवर प्रवक्ता – (भौतिकी) : रीडर
५—श्री विजयेन्द्र कुमार शर्मा प्रवक्ता – (गणित) : रीडर

नई नियुक्तियाँ

विभिन्न विभागों में २१ अक्तूबर ८४ की कार्य-परिषद् द्वारा निम्न विवरण के अनुसार नई नियुक्तियों की स्वीकृति की गई—

वेद एवं कला महाविद्यालय—

१—इतिहास-विभाग डॉ० श्यामनारायण सिंह : रीडर
२—दर्शन-विभाग श्री भगवन्तसिंह : प्रवक्ता
३—अंग्रेजी-विभाग श्री श्रवणकुमार शर्मा : प्रवक्ता

४—गणित-विभाग	डॉ० सत्येन्द्र कुमार वैश	:	प्रवक्ता
	(इन्होंने अभी तक कार्यभार ग्रहण नहीं किया है।)		

विज्ञान-महाविद्यालय-

१—रसायन-विभाग	डॉ० ए०के० इन्द्रायण	:	रीडर
२—भौतिकी-विभाग	डॉ० पी०एन० राम	:	रीडर
३—रसायन-विभाग	श्री रणधीरसिंह	:	प्रवक्ता
४—जीवविज्ञान-विभाग	श्री दिनेशचन्द्र भट्ट	:	प्रवक्ता
५—भौतिकी-विभाग	श्री परमानन्द प्रकाश पाठक	:	प्रवक्ता
संग्रहालय	श्री सूर्यकान्त श्रीवास्तव	:	क्यूरेटर
,,	श्री वी०के० जैरथ	:	सं० सहायक
पुस्तकालय	श्री ऋषिकुमार	:	प्रोफेशनल असिस्टैंट
प्रौढ़-शिक्षा	श्री राजपाल	:	सुपरवाइजर
,,	श्री जसवीरसिंह	:	,,
योग	श्री ईश्वर भारद्वाज	:	योग शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षक

—*—
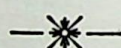
प्रकीर्ण

जून, १९८४ से विश्वविद्यालय में 'यूनिवर्सिटी एम्प्लायमेंट ब्यूरो एण्ड गाइडेंस' प्रारम्भ हो गया है तथा प्रो० ओ०पी० मिश्र (अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग) को कार्य-परिषद् द्वारा इसका अध्यक्ष मनोनीत किया गया है।

जुलाई, १९८४ में विश्वविद्यालय की कार्य–परिषद् ने प्रो० ओ०पी० मिश्र (अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग) को छात्र–कल्याण–परिषद् का डीन मनोनीत किया।

जुलाई, १९८४ में योग-विभाग में श्री के०के० खट्टर की डायरेक्टर फिजीकल एजूकेशन के पद पर नियुक्ति हुई। श्री खट्टर अपने पद पर कुशलता-पूर्वक कार्य कर रहे हैं।

१६ जुलाई, १९८४ को कु० ए०के० अहूजा, उपसचिव-ग्रामीण विकास-मन्त्रालय का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। उन्होंने विश्वविद्यालय के संग्रहालय एवं पुस्तकालय को देखा तथा प्रसन्नता व्यक्त की।

२७ अगस्त, १९८४ को शाह इन्सटिट्यूट ऑफ न्यूक्लीयर फिजिक्स के डॉ० चक्रवर्ती का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ।

७-१० सितम्बर, १९८४ को विश्वविद्यालय पुस्तकालय में विशाल पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। जिसका उद्घाटन मान्य विजिटर डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने किया। इस पुस्तक-प्रदर्शनी में गुरुकुल के विभिन्न विभागों के प्राध्यापकों द्वारा लगभग १ लाख रुपये की नवीनतम पुस्तकों का चयन किया गया।

सितम्बर, १९८४ में प्रो० ओ०पी० मिश्र (अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग) की आकाशवाणी नजीबाबाद से 'ढ़लती उम्र का मनोविज्ञान' विषय पर एक वार्ता प्रसारित हुई।

विश्वविद्यालय समाचार-

१ अक्तूबर, १९८४ को प्रो० आर०सी० अग्रवाल ने इतिहास-विभाग में विजिटिंग प्रोफेसर पद पर तीन माह के लिए कार्यभार ग्रहण कर लिया है। प्रो० अग्रवाल देश के जाने माने पुरातत्त्व वेत्ता हैं। आपके आगमन से विभाग की पुरात्त्व शाखा को विशेष लाभ हुआ है। प्रो० अग्रवाल प्रतिदिन प्रातः १० बजे से पुरातत्त्व संग्रहालय में आ जाते हैं, जहाँ शोधार्थी तथा पुरातत्त्व के विद्यार्थी आपसे निर्देशन प्राप्त करते हैं।

विश्वविद्यालय एवं प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के लिए बड़ी प्रसन्नता एवं गौरव की बात है कि डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष इतिहास-विभाग को विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग से नेशनल फेलोशिप प्राप्त हुई है। डॉ० सिन्हा अग्रिम सत्र में १ जुलाई १९८५ से अपना नेशनल फेलो का कार्यभार ग्रहण करेंगे।

१-३ अक्तूबर, १९८४ को प्रो० ओ०पी० मिश्र (अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग) ने रघुनाथ गर्ल्स कालेज मेरठ में आयोजित उ०प्र० मनोविज्ञान परिषद् के सम्मेलन में भाग लिया तथा राजनीतिक हिंसा विषयक संगोष्ठी की अध्यक्षता की।

६-१४ अक्तूबर, १९८४ को आर्यसमाज पानीपत की स्थापना शताब्दी उत्साहपूर्वक मनाई गई जिसमें उन्होंने विभिन्न वैदिक विद्वानों को आमन्त्रित किया तथा प्रत्येक विद्वान् को एक प्रशस्ति-पत्र, एक गर्म शाल तथा १५०० रु० देकर सम्मानित किया। इनमें मुख्य रूप से पं०सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार(परिद्रष्टा, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय), आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति (भू०पू० कुलपति

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) तथा आचार्य सत्यकाम विद्यालंकार (आचार्य गुरुकुल विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। यह हमारे विश्वविद्यालय के लिए परम गौरव की बात है।

१३ अक्तूबर, १९८४ को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षा डॉ० श्रीमती माधुरी शाह का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ तथा उन्होंने विश्वविद्यालय के संग्रहालय तथा पुस्तकालय को देखकर, उनके क्रियाकलाप का निरीक्षण कर संतोष व्यक्त किया एवं शिक्षकों और शिक्षकेतर कर्मचारियों की सभा को सम्बोधित किया।

१३–**१७ अक्तूबर, १९८४** को डॉ० बी०डी० जोशी (अध्यक्ष, जन्तु-विज्ञान-विभाग) ने विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के सौजन्य से इन्दौर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुहू के जन्तु-विज्ञान-विभाग में आयोजित राष्ट्रिय कॉन्फ्रेंस में भाग लिया। इस कॉन्फ्रेंस में लगभग ८५ वैज्ञानिक एवं शोधार्थी सम्मिलित हुए। डॉ० जोशी ने उक्त कॉन्फ्रेंस में एक गोष्ठी का सभापतित्व किया तथा अन्य गोष्ठी में अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया तथा इन्दौर विश्वविद्यालय द्वारा त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम अपनाए जाने के सम्बन्ध में बी०एस०सी० में फिशरीज का पाठ्यक्रम बनाने विषयक गोष्ठी में भी सक्रिय रूप से भाग लिया।

१९-२२ अक्टूबर, १९८४ को जिवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर के तत्त्वावधान में जूलोजिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया के सौजन्य से आयोजित छठी भारतीय जन्तु विज्ञान कांग्रेस में सक्रिय रूप से भाग लिया। यह एसोशियेशन हमारे देश की जन्तु-विज्ञान विषयक सर्वोच्च एकेडेमिक एसोशिएशन है।

डॉ० जोशी को इस कांग्रेस में लाईफ मेम्बर के रूप में सम्बद्ध कर लिया गया। इस अवसर पर इन्होंने 'इफेक्ट ऑफ सीजनल वैरिएशंस इन सम हिमैटोलोजिकल वैल्यूज़ ऑफ हिल स्ट्रीम फिश निमैकाल्स रूपिकोला' विषय पर अपना शोध निबन्ध प्रस्तुत किया।

२० अक्तूबर, १९८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय की वित्त-समिति की बैठक १५ हनुमान रोड़ नई दिल्ली में सम्पन्न हुई। इसमें श्री सरदारी लाल वर्मा (कोषाध्यक्ष) श्री एम०एम० चावला (वि०वि० अनुदान आयोग के प्रतिनिधि) श्री जे० एस० सिक्का (शिक्षा मन्त्रालय के प्रतिनिधि) श्री वीरेन्द्र अरोड़ा (कुलसचिव) श्री डी०एन० शुक्ला (वित्ताधिकारी)

श्री हरिश्चन्द्र ग्रोवर (भूतपूर्व वित्ताधिकारी) तथा श्री बलदेव आयुर्वेदालंकार (सहायक व्यवसायाध्यक्ष आदि) सदस्य उपस्थित थे।

इसमें विश्वविद्यालय का संशोधित एवं आनुमानित बजट (१९८४-८५) प्रस्तुत किया गया। इस अवसर पर कुलपति महोदय ने बताया कि वि०वि० की प्लेटिनम जुबली १९८० में पारस्परिक विवादों के कारण नहीं मनाई गई थी। यह वर्ष दयानन्द निर्वाण शताब्दी का वर्ष है। अतः अप्रैल १९८५ में प्लेटिनम जुबली मनाने का निश्चय किया गया है।

२१ अक्तूबर, १९८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की कार्य-परिषद् की बैठक १५, हनुमान् रोड, नई दिल्ली पर सम्पन्न हुई। इसमें आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (आचार्य एवं उपकुलपति), श्री सुरेशचन्द्र त्यागी (प्राचार्य, विज्ञान महाविद्यालय), श्री सरदारीलाल वर्मा (कोषाध्यक्ष), श्री सोमनाथ मरवाहा (सीनेट के प्रतिनिधि), श्री सत्यकाम विद्यालंकार (सीनेट के प्रतिनिधि), डॉ० जबरसिंह सेंगर (शिक्षकों के प्रतिनिधि), प्रो० रामलाल पारिख (यू०जी०सी० के शिक्षाविद्), श्री गुरुबख्शसिंह (भारत सरकार के प्रतिनिधि), तथा श्री वीरेन्द्र अरोड़ा (कुलसचिव-सचिव), श्री बलदेव आयुर्वेदालकार, डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा और श्री डो०एन० शुक्ल उपस्थित थे।

इस अवसर पर प्रस्ताव संख्या ३३ के अनुसार यह निश्चय किया गया कि यह पत्रिका सुविधानुसार पाक्षिक होकर विश्वविद्यालयीय समाचार-पत्र के रूप में कार्य करे।

३१ अक्तूबर १९८४ को दयानन्द व्याख्यानमाला के अन्तर्गत माननीय डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार विजिटर, महोदय की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय के शिक्षक-कक्ष में एक सभा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति (भू०पू० कुलपति गु० कां०वि०वि०) भी उपस्थित थे। इस व्याख्यान-माला में व्याख्यान हेतु हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० प्रभाकर माचवे को आमन्त्रित किया गया; किन्तु अस्वस्थ होने के कारण उनका आगमन न हो सका।

पुनः मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा की प्रेरणा एवं प्रयास से इस अवसर पर उपस्थित महानुभावों ने स्वामी दयानन्द, गाँधी एवं मार्क्स पर अपने विचार प्रस्तुत किए। जिनमें आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, श्री ऋषिपाल, श्री श्यामलाल (सम्पादक, दिनमान), मनोहरलाल (बी०एच०ई०एल०) श्री वेदप्रकाश शास्त्री (संस्कृत-विभाग), श्री सुरेन्द्र कुमार (शोध छात्र), डॉ० भारतभूषण (वेद-विभाग), डॉ० सत्यव्रत 'राजेश' (वेद-विभाग), आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (उपकुलपति), श्री बलभद्रकुमार हूजा एवं डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार आदि प्रमुख वक्ताओं ने भाग लिया।

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) तथा आचार्य सत्यकाम विद्यालंकार (आचार्य गुरुकुल विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। यह हमारे विश्वविद्यालय के लिए परम गौरव की बात है।

१३ अक्तूबर, १६८४ को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षा डॉ० श्रीमती माधुरी शाह का विश्वविद्यालय में आगमन हुआ तथा उन्होंने विश्वविद्यालय के संग्रहालय तथा पुस्तकालय को देखकर, उनके क्रियाकलाप का निरीक्षण कर संतोष व्यक्त किया एवं शिक्षकों और शिक्षकेतर कर्मचारियों की सभा को सम्बोधित किया।

१३–१७ **अक्तूबर, १६८४** को डॉ० बी०डी० जोशी (अध्यक्ष, जन्तु-विज्ञान-विभाग) ने विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के सौजन्य से इन्दौर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुहू के जन्तु-विज्ञान-विभाग में आयोजित राष्ट्रिय कॉन्फ्रेंस में भाग लिया। इस कॉन्फ्रेंस में लगभग ८५ वैज्ञानिक एवं शोधार्थी सम्मिलित हुए। डॉ० जोशी ने उक्त कॉन्फ्रेंस में एक गोष्ठी का सभापतित्व किया तथा अन्य गोष्ठी में अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया तथा इन्दौर विश्वविद्यालय द्वारा त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम अपनाए जाने के सम्बन्ध में बी०एस०सी० में फिशरीज का पाठ्यक्रम बनाने विषयक गोष्ठी में भी सक्रिय रूप से भाग लिया।

१६-२२ अक्टूबर, १६८४ को जिवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर के तत्त्वावधान में जूलोजिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया के सौजन्य से आयोजित छठी भारतीय जन्तु विज्ञान कांग्रेस में सक्रिय रूप से भाग लिया। यह एसोशियेशन हमारे देश की जन्तु-विज्ञान विषयक सर्वोच्च एकेडेमिक एसोशिएशन है।

डॉ० जोशी को इस कांग्रेस में लाईफ मेम्बर के रूप में सम्बद्ध कर लिया गया। इस अवसर पर इन्होंने 'इफेक्ट ऑफ सीजनल वैरिएशंस इन सम हिमैटोलोजिकल वैल्यूज़ ऑफ हिल स्ट्रीम फिश निमैकाल्स रूपिकोला' विषय पर अपना शोध निबन्ध प्रस्तुत किया।

२० अक्तूबर, १६८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय की वित्त-समिति की बैठक १५ हनुमान रोड़ नई दिल्ली में सम्पन्न हुई। इसमें श्री सरदारी लाल वर्मा (कोषाध्यक्ष) श्री एम०एम० चावला (वि०वि० अनुदान आयोग के प्रतिनिधि) श्री जे० एस० सिक्का (शिक्षा मन्त्रालय के प्रतिनिधि) श्री वीरेन्द्र अरोड़ा (कुलसचिव) श्री डी०एन० शुक्ला (वित्ताधिकारी)

श्री हरिश्चन्द्र ग्रोवर (भूतपूर्व वित्ताधिकारी) तथा श्री बलदेव आयुर्वेदालंकार (सहायक व्यवसायाध्यक्ष आदि) सदस्य उपस्थित थे।

इसमें विश्वविद्यालय का संशोधित एवं आनुमानित बजट (१९८४-८५) प्रस्तुत किया गया। इस अवसर पर कुलपति महोदय ने बताया कि वि०वि० की प्लेटिनम जुबली १९८० में पारस्परिक विवादों के कारण नहीं मनाई गई थी। यह वर्ष दयानन्द निर्वाण शताब्दी का वर्ष है। अतः अप्रैल १९८५ में प्लेटिनम जुबली मनाने का निश्चय किया गया है।

२१ अक्तूबर, १९८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की कार्य-परिषद् की बैठक १५, हनुमान् रोड, नई दिल्ली पर सम्पन्न हुई। इसमें आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (आचार्य एवं उपकुलपति), श्री सुरेशचन्द्र त्यागी (प्राचार्य, विज्ञान महाविद्यालय), श्री सरदारीलाल वर्मा (कोषाध्यक्ष), श्री सोमनाथ मरवाहा (सीनेट के प्रतिनिधि), श्री सत्यकाम विद्यालंकार (सीनेट के प्रतिनिधि), डॉ० जबरसिंह सेंगर (शिक्षकों के प्रतिनिधि), प्रो० रामलाल पारिख (यू०जी०सी० के शिक्षाविद्), श्री गुरुबख्शसिंह (भारत सरकार के प्रतिनिधि), तथा श्री वीरेन्द्र अरोड़ा (कुलसचिव-सचिव), श्री बलदेव आयुर्वेदालंकार, डॉ० विनोदचन्द्र सिन्हा और श्री डी०एन० शुक्ल उपस्थित थे।

इस अवसर पर प्रस्ताव संख्या ३३ के अनुसार यह निश्चय किया गया कि यह पत्रिका सुविधानुसार पाक्षिक होकर विश्वविद्यालयीय समाचार-पत्र के रूप में कार्य करे।

३१ अक्तूबर १९८४ को दयानन्द व्याख्यानमाला के अन्तर्गत माननीय डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार विजिटर, महोदय की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय के शिक्षक-कक्ष में एक सभा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति (भू०पू० कुलपति गु० कां०वि०वि०) भी उपस्थित थे। इस व्याख्यान-माला में व्याख्यान हेतु हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० प्रभाकर माचवे को आमन्त्रित किया गया; किन्तु अस्वस्थ होने के कारण उनका आगमन न हो सका।

पुनः मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा की प्रेरणा एवं प्रयास से इस अवसर पर उपस्थित महानुभावों ने स्वामी दयानन्द, गाँधी एवं मार्क्स पर अपने विचार प्रस्तुत किए। जिनमें आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, श्री ऋषिपाल, श्री श्यामलाल (सम्पादक, दिनमान), मनोहरलाल (बी०एच०ई०एल०) श्री वेदप्रकाश शास्त्री (संस्कृत-विभाग), श्री सुरेन्द्र कुमार (शोध छात्र), डॉ० भारतभूषण (वेद-विभाग), डॉ० सत्यव्रत 'राजेश' (वेद-विभाग), आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (उपकुलपति), श्री बलभद्रकुमार हूजा एवं डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार आदि प्रमुख वक्ताओं ने भाग लिया।

अक्तूबर-नवम्बर, १९८४ में, डॉ० आर० एल० वार्ष्णेय (रीडर, अंग्रेजी विभाग) अपनी एक माह की रूस यात्रा समाप्त करके स्वदेश वापस आ गये हैं। आपका चयन इण्डो-सोवियत सांस्कृतिक आदान-प्रदान योजना के अन्तर्गत वि० वि० अनुदान आयोग के द्वारा किया गया था। आप अपने रूसी प्रवास में मास्को तथा लेनिनग्राद ठहरे तथा मास्को स्थित स्टेट इन्सटीट्यूट ऑफ़ फॉरेन लैंग्वेजेज़, मास्को विश्वविद्यालय तथा लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में विभिन्न विषयों पर भाषण दिये। उनकी चर्चा के विषय भारतीय जीवन, भारत में वैदिक-जीवन व्यवस्था, वेदों का महत्त्व, गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली, भारत में अंग्रेजी का अध्यापन आदि-विषय थे। वहाँ उन्होंने रूसी शिक्षा व्यवस्था का व्यापक अध्ययन किया और अनेक स्थानों पर यह सर्वेक्षण भी किया कि सोवियत रूस में किस प्रकार शिक्षा दी जाती है।

१ नवम्बर, १९८४ को विश्वविद्यालय परिसर में पुस्तकालय के प्रांगण में भू०पू० स्व० प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के निधन पर एक शोक-सभा का आयोजन किया गया। जिसमें गुरुकुल विद्यालय विभाग तथा विश्वविद्यालय के सभी छात्रों, कर्मचारियों एवं अध्यापकों ने भाग लिया। इस अवसर पर आचार्य एवं उपकुलपति श्री रामप्रसाद वेदालंकार ने श्रीमती गांधी की हत्या को देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य बताया तथा मान्य कुलपति जी ने कहा कि हमारे राष्ट्र की माता अब नहीं रहीं। वे हम सब की माँ थी, सारे देश की माँ थीं। उनके असाधारण नेतृत्व में हमारे देश ने असाधारण प्रगति की और हम (देशवासी) ऐसे पापी हैं कि हमने अपने बापू (महात्मा गाँधी) को भी गोली मारी और अपनी राष्ट्र माता को भी। इस हिंसा की प्रवृत्ति को रोकना बहुत आवश्यक है। अन्त में श्री वेदप्रकाश शास्त्री (संस्कृत-विभाग) ने शोक प्रस्ताव पढ़कर सुनाया तथा श्रीमती गांधी की आत्मा की शान्ति के लिए सभी ने दो मिनट का मौन रखा।

५ नवम्बर, १९८४ को कुलपति कार्यालय में विश्वविद्यालय की योजना-पटल की बैठक मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस अवसर पर डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार परिद्रष्टा गु० कां० वि० वि० भी उपस्थित थे। इसमें महिलाओं को उच्च शिक्षा, विद्यार्थियों के जीवनोपार्जन में सहायक पाठ्य-क्रम, टी०एन० छात्रावास, प्लेटिनम जुबली, विश्वविद्यालय का वार्षिक केलैंडर, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रस्तावित परीक्षा सुधार, वि० वि० के विकास हेतु सातवीं योजना का प्रारूप, वर्तमान पाठ्य-विषयों के अतिरिक्त भूगोल तथा भूगर्भ विज्ञान जैसे अन्य विषयों की व्यवस्था, वेदों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद, बी० एड० कोर्स, पुस्तकालय में माईक्रोफिल्मिग की सुविधा, संस्कृत ओरियण्टेड डिक्शनरी आदि विषयों पर विचार-विमर्श हुए तथा महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गये।

५ नवम्बर, १९८४ को विश्वविद्यालय-परिसर में डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (परिद्रष्टा, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) की अध्यक्षता में गोवर्द्धन शास्त्री पुरस्कार-समिति की बैठक सम्पन्न हुई। इसमें पं० सत्यकाम विद्यालंकार तथा आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार भी उपस्थित थे।

८ नवम्बर, १९८४ को मान्य कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा, डॉ० विजयशंकर (अध्यक्ष, वनस्पति-विज्ञान-विभाग), श्री आर०सी० शर्मा (विशेषाधिकारी) तथा श्री वीरेन्द्र अरोड़ा (कुलसचिव) काँगड़ी ग्राम में काँगड़ी-ग्राम-विकास-योजना के अन्तर्गत निरीक्षणार्थ गये और वहाँ के ग्राम-वासियों से बातचीत की।

९ नवम्बर, १९८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में प्रौढ़-शिक्षा सलाहकार समिति की बैठक कुलपति कार्यालय में सम्पन्न हुई।

१३ नवम्बर, १९८४ को इतिहास-विभाग में प्रो० आर०सी० अग्रवाल (विजिटिंग प्रोफेसर) का गंगा घाटी के ताम्र हथियारों पर एक अत्यन्त ज्ञानवर्धक एवं सारगर्भित व्याख्यान हुआ। इसके अतिरिक्त इतिहास-विभाग ने प्रो० अग्रवाल के सहयोग से एक व्यापक योजना तैयार की है तथा सर्वेक्षण के दौरान काँगड़ी ग्राम से उन्होंने दशवीं शती की स्थापत्य-कला का एक सुन्दर नमूना प्राप्त किया है।

१६ नवम्बर, १९८४ को मान्य कुलपति जी की अध्यक्षता में कुलपति कार्यालय में योजना-पटल की बैठक सम्पन्न हुई तथा विद्यार्थियों के जीविकोपार्जन में सहायक पाठ्यक्रम, टी०एन० छात्रावास, प्लेटिनम जुबली, वेदकला तथा विज्ञान-महाविद्यालयों में प्रतिदिन प्रातः संध्या, हवन, शिक्षकों के वेतन-क्रम तथा शोध-सम्बन्धी कार्यक्रम आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णय लिए गये।

१९ नवम्बर, १९८४ को भारत की भू०पू० प्रधानमन्त्री स्व० श्रीमती इन्दिरा गाँधी के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में शिक्षक-कक्ष में डॉ० मानसिंह (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग) की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया, जिसका संयोजन श्री वेदप्रकाश शास्त्री (संस्कृति विभाग) ने किया। इस अवसर पर डॉ० जयदेव वेदालंकार, श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी, डॉ० भारतभूषण तथा डॉ० निगम शर्मा आदि विद्वानों ने उनके विषय में विचार प्रकट करते हुए उनके व्यक्तित्व को प्रेरणा का स्रोत बताया और कहा कि उनका जीवन संघर्षों में व्यतीत हुआ। हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।

२५ नवम्बर, १९८४ को मान्य कुलपति जी ने ग्राम काँगड़ी तथा गाजीवाला आदि केन्द्रों पर विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे प्रौढ़-शिक्षा केन्द्रों का निरीक्षण किया और प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम के विकास के निर्देश दिए।

विद्यालय-विभाग

५ अगस्त— गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में विद्यालय-विभाग में एक संगीत-गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा, आचार्य सत्यकाम विद्यालंकार, सहायक मुख्याधिष्ठाता कैप्टेन देशराज, मुख्याध्यापक डॉ० दीनानाथ व आश्रमाध्यक्ष श्री ईश्वर भारद्वाज उपस्थित थे। ब्रह्मचारियों ने वेदमन्त्रों तथा मन्त्रों पर आधारित गीतों का सस्वर गायन किया। सभी श्रोताओं ने ब्रह्मचारियों की प्रशंसा करते हुए आचार्य सत्यकाम जी को बधाई दी जिन्होंने संगीत को विषय के रूप में गुरुकुल में पुनः प्रारम्भ किया है।

उसी के तुरन्त पश्चात् वेद मंदिर में योग प्रमाण-पत्र वितरण समारोह सम्पन्न हुआ। योग केन्द्र के द्वितीय बैच (१९८३-८४) के विद्यार्थियों को कुलाधिपति द्वारा प्रमाण-पत्र वितरित किए गए। कुलपति जी ने इस केन्द्र का प्रारम्भ १९८२ में कराया था। मनोविज्ञान विभागाध्यक्ष श्री ओ०पी० मिश्र, निदेशक डॉ० त्रिलोकचन्द्र व प्रशिक्षक श्री ईश्वर भारद्वाज के सक्रिय सहयोग के कारण ही यह केन्द्र विकास पा सका है। प्रशंसा करते हुए कुलाधिपति महोदय ने आशा व्यक्त की कि उक्त केन्द्र शीघ्र ही विश्वविद्यालय का गौरव बढ़ाने में समर्थ हो सकेगा।

२५ अगस्त— विद्यालय विभाग के वरिष्ठ ब्रह्मचारियों के एक दल को विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्रवक्ता डॉ० राकेश शास्त्री द्वारा संस्कृत सम्भाषण प्रारम्भ कराया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

३१ अगस्त— आश्रमाध्यक्ष श्री ईश्वर भारद्वाज के द्वारा विद्यालय के वरिष्ठ ब्रह्मचारियों को हिन्दी आशुलिपि एवं टंकण शिक्षा का प्रशिक्षण प्रारम्भ कराया गया जो निरन्तर चल रहा है। इस कार्यक्रम से लगभग ९ ब्रह्मचारी लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

५ सितम्बर— विद्यालय प्रांगण में ही कुलपति जी की अध्यक्षता में शिक्षक-दिवस-समारोह सम्पन्न हुआ। इसी दिन विद्यालय के ब्रह्मचारियों की सगीत प्रतियोगिता एवं सामान्यज्ञान प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं। तीरंदाजी एवं उक्त प्रतियोगिताओं के विजेता छात्रों को पुरस्कार वितरित किए गए।

२ अक्तूबर— ब्रह्मचारियों के दो दल क्रमशः नैनीताल व देहरादून-मसूरी सरस्वती यात्रा पर गए जो ७ अक्तूबर को लौटे। उक्त सरस्वती यात्राएँ ज्ञानप्रद एवं मनोरंजक रहीं।

२५ अक्तूबर— ब्रह्मचारियों का एक दल (जिसमें लगभग ५० ब्रह्मचारी थे) पुण्यभूमि की मनोरंजक यात्रा पर गया। जंगलों से भ्रमण करते हुए ब्रह्मचारी पुण्यभूमि के दर्शन कर कृतार्थ हो उठे। घण्टों नदी में स्नान कर, रेत में लेटकर अपना प्रेम प्रकट करते हुए ब्रह्मचारी हर्ष-विभोर हो रहे थे। इस दल का नेतृत्व श्री ईश्वर भारद्वाज ने किया। उनके अतिरिक्त श्री बसन्तकुमार, बुद्धसिंह, रामप्रीतसिंह इत्यादि अध्यापक/अधिष्ठाता भी थे।

१ नवम्बर— प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी के निधन पर वेद कला महाविद्यालय में कुलपति जी, आचार्य जी, इत्यादि की उपस्थिति में एक शोक-सभा का आयोजन किया गया। दिवंगत प्रधानमन्त्री को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें एक अद्वितीय नेता की संज्ञा दी गई। राष्ट्र की महान क्षति बताते हुए अलगाववादी तत्त्वों को दबाने के लिए सरकार से अपील की गई।

४ नवम्बर— विद्यालय के ब्रह्मचारियों और अध्यापकों के बीच एक क्रिकेट मैच का आयोजन किया गया जिसमें ब्रह्मचारियों की ओर से कुलपति जी तथा अध्यापकों की ओर से आचार्य सत्यकाम जो ने नेतृत्व किया। इस मैच में ब्रह्मचारी विजयी रहे।

६ नवम्बर— गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भो वदिक सुभाषित कण्ठस्थ कराने का कार्य प्रारम्भ किया गया। इस बार मंत्रों में से लिए गए सुभाषित अन्वय एवं अर्थ सहित कण्ठस्थ कराये जा रहे हैं। जिनका प्रकाशन गोवर्द्धन ज्योति के रूप में अंग्रेजी अर्थ सहित कराया जायेगा। इस कार्यक्रम में षष्ठ से दशम तक के सभी ब्रह्मचारी भाग ले रहे हैं। यह कार्यक्रम श्री ईश्वर भारद्वाज, आश्रमाध्यक्ष द्वारा ही सम्पन्न कराया जा रहा है।

९ नवम्बर— विद्यालय के आश्रमाध्यक्ष एवं सहायक-अध्यापक श्री ईश्वर भारद्वाज को विश्वविद्यालय में योग-प्रशिक्षक पद पर चुन लिया गया। उन्होंने सहायक अध्यापक पद से त्यागपत्र देकर अपना कार्य संभाल लिया। किन्तु आचार्य एवं स० मुख्याधिष्ठाता जी के अनुरोध पर वह आश्रमाध्यक्ष के साथ-साथ विद्यालय में योग-शिक्षा, आशुलिपि एवं टंकण शिक्षण तथा वैदिक सुभाषित पढ़ाने का कार्य यथावत् कर रहे हैं।

११ नवम्बर— विद्यालय-विभाग एवं विज्ञान-महाविद्यालय के छात्रों के बीच क्रिकेट मैच का आयोज़न किया गया। इसमें विजिटर डॉ० सत्यव्रत

सिद्धांतालंकार, कुलपति तथा कुलसचिव भी उपस्थित थे। विज्ञान महाविद्यालय ३ विकेट से विजयी रहा।

१४ नवम्बर— भू०पू० प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिन को बालदिवस के रूप में मनाने का कार्यक्रम परिपाटी अनुसार चल रहा है। विद्यालय में इस दिन चित्रकला-प्रतियोगिता कराई गई। आशु-चित्रकारों को पुरस्कार प्रदान किए गए।

२६ नवम्बर— विद्यालय के संगीत-शिक्षक श्री राजीव कुमार द्वारा सीनेट हाल में एक संगीत-कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। कुलपति जी के अतिरिक्त पूज्य स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती जी भी समुपस्थित थे। वेदमन्त्रों के शास्त्रीय संगीतबद्ध रूप से प्रस्तुतीकरण पर श्रोताओं ने हर्ष की अभिव्यक्ति की तथा इस प्रकार के कार्यक्रम का आयोजन मास में एक- दो बार हो जाने पर बल दिया।

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥
(अथर्व० ९।१।१७)

जैसे मधुमक्खियाँ मधु के ऊपर मधु थोपती जाती हैं, हे अश्विनों ! उसी प्रकार मुझ में प्रताप, तेज, बल तथा ओज स्थापित कीजिए।

भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥
(अथर्व० १२।१।६३)

हे भूमे ! हे माता ! तू मुझे अच्छी प्रकार सुप्रतिष्ठित करती हुई आश्रय दे। हे विशालस्वरूपे ! आकाश से सामञ्जस्य रखती हुई तू धन-सम्पत्ति और वैभव में मुझे स्थापित कर।

पुस्तकालय का प्रगति-विवरण

— जगदीश विद्यालंकार

पुस्तकालय में जुलाई-अक्टूबर ८४ तक की अवधि में निम्न कार्य किये गये —

१. प्रतियोगात्मक पुस्तकों के संग्रह में ३०० और अधिक पुस्तकें जोड़ी गईं।

२. विभागीय पुस्तकालय की स्थापनाओं में प्रगति की गई। जीव-विज्ञान-विभाग एवं वनस्पति विज्ञान-विभाग के विभागीय पुस्तकालय के विस्तार हेतु बहुत सी पुस्तकें पुस्तकालय से उन्हें स्थानान्तरित की गईं।

३. १५०० पुरानी पत्रिकाओं की जिल्दबन्दी की गई। उर्दू की लगभग ५०० दुर्लभ पुस्तकों की जिल्दबंदी का कार्य दिया गया।

४. २७ अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकायें आने का सिलसिला प्रारम्भ हुआ तथा ३० अन्य पत्रिकाओं के आदेश दिये गये।

५. विद्यालय-विभाग पुस्तकालय को सुदृढ़ किये जाने हेतु कई कदम उठाये गये जिसके अन्तर्गत दो अलमारियां उनको दी गईं। २०० पुस्तकें पुस्तकालय द्वारा दी गईं तथा विद्यालय-विभाग की ४०० पुस्तकों की जिल्दबंदी कराई गई।

६. पुस्तकालय में दिनांक ७–६–८४ से १०–६–८४ तक विशाल पुस्तक-प्रदर्शनी का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन मान्यवर विजिटर महोदय श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने किया। प्रर्दशनी को दर्शन–परिषद् के दशम अधिवेशन में भाग लेने आये प्रतिनिधियों ने भी रुचिपूर्वक देखा। इस पुस्तक प्रदर्शनी में गुरुकुल के विभिन्न विभागों के प्राध्यापकमंडल द्वारा एक लाख की नवीनतम पुस्तकों का चयन किया गया। ये पुस्तकें पुस्तकालय द्वारा २० प्रतिशत व्यापारिक छूट पर विश्वविद्यालय पुस्तक भण्डार के माध्यम से क्रय की गईं। पुस्तकों की व्यापारिक छूट के आधार पर खरीद की गई योजनाओं से पुस्तकालय को मार्च ८५ तक एक लाख रुपये का लाभ होने की संभावना है।

७. यू० जी० सी० द्वारा उपलब्ध धनराशि का तेज गति से समुचित उपयोग हो रहा है। ५०,००० रुपये पत्रिकाओं के पिछले वर्षों के अंक मँगवाने में व्यय किये गये। इस अवधि में लगभग २५०० नई पुस्तकें विभिन्न विषयों की क्रय की गईं।

८. दिनांक १३–१०–८४ को यू० जी० सी० अध्यक्षा सुश्री माधुरी शाह ने पुस्तकालय का अवलोकन किया तथा उन्होंने पुस्तकालय में गुरुकुल स्नातकों के वैदिक साहित्य सृजन का संग्रह भी देखा, उन्होंने पुस्तकालय की बहुमूल्य पाण्डुलिपियों के माइक्रोफिल्मिंग किये जाने का भी सुझाव दिया।

९. योजना भवन नई दिल्ली में दिनांक १५–१०–८४ से २०–१०–८४ तक भारत सरकार पुस्तकालयाध्यक्ष संघ द्वारा पुस्तकालय विज्ञान के एबस्ट्रैक्टिंग एवं इन्डेक्सिंग तकनीकी का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सम्पन्न हुआ, जिसमें पुस्तकालयाध्यक्ष जगदीश विद्यालंकार ने भाग लिया। इस प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का निर्देशन राष्ट्रीय विज्ञान प्रलेखन संस्थान, नई दिल्ली के वैज्ञानिक डा० बी० गुहा ने किया।